प्रकाशक : श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी
सोदीकों का रास्ता,
किशनपोल बाजार, जयपुर-३०२००३

[illegible]
सन् १९७९

मूल्य : ३० रुपये

मुद्रक : मनोज प्रिन्टर्स
जयपुर।



कविवर ब्रह्म बूचराज



कविवर ठक्कुरसी

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी जयपुर, एक परिचय

जैन कवियो द्वारा हिन्दी भाषा मे निबद्ध कृतियो के प्रकाशन एव उनके मूल्यांकन की आज अतीव आवश्यकता है। देश के विश्वविद्यालयो एव शोध सस्थानो मे जैन हिन्दी साहित्य को लेकर जो शोध कार्य हो रहा है तथा शोधार्थियो मे उस पर शोध कार्य की ओर जो रुचि जाग्रत हुई है वह यद्यपि उत्साहवर्धक है लेकिन अभी तक हिन्दी साहित्य के इतिहास मे जैन कवियो को नाम मात्र का भी स्थान प्राप्त नही हो सका है और हमारे अधिकाश कवि अज्ञात एवं अपरिचित ही बने हुए हैं। अभी तक जैन कवियो की कृतिया ग्रन्थागारो मे बन्द हैं तथा राजस्थान के शास्त्र भण्डारो को छोडकर अन्य प्रदेशो के भण्डारो के तो सूची पत्र भी प्रकाशित नही हुए हैं। देश की किसी भी प्रकाशन सस्था का इस ओर ध्यान नही गया और न कभी ऐसी किसी योजना को मूर्त्त रूप दिये जाने का सकल्प ही व्यक्त किया गया। क्योकि अधिकाश विद्वानो एव साहित्यकारो को हिन्दी जैन साहित्य की विशालता की ही जानकारी प्राप्त नही है।

स्थापना—इसलिए सन् १९७६ वर्ष के अन्तिम महिनो मे जयपुर के विद्वान् मित्रो के सहयोग से 'श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी' सस्था की स्थापना की गयी जिसका प्रमुख उद्देश्य पञ्चवर्षीय योजना बनाकर समस्त हिन्दी जैन साहित्य को २० भागो मे प्रकाशित करने का निश्चय किया गया। इन भागो मे ६० से अधिक प्रमुख जैन कवियो का विस्तृत जीवन परिचय, उनकी कृतियो का मूल्याकन एव प्रकाशन का निर्णय लिया गया। हिन्दी जैन साहित्य प्रकाशन योजना के अन्तर्गत निम्न प्रकार २० भाग प्रकाशित किये जावेंगे—

प्रकाशन योजना.

१ महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एव भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति (प्रकाशित)
२ कविवर बूजराज एव उनके समकालीन कवि (प्रकाशित)
३. महाकवि ब्रह्म जिनदास एव भ० प्रतापकीर्ति (प्रकाशनाधीन)
४. कविवर वीरचन्द एव महिचन्द
५ विद्याभूषण, ज्ञानसागर एव जिनदास पाण्डे
६ ब्रह्म यशोधर एव भट्टारक ज्ञानभूषण
७. भट्टारक रत्नकीर्त्ति, कुमुदचन्द एव समयसुन्दर
८ कविवर रूपचन्द, जगजीवन एव ब्रह्म कपूरचन्द

९. महाकवि भूधरदास एवं बुलाकीदास
१०. जोधराज गोदीका एवं हेमराज
११ महाकवि द्यानतराय एव आनन्दघन
१२. पं० भगवतीदास एव भाउ कवि
१३. कविवर खुशालचन्द काला एव अजयराज पाटनी
१४ कविवर किशनसिंह, नथमल बिलाला एव पाण्डे लालचन्द
१५. कविवर बुधजन एव उनके समकालीन कवि
१६. कविवर नेमिचन्द्र एवं हर्षकीर्त्ति
१७ भैय्या भगवतीदास एव उनके समकालीन कवि
१८. कविवर दौलतराम एव छत्तदास
१९. मनराम, मन्ना साह एव लोहट कवि
२०. २० वी शताब्दी के जैन कवि

उक्त २० भागो को प्रकाशित करने के लिए निम्न प्रकार एक पञ्चवर्षीय योजना बनाई गयी है—

वर्ष	पुस्तक संख्या
१९७८	३
१९७९	४
१९८०	४
१९८१	४
१९८२	५
	२०

उक्त योजना के अन्तर्गत अब तक पाच भाग प्रकाशित हो जाने चाहिए थे लेकिन प्रारम्भिक एक वर्ष योजना के क्रियान्वय के लिए आर्थिक साधन जुटाने मे लग गया और सन् १९७८ मे तीन पुस्तको के स्थान पर केवल एक पुस्तक महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एव भट्टारक त्रिभुवनकीर्त्ति" का प्रकाशन किया जा सका। प्रस्तुत पुस्तक "कविवर बूचराज एव उनके समकालीन कवि" उसका दूसरा पुष्प है। इस वर्ष कम से कम दो भाग और प्रकाशित हो सकेंगे।

आर्थिक पक्ष—अकादमी का प्रत्येक भाग कम से कम ३०० पृष्ठो का होगा। इस प्रकार अकादमी करीब ६ हजार पृष्ठो का साहित्य प्रथम पाच वर्षों मे अपने सदस्यो को उपलब्ध करावेगी। पूरे २० भागों के प्रकाशन मे करीब दो लाख रुपये व्यय होने का अनुमान है। योजना का प्रमुख आर्थिक पक्ष उसके सदस्यो द्वारा प्राप्त [illegible] होगा।

सदस्यता—अकादमी के दो प्रकार के सदस्य होगे जो संचालन समिति के सदस्य एव विशिष्ट सदस्य कहलायेंगे। संचालन समिति के सदस्यो की संख्या १०१ होगी जिसमे सरक्षक, अध्यक्ष, कार्याध्यक्ष, उपाध्यक्ष एव निदेशक के अतिरिक्त शेष सम्माननीय सदस्य होगे। सचालन समिति का सरक्षक के लिए ५००१) रु०, अध्यक्ष एव कार्यकारी अध्यक्ष के लिए २५०१) रु०, उपाध्यक्ष के लिए १५०१) रु० तथा निदेशक एव सम्माननीय सदस्यो के लिए ५०१) रु० अकादमी को सहायतार्थ देना रखा गया है। विशिष्ट सदस्यो मे २०१) रु० लिये जावेगे। सभी सदस्यो को अकादमी द्वारा प्रकाशित होने वाले २० भाग भेट स्वरूप दिये जावेगे। अब तक अकादमी की सचालन समिति के पदाधिकारियो सहित ४५ सदस्यो तथा १२५ विशिष्ट सदस्यो की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। मुझे यह सूचित करते हुए प्रसन्नता हैं कि समाज मे साहित्य प्रकाशन की इस योजना का अच्छा स्वागत हुआ है।

पदाधिकारी – अकादमी के प्रथम सरक्षक समाज के युवक नेता साहु अशोक कुमार जैन हे जिनसे समाज भली भाति परिचित है। इसी तरह अकादमी के अध्यक्ष श्री सेठ कन्हैयालाल जी पहाडिया मद्रास वाले हैं जो अपनी सेवा के लिए उत्तर भारत से भी अधिक दक्षिण भारत मे अधिक लोकप्रिय हैं। उपाध्यक्ष के रूप मे हमे अभी तक सात महानुभावो की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। सभी समाज के जाने माने व्यक्ति हैं और अपनी उदार मनोवृत्ति तथा साहित्यिक प्रेम के लिए प्रसिद्ध हैं। उपाध्यक्षो के नाम हैं: सर्व श्री गुलाबचन्द जी गगवाल, रेनवाल (जयपुर) श्री अजितप्रसाद जी जैन ठेकेदार (देहली), श्री कमलचन्द जी कासलीवाल जयपुर, श्री कन्हैयालाल जी सेठी जयपुर, श्री पदमचन्द जी तोतूका जयपुर, श्री फूलचन्द जी विनायक्या डीमापुर, एव श्री त्रिलोकचन्द जी कोठारी कोटा। इन सभी महानुभावो के हम आभारी है।

सहयोग—अकादमी के सदस्य बनाने के कार्य मे सभी महानुभावो का सहयोग मिलता रहता है। इनमे सर्व श्री सुरेश जैन डिप्टी कलेक्टर इन्दौर, श्री मूलचन्द जी पाटनी बम्बई, डा० भागचन्द जैन दमोह, प० मिलापचन्द जी शास्त्री जयपुर, श्रीमती कोकिला सेठी जयपुर, श्री गुलाबचन्द जी गगवाल रेनवाल, प्रो० नरेन्द्र प्रकाश जैन फिरोजाबाद, वैद्य प्रभुदयाल कासलीवाल एव प० अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ आदि के नाम विशेषत उल्लेखनीय हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि जैसे-जैसे इसके भाग छपते जावेंगे इसकी सदस्य संख्या मे वृद्धि होती रहेगी। इस वर्ष के अन्त तक इसके कम से कम ३०० सदस्य बन जायें ऐसा सभी से सहयोग अपेक्षित है। सबके सहयोग के आधार पर ही अकादमी अपनी प्रथम पञ्चवर्षीय योजना मे सफल हो सकेगी ऐसा हमारा विश्वास है।

प्रथम प्रकाशन पर अभिमत—साहित्य प्रकाशन के इस यज्ञ मे कितने ही विद्वानो ने सम्पादक के रूप मे और कितने ही विद्वानो ने लेखक के रूप मे अपना सहयोग देना स्वीकार किया है। अब तक ३० से भी अधिक विद्वानो की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। अकादमी के प्रथम भाग पर राष्ट्रीय एवं सामाजिक सभी पत्रो में जो समालोचना प्रकाशित हुई है उससे हमे प्रोत्साहन मिला है। यही नहीं साहित्य प्रकाशन की इस योजना को आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज, एलाचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज एवं आचार्य कल्प श्री श्रुतसागर जी महाराज जैसे तपस्वियो का आशीर्वाद मिला है तथा भट्टारक जी महाराज श्री चारुकीर्त्ति जी मूडविद्री, एव श्रवणबेलगोला, भट्टारक जी महाराज कोल्हापुर, डा० सत्येन्द्र जी जयपुर, पंडित प्रवर कैलाशचन्द जी शास्त्री, डा० दरबारीलाल जी कोठिया, डा० महेन्द्रसागर प्रचडिया, पं० मिलापचन्द जी शास्त्री एव डा० हुकमचन्द जी भारिल्ल जैसे विद्वानो ने इसके प्रकाशन की प्रशसा की है।

भावी प्रकाशन—सन् १६७६ मे ही प्रकाशित होने वाला तीसरा पुष्प "महाकवि ब्रह्म जिनदास एवं प्रतापकीर्त्ति" की पाण्डुलिपि तैयार है और उसे शीघ्र ही प्रेस मे दे दिया जावेगा। इसके लेखक डा० प्रेमचन्द रावका हैं। इसी तरह चतुर्थ पुष्प "महाकवि वीरचन्द एव महिचन्द" वर्ष के अन्त तक प्रकाशित हो जाने की पूरी आशा है।

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी को पजीकृत कराने की कार्यवाही चल रही है। जो इस वर्ष के अन्त तक पूर्ण हो जाने की आशा है।

अन्त मे समाज के सभी साहित्य प्रेमियो से सादर अनुरोध है कि वे श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी के अधिक से अधिक सदस्य बन कर जैन साहित्य के प्रचार प्रसार मे अपना योगदान देने का कष्ट करे। हमे यह प्रयास करना चाहिए कि ये पुस्तकें देश के प्रत्येक विश्वविद्यालय मे पहुँचे जिससे वहा और भी विद्यार्थी जैन साहित्य पर शोध कार्य कर सके। यही नही हिन्दी जैन कवियो को हिन्दी साहित्य के इतिहास मे उचित स्थान भी प्राप्त हो सके।

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल
निदेशक एव प्रधान सम्पादक

अध्यक्ष की कलम से

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी का द्वितीय पुष्प "कविवर बूचराज एव उनके समकालीन कवि" को पाठको के हाथ मे देते हुए अतीव प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। इसके पूर्व गत वर्ष इसका प्रथम पुष्प "महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एव भट्टारक त्रिभुवनकीर्त्ति" प्रकाशित किया जा चुका है। मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता होती है कि अकादमी के इस प्रथम प्रकाशन का सभी क्षेत्रो मे जोरदार स्वागत हुआ है और सभी ने अकादमी की प्रकाशन योजना को अपना आशीर्वाद प्रदान किया है।

इस दूसरे पुष्प मे सवत् १५६१ से १६०० तक होने वाले ५ प्रमुख जैन कवियो का प्रथम बार मूल्याकन एव उनकी कृतियो का प्रकाशन किया गया है। इस प्रकार श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी समूचे हिन्दी जैन साहित्य को २० भागो मे प्रकाशित करने के जिस उद्देश्य को लेकर स्थापित की गयी थी उसमे वह निरन्तर आगे बढ रही है। प्रथम पुष्प के समान इस पुष्प के भी लेखक एवं सम्पादक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल है जो अकादमी के निदेशक भी हैं। डा० साहब ने बडे परिश्रम पूर्वक राजस्थान के विभिन्न ग्रन्थ भण्डारो मे सग्रहीत कृतियो की खोज एव अध्ययन करके उन्हे प्रथम बार प्रकाशित किया है। ४० वर्षों की अवधि मे होने वाले ५ प्रमुख कवियो—ब्रह्म बूचराज, कविवर छीहल, चतुरुमल, गारवदास एव ठक्कुरसी जैसे जैन कवियो का विस्तृत परिचय, मूल्याकन एव उनकी कृतियो का प्रकाशन आज अकादमी के लिए एक बहुत बडी उपलब्धि है। ये ऐसे कवि हैं जिनके बारे मे हमे बहुत कम जानकारी थी तथा चतुरुमल एव गारवदास तो एकदम अज्ञात से थे। प्रस्तुत भाग मे डा० कासलीवाल ने पाच कवियो का तो विस्तृत परिचय दिया ही है साथ मे १३ अन्य हिन्दी जैन कवियो का भी संक्षिप्त परिचय उपस्थित करके अज्ञात कवियो को प्रकाश मे लाने का प्रशसनीय कार्य किया है। वैसे तो श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना ही डा० कासलीवाल की सूझबूझ एव सतत् साहित्य साधना का प्रतिफल है। डा० साहब ने अब तो अपना समस्त जीवन साहित्य सेवा मे ही समर्पित कर रखा है यह हमारे लिए कम गौरव की बात नही है।

मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता है कि श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी को समाज द्वारा धीरे-धीरे सहयोग मिल रहा है लेकिन अभी हमे जितने सहयोग की अपेक्षा थी

उसे हम अभी तक प्राप्त नही कर सके हैं। अब तक संचालन समिति की सदस्यता के लिए ४५ महानुभावो की एव विशिष्ट सदस्यता के लिए १२५ महानुभावो की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। हम चाहते हैं कि सन् १९७९ मे इसके कम से कम १०० सदस्य और बन जावें तो हमे आगे के ग्रन्थो का प्रकाशन मे सुविधा मिलेगी। अकादमी श्री साहु अशोककुमार जी जैन को सरक्षक के रूप मे पाकर तथा श्री गुलाबचन्द गगवाल रेनवाल, श्री अजितप्रसाद जैन ठेकेदार देहली, श्री सेठ कमलचन्द जी कासलीवाल जयपुर श्री कन्हैयालाल जी सेठी जयपुर, श्रीमान् सेठ पदमचन्द जी तोतूका जौहरी जयपुर, सेठ फूलचन्द जी साहब विनायक्या डीमापुर एव त्रिलोकचन्द जी साहब कोठ्यारी कोटा, का उपाध्यक्ष के रूप मे सहयोग पाकर अकादमी गौरव का अनुभव करती है। इसलिए मेरा समाज के सभी साहित्य प्रेमियो से प्रार्थना है कि वे इस सस्था के सचालन समिति के सदस्य अथवा अधिक से अधिक सख्या मे विशिष्ट सदस्यता स्वीकार कर साहित्य प्रकाशन की इस अकादमी की असाधारण योजना के क्रियान्विति मे सहयोग देकर अपूर्व पुण्य का लाभ प्राप्त करे।

इसी वर्ष हम कम से कम तृतीय एवं चतुर्थ पुष्प और प्रकाशित कर सकेंगे। तीसरा पुष्प "महाकवि ब्रह्म जिनदास एव भट्टारक प्रतापकीर्त्ति" की पाण्डुलिपि तैयार है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि उसे हम अक्टूबर ७९ तक अवश्य प्रकाशित कर सकेगे।

प्रस्तुत पुष्प के सम्पादक मण्डल के अन्य तीन सम्पादको— डा० ज्योतिप्रसाद जैन लखनऊ, डा० दरबारीलाल जी कोठिया न्यायाचार्य, वाराणसी, प० मिलापचन्द जी शास्त्री जयपुर का भी मै आभारी हूँ जिन्होने डा० कासलीवाल जी को पुस्तक के सम्पादन मे सहयोग दिया है। आशा है भविष्य मे भी उनका अकादमी को इसी प्रकार का सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

मद्रास कन्हैयालाल जैन पहाडिया

विषय-सूची

सम्पादकीय

भाषा निबद्ध पूजा पाठो, स्तवन-विनती-पद-भजनो, छहढाला, समाधिमरण, जोगीरासा प्रभृति पाठो, पुराणो की तथा कई एक सैद्धान्तिक एव चारणानुयोगिक ग्रन्थो की भाषा वचानिकाम्रो के नित्यपाठ, स्वाध्याय अथवा शास्त्र प्रवचनो मे बहुत उपयोग के कारण वर्तमान शताब्दी ई० के प्राथमिक दशको मे, कम से कम उत्तर भारत के जैनी जन मध्योत्तर कालीन अनेक हिन्दी जैन कवियो एव साहित्यकारो के नाम और कृतियो से परिचित रहते आये थे। किन्तु उस समय हिन्दी जैन साहित्य के इतिहास की कोई रूपरेखा नही थी। कतिपय नाम आदि के अतिरिक्त पुरातन कवियो एव लेखको के विषय मे विशेष कुछ ज्ञात नही था। उनका पूर्वापर भी ज्ञात नही था। लोकप्रियता के बल पर ही उनकी रचनाओ का प्रचलन था। मुद्रणकला के प्रयोग ने भी वैसी रचनाओ के व्यापक प्रचार-प्रसार मे योग दिया। किन्तु उक्त रचनाओ का साहित्यिक मूल्यांकन नही हो पाया था। जैनेतर हिन्दी जगत् तो हिन्दी जैन साहित्य से प्राय: अपरिचित ही था, अत समग्र हिन्दी साहित्य मे उसका क्या कुछ स्थान है, यह प्रश्न ही नही उठा था। केवल 'मिश्रबन्धु विनोद' मे कुछएक जैन कवियो का नामोल्लेख मात्र हुआ था।

जबलपुर मे हुए सप्तम हिन्दी साहित्य सम्मेलन मे स्व० पं० नाथूराम जी प्रेमी ने अपने निबन्ध पाठ द्वारा हिन्दी जगत का ध्यान हिन्दी जैन साहित्य की ओर सर्वप्रथम आकर्षित किया। सन् १९१७ मे वह निबन्ध "हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास" नाम से पुस्तकाकार भी प्रकाशित हो गया। शनैः शनै हिन्दी साहित्य के इतिहासो एवं आलोचनात्मक ग्रन्थो मे जैन साहित्य की ओर भी क्वचित संकेत किये जाने लगे। शास्त्र भण्डारो की खोज चालू हुई। हस्तलिखित प्रतियो के मुद्रण-प्रकाशन का क्रम भी चलता रहा। सन् १९४७ मे स्व० बा० कामता प्रसाद जैन का 'हिन्दी जैन साहित्य का सक्षिप्त इतिहास' और सन् १९५६ मे प० नेमिचन्द्र शास्त्री का 'हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन' (२ भाग) प्रकाशित हुए। विभिन्न शास्त्र भण्डारो की छानबीन और ग्रन्थ सूचियाँ प्रकाशित होने लगी। अनेकान्त, जैन सिद्धान्त भास्कर आदि पत्रिकाओ मे हिन्दी के पुरातन जैन लेखको और उनकी कृतियो पर लेख प्रकाशित होने लगे। परिणाम स्वरूप हिन्दी जैन साहित्य ने अपना स्वरूप और इतिहास प्राप्त कर लिया और अनेक विश्वविद्यालयो ने पी० एच० डी० आदि के

लिए की जाने वाली शोध-खोज के लिए इस क्षेत्र की क्षमताओ ए. सम्भावनाओ को स्वीकार करना प्रारम्भ कर दिया। गत दो दशको मे लगभग आधी दर्जन स्वीकृत शोध प्रबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं,-तथा वर्तमान मे पचीसो शोध छात्र छात्राऐं हिन्दी जैन साहित्य के विविध अंगो या पक्षो पर शोध कार्य में रत हैं।

इस सब के बावजूद इस क्षेत्र मे कई खटकने वाली कमिया अभी भी हैं, यथा—(१) हिन्दी के जैन साहित्यकारो की सूची अभी पूर्ण नही है—शोध खोज के फलस्वरूप उसमे कई नवीन नाम जोडे जाने की सम्भावना है। (२) ज्ञात साहित्यकारो की भी सभी रचनाएँ ज्ञात नही हैं—उनमे वृद्धि होते रहने की सम्भावना है। (३) ज्ञात रचनाओ मे से भी सब उपलब्ध नही है और उपलब्ध रचनाओ मे से अनेक अभी भी अप्रकाशित हैं। (४) जो कृतिया प्रकाशित भी है उनमे से बहुभाग के सुसम्पादित स्तरीय सस्करण नही है। (५) सभी साहित्यकारो के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर प्रमाणिक, विशद आलोचनात्मक एव ऐतिहासिक प्रकाश डाला जाना अपेक्षित है। (६) रचनाओ का भी विस्तृत साहित्यिक एव समीक्षात्मक अध्ययन अपेक्षित है, और (७) महत्वपूर्ण जैन साहित्यकारो तथा उनकी प्रमुख कृतियो का उनके समसामयिक जैनेतर हिन्दी साहित्यकारो तथा उनकी कृतियो के साथ तुलनात्मक अध्ययन करके उनका उचित मूल्याकन करने और समग्र हिन्दी साहित्य के इतिहास मे उनका समुचित स्थान निर्धारित करने की आवश्यकता है।

प्रसन्नता का विषय है कि जयपुर के साहित्य प्रेमियो ने श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना की है, जिसके प्राण सुप्रसिद्ध अनुसधित्सु बन्धुवर डा० कस्तूरचद जी कासलीवाल हैं। उन्ही के उत्साहपूर्ण अध्यवसाय और श्लाघनीय सद्प्रयास से श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी उपरोक्त अभावो की बहुत कुछ पूर्ति मे सलग्न हो गई प्रतीत होती है। उसका प्रथम पुष्प 'महाकवि ब्रह्म रायमल्ल और भट्टारक त्रिभुवन कीर्त्ति" था, जिसमे उक्त दोनो साहित्यकारो के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर प्रभूत प्रकाश डालते हुए उनकी रचनाओ को भी सुसम्पादित रूप मे प्रकाशित कर दिया है। प्रस्तुत द्वितीय पुष्प मे १६ वी शती ई० के पूर्वार्ध के पाच प्रतिनिधि कवियो—ब्रह्म बूचराज, छीहल, चतुरुमल, गारवदास और ठक्कुरसी के व्यक्तित्व एव कृतीत्व पर यथासम्भव विस्तृत प्रकाश डालते हुए और सम्यक् मूल्याकन करते हुए उनकी सभी उपलब्ध ४४ रचनाएँ भी प्रकाशित कर दी है। डा० कासलीवाल जी की इस अभूतपूर्व सेवा के लिए साहित्य जगत् चिरऋणी रहेगा। सवत् १५६१ से १६०० तक की अर्द्ध शती एक सन्धिकाल था। राजस्थान को छोडकर प्राय सम्पूर्ण उत्तर भारत मे मुस्लिम शासन था। उक्त अवधि मे राजधानी दिल्ली से सिकन्दर और इब्राहीम लोदी, बाबर और हुमायु, मुगल तथा शेरशाह एव सलीमशाह सूर ने क्रमशः शासन

किया। अपभ्रंश मे साहित्य सृजन का युग समाप्त हो रहा था, और पिछले लगभग दोसौ वर्षों से जो हिन्दी शनै-शनै उसका स्थान लेती आ रही थी, उसने अपने स्वरूप को स्थैर्य बहुत कुछ प्राप्त कर लिया था। मुगल सम्राट अकबर का शासन अभी प्रारम्भ नही हुआ था—उसके शासनकाल मे ही हिन्दी जैन साहित्य का स्वर्णयुग प्रारम्भ हुआ जो अगले लगभग तीन सौ वर्ष तक चलता रहा।

अस्तु इस ग्रन्थ मे चर्चित अपने युग के उक्त प्रतिनिधि कवियो का, न केवल हिन्दी जैन साहित्य के वरन् समग्र हिन्दी साहित्य के इतिहास मे अपना एक महत्व है, जिसे समझने मे अकादमी का यह प्रकाशन सहायक होगा। खोज निरन्तर चलती रहती है, और भावी लेखक अपने पूर्ववर्ती लेखको की उपलब्धियो के सहारे ही आगे बढते हैं। आशा है कि श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की यह पुण्य शृ खला चालू रहेगी और हिन्दी जैन साहित्य के अध्ययन एव समुचित मूल्याकन की प्रगति मे अतीव सहायक होगी। योजना की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामना है।

ज्योतिप्रसाद जैन
दरबारीलाल कोठिया
मिलापचन्द शास्त्री

लेखक की ओर से

हिन्दी साहित्य कितना विशाल एवं विविध परक है इसका अनुमान लगाना ही कठिन है। इस हिन्दी साहित्य को अंकुरित, पल्लवित एव विकसित करने मे जैन कवियो ने जो योगदान दिया है उसके शताश का भी प्रकाशन एव मूल्याकन नही हो सका है। काव्य के विविध क्षेत्रो मे उन्होने जो अपनी लेखनी चलायी वह अद्भुत है। जैसे-जैसे ये अज्ञात कवि हमारे सामने आते जाते है हम उनके महत्व से परिचित होते जाते हैं तथा दातो तले अ गुली दवाने लगते हैं।

प्रस्तुत पुष्प मेसंवत् १५६१ से १६०० तक होने वाले ४० वर्षों के पाच प्रमुख कवियो का परिचय प्रस्तुत किया गया है। ये कवि हैं—ब्रह्म वूचराज, छीहल, चतुरुमल, गारवदास एवं ठक्कुरसी। वैसे इन वर्षों मे और भी कवि हुए जिनकी सख्या १३ है। जिनका सक्षिप्त परिचय प्रारम्भ मे दिया गया है। लेकिन इन पाच कवियो को हम इन ४० वर्षों का प्रतिनिधि कवि कह सकते है। इन कवियो मे से गारवदास को छोडकर किसी ने भी यद्यपि प्रबन्ध काव्य नही लिखे किन्तु उस समय की माग के अनुसार छोटे-छोटे काव्यो की रचना कर जन साधारण को हिन्दी की ओर आर्कषित किया। अभी तक इन कवियो के सामान्य परिचय के अतिरिक्त न उनका विस्तृत मूल्याकन ही हो सका तथा न उनकी मूल रचनाओ को पढने का पाठको को अवसर प्राप्त हो सका। इसलिए इन कवियो द्वारा रचित सभी रचनाएँ जिनकी सख्या ४४ है प्रथम बार पाठको के सम्मुख आ रही है। इनके अतिरिक्त इनमे से कम से कम १५ रचनाएँ तो ऐसी हैं जिनका नामोल्लेख भी प्रथम बार ही प्राप्त होगा।

हिन्दी साहित्य के इतिहास मे सवत् १५६१ से १६०० तक के काल को भक्ति काल माना है किन्तु जैन कवि किसी काल अथवा सीमा विशेष मे नही बधे। उन्होंने जन सामान्य को अच्छा से अच्छा साहित्य देने का प्रयास किया। ब्रह्म वूचराज रूपक काव्यो के निर्माता थे। उनका 'मयणजुज्झ' एव 'संतोषजयतिलकु' दोनो ही सुन्दर एव महत्वपूर्ण रूपक काव्य हैं। जिनका पाठक प्रस्तुत पुस्तक मे रसास्वादन कर सकेंगे। इसी तरह वूचराज की "चेतन पुद्गल धमाल" उत्तर-प्रत्युत्तर के रूप मे लिखी हुई बहुत ही उत्तम रचना है। चेतन एव पुद्गल के मध्य

जो रोचक वाद-विवाद होता है और दोनो एक-दूसरे को दोषी ठहराने का प्रयास करते हैं। कवि ने एक से एक सुन्दर युक्ति द्वारा चेतन एव पुद्गल के पक्ष को प्रस्तुत किया है वह उसकी अगाध विद्वत्ता का परिचायक है साथ ही कवि के आध्यात्मिक होने का सकेत है। सारे जैन साहित्य मे इस प्रकार की यह प्रथम रचना है। इन तीन कृतियो के अतिरिक्त 'नेमीश्वर का बारहमासा' लिख कर कवि ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि जैन कवि जब वियोग शृ गार काव्य लिखने बैठते है तो उसमे भी वे पीछे नही रहते। इसी तरह 'नेमिनाथ वसन्तु', 'टडाणा गीत' एव अन्य गीत हैं। अब तक कवि की ११ कृतियो का मैंने 'राजस्थान के जैन सन्त' मे उल्लेख किया था किन्तु बडी प्रसन्नता है कि कवि की आठ और कृतियो को खोज निकाला गया है और सभी के पाठ इसमे दिये गये हैं।

इस पुष्प के द्वितीय कवि हैं छीहल, जिनके सम्बन्ध मे रामचन्द्र शुक्ल से लेकर सभी आधुनिक विद्वानो ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे चर्चा की है। छीहल कवि एक ओर "पच सहेली गीत" जैसी लौकिक रचना करते है तो दूसरी ओर 'बावनी' जैसी विविध विषय परक रचना लिखने मे सिद्धहस्त हैं। छीहल की 'पच सहेली गीत' रचना बहुत ही मार्मिक रचना है। प्रस्तुत पुष्प मे हम छीहल की सभी छह रचनाओ को प्रकाशित कर सके हैं।

चतुरुमल तीसरे कवि हैं। कवि के अभी तक चार गीत एव एक "नेमीश्वर को उरगानो" कृति मिल सकी है। ये ग्वालियर के निवासी थे। सवत् १५७१ मे निबद्ध 'नेमीश्वर का उरगानो' कवि की सुन्दर कृति है। अब तक चतुरु की केवल एकमात्र रचना का ही उल्लेख हुआ था लेकिन अब उसके चार गीत और प्राप्त हो गये हैं जो हमारे इस पुष्प की शोभा बढा रहे हैं।

गारवदास हमारे चतुर्थ कवि हैं जिनकी एकमात्र रचना "यशोधर चौपई" अभी तक प्राप्त हो सकी है। लेकिन यह एक रचना ही उनकी अमर यशोगाथा के लिए पर्याप्त है। महाकवि तुलसी के रामचरित मानस के पूरे १०० वर्ष पूर्व चौपई छन्द मे निबद्ध यशोधर चौपई हिन्दी की बेजोड़ रचना है। अभी तक गारवदास हिन्दी जगत् के लिये ही नही, जैन जगत् के लिए भी अज्ञात से ही थे। चौपई मे ५४० पद्य हैं जिनमें कुछ सस्कृत एवं प्राकृत गाथाएँ भी है।

ठक्कुरसी इस पुष्प के पाचवें एवं अन्तिम कवि है। ठक्कुरसी ढूढाहड प्रदेश के प्रमुख नगर चम्पावती के निवासी थे। इनके पिता घेल्ह भी कवि थे। इसलिए ठक्कुरसी को काव्य रचना की रुचि जन्म से ही मिली थी। ठक्कुरसी की अभी तक १५ रचनाएँ प्राप्त हुई है जिनमे "मेघमाला कहा" अपभ्रंश की कृति है बाकी सब

राजस्थानी भाषा की कृतिया है। कवि की ७ रचनाओ के नाम तो प्रथम बार सुनने को मिलेगे। कवि की पञ्चेन्द्रिय वेलि, नेमिराजमति वेलि एव कृपण छन्द, पार्श्वनाथ सकुन सत्तावीसी, सप्त व्यसन वेलि बहुत ही लोकप्रिय रचनाएँ है।

उक्त पाच प्रतिनिधि कवियो के अतिरिक्त सवत् १५६१ से १६०० तक होने वाले कविवर विमलमूर्त्ति, मेलिग, प० धर्मदास, भ० शुभचन्द्र, ब्रह्म यशोधर, ईश्वर सूरि, बालचन्द, राजहस उपाध्याय, धर्मसमुद्र, सहजसुन्दर, पार्श्वचन्द्र सूरि, भक्तिलाभ एव विनय समुद्र का भी सक्षिप्त परिचय दिया गया है। इस प्रकार ४० वर्षो मे देश मे करीव १८ जैन कवि हुए जिन्होने जैन साहित्य की महत्वपूर्ण सेवा की।

इस प्रकार प्रस्तुत पुष्प मे पाच कवियो का जीवन परिचय, उनकी कृतियो का मूल्याकन एवं उनकी कृतियो के पूरे पाठ दिये गये है जिनकी सख्या ४४ है। ये सभी रचनाएँ भाषा एव शैली की दृष्टि से अपने समय की प्रमुख रचनाएँ है जिनमे सामाजिक, आर्थिक एव राजनैतिक सभी पक्षो के दर्शन होते हैं। सामाजिक कृतियो मे 'पञ्च सहेली गीत', 'मयणजुज्झ', 'सन्तोष जयतिलकु', 'सप्त व्यसन वेलि' के नाम उल्लेखनीय है जिनमे तत्कालीन समाज की दशा का सजीव वर्णन किया गया है। 'कृपण छन्द' सुन्दर सामाजिक रचना है जिसमे एक कृपण व्यक्ति का अच्छा चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त उस समय की प्रचलित सामाजिक रीति रिवाज, जैसे सामूहिक ज्योनार, यात्रा सघ निकालना आदि का वर्णन उपलब्ध होता है। राजनैतिक दृष्टि से 'पारसनाथ सकुन सत्तावीसी' का नाम लिया जा लकता है जिसमे मुस्लिम आक्रमण के समय होने वाली भगदड, अशान्ति का वर्णन है। साथ ही ऐसे समय मे भी जिनेन्द्र भक्ति से ही अशान्ति निवारण की कल्पना ही नही अपितु उसी का सहारा लिया जाता था इसका भी उल्लेख मिलता है।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन मे श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी का विशेषत उसके संरक्षक, अध्यक्ष, उपाध्यक्षो तथा सभी माननीय सदस्यो का मै पूर्ण आभारी हूँ जिनके सहयोग के कारण ही हम प्रकाशन योजना मे आगे वढ सके हैं। हिन्दी जैन कवियो के मूल्याकन एव उनकी मूल रचनाओ के प्रकाशन का यह प्रथम योजनाबद्ध प्रयास है। आशा है समाज के सभी महानुभावो की शुभकामनाओ एव आशीर्वाद से इसमे हम सफल होगे।

मैं सम्पादक मण्डल के सभी तीनो विद्वान सम्पादको—आदरणीय डा० ज्योतिप्रसाद जी जैन लखनऊ, डा० दरबारीलाल जी सा० कोठिया वाराणसी एव पं० मिलापचन्द जी सा० शास्त्री जयपुर का, उनके पूर्ण सहयोग के लिए आभारी हूँ। डा० कोठिया सा० तो अकादमी की सचालन समिति के भी माननीय सदस्य है।

तीनो ही सम्पादको का अकादमी की योजना को आशीर्वाद प्राप्त है तथा समय-समय पर उनसे सम्पादन के अतिरिक्त सदस्यता अभियान मे सहयोग मिलता रहा है।

सम्पादन के लिए पाण्डुलिपिया उपलब्ध कराने मे श्रीमान् केशरीलाल जी गगवाल बूँदी का मैं पूर्ण आभारी हूँ। जिन्होने नागदी मन्दिर बूँदी का गुटका उपलब्ध कराकर ब्रह्म बूचराज की अधिकाश रचनाओ के सम्पादन से पूर्ण सहयोग दिया। इसी तरह श्री लूणकरण जी पाण्ड्या के मन्दिर के शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री मिलापचन्द जी बागायत वाले, शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर तेरहपन्थी के व्यवस्थापक श्री प्रेमचन्द जी सोगानी, शास्त्र भण्डार मन्दिर गोधान के व्यवस्थापक श्री राजमल जी सघी तथा शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर पाटोदियान के व्यवस्थापक श्री भंवरलाल जी बज तथा शास्त्र भण्डार पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर के व्यवस्थापक श्री अनूपचन्द जी दीवान का मै पूर्ण आभारी हूँ जिन्होंने पाण्डुलिपिया उपलब्ध करवाकर उसके सम्पादन एव प्रकाशन मे योग दिया है। अजमेर के भट्टारकीय मन्दिर के श्री माणकचन्द जी सोगानी एडवोकेट का भी मै पूर्ण रूप से आभारी हूँ जिन्होने अजमेर के भट्टारकीय भण्डार से ग्रन्थ उपलब्ध कराये।

मैं श्रीमती कोकिला सेठी एम० ए० रिसर्च स्कालर का, जिन्होंने प्रस्तुत पुस्तक की 'शब्दानुक्रमणिका तैयार की, आभारी हूँ। अन्त मे मनोज प्रिंटर्स के व्यवस्थापक श्री रमेशचन्द जी जैन का आभारी हूँ जिन्होने पुस्तक की अत्यन्त सुन्दर ढग से छपाई की है।

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल

१

कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि

इतिहास

हिन्दी साहित्य के इतिहास मे सवत् १५६० से सवत् १६०० तक के काल को किसी विशिष्ट नाम से सम्बोधित नही करके उसे भक्ति काल मे ही समाहित किया गया है। इस भक्तिकाल मे निर्गुण भक्ति एव सगुण भक्ति इन दोनो की ही प्रधानता रही और दोनो ही धाराओ के कवि होते रहे। इस समय देश मे एक ओर अष्ट छाप के कवियो की सगुण भक्ति धारा की गगा बह रही थी तो दूसरी ओर महाकवि कबीर की निर्गुण भक्ति का प्रभाव भी जन सामान्य पर छाया हुआ था। सवत् १५६० से १६०० तक के ४० वर्ष के काल मे १५ से भी अधिक वैष्णव कवि हुए जिन्होने अष्ट छाप की कविता के ढग पर कृष्ण भक्ति से ओतप्रोत कृतियो को निबद्ध किया। भक्ति धारा को प्रवाहित करने वाले ऐसे कवियो मे नरवाहन (स० १५६५), हितकृष्ण गोस्वामी (स० १५६७), गोपीनाथ (स० १५६८), विट्ठलदास (स १५६८), अजबेग भट्ट (स० १५६६), महाराजा केशव (स० १५६६), मलिक मुहम्मद जायसी (स० १५९३), मझन (स० १५९७), लालदास (स० १५८५–८८), स्वामी निपट निरजन (स० १५९५), गोस्वामी विट्ठलनाथ (स० १५९५), कृपाराम (स० १५९८) के नाम उल्लेखनीय हैं।[1]

लेकिन इन ४० वर्षों मे जैन हिन्दी कवियो की सख्या जैनेतर कवियो से भी अधिक रही। मिश्र बन्धु विनोद ने ऐसे कवियो मे ईश्वरसूरि, छीहल, गारवदास जैन, ठकुरसी एव बालचन्द ये पाच नाम गिनाये हैं।

"हिन्दी रासो काव्य परम्परा" मे जिन जैन कवियो की रासा कृतियो का उल्लेख किया गया है उनमे उदयभानु, विमल मूर्त्ति, मेलिग, मुनि चन्द्रलाभ, सिवसुख सहजसुन्दर एव पार्श्वचन्द्र सूरि के नाम उल्लेखनीय हैं। लेकिन उक्त जैन कवियो के अतिरिक्त भ० ज्ञानभूषण, ब्रह्म बूचराज, ब्रह्म यशोधर, भ० शुभचन्द्र, चतुरुमल,

१ विस्तृत परिचय के लिए देखिये मिश्रबन्धु विनोद पृष्ठ १३० से १५०।

धर्मदास, पूनो जैसे और भी प्रसिद्ध जैन कवि हुए, जिन्होने हिन्दी भाषा मे कितनी ही रचनाएँ निबद्ध की और उसके प्रचार प्रसार मे अपना पूर्ण योग दिया। जैन कवि किसी काल विशेष की धारा मे नही बहे। वे जनरुचि के अनुसार हिन्दी मे काव्य रचना करते रहे। प्रारम्भ मे उन्होने रास काव्य लिखे। रास काव्य लिखने की यह परम्परा अविच्छिन्न रूप से १७ वी शताब्दी तक चलती रही। १६ वी शताब्दी के प्रथम चरण के पूर्वार्द्ध तक महाकवि ब्रह्म जिनदास अकेले ने पचास से भी अधिक रासकाव्यो की रचना करके एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। जैन कवि रास काव्यो के अतिरिक्त फागु, वेलि एव चरित काव्य भी लिखते रहे। सवत् १३५४ मे लिखित जिणदत्त चरित तथा सवत् १४११ मे निबद्ध प्रद्युम्न चरित जैसे काव्य इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है।

सवत् १५६० से १६०० तक का ४० वर्षों का काल लघु काव्यो की रचनाओ का काल रहा। इन वर्षों मे होने वाले बूचराज, छीहल, ठक्कुरसी, चतुरु एव गारवदास सभी ने छोटे-छोटे काव्य लिखकर जन सामान्य मे हिन्दी भाषा के प्रति रुचि जागृत की। इन वर्षों के जैन कवि दोनो ही वर्ग के रहे। यदि भट्टारक ज्ञानभूषण शुभचन्द्र, बूचराज. यशोधर एव सहजसुन्दर सन्त थे तो छीहल, ठक्कुरसी, चतुरु जैसे कवि श्रावक थे। सभी कवि एक ही धारा मे बहे। उन्होने या तो उपदेशात्मक काव्य लिखे, नेमिराजुल मे सम्बन्धित विरहात्मक बारहमासा लिखे या फिर रूपक काव्य एव सवादात्मक काव्य लिखे। उन्होने मानव की बुराइयो की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया। बावनियो के माध्यम से विविध विषयो की उनमे चर्चा की। यद्यपि इन ४० वर्षों मे सगुण भक्ति धारा का अधिक जोर था और उत्तर भारत मे उसने घर-घर मे अपने पाव जमा लिए थे। लेकिन अभी जैन कवि उससे अछूते ही थे। उन्होने पद लिखना तो प्रारम्भ कर दिया था, लेकिन तीर्थंकर भक्ति मे वे इतने अधिक प्रवेश नही कर पाये थे। इसलिए इन वर्षों मे भक्ति साहित्य अधिक नही लिखा जा सका।

फिर भी चालीस वर्षों मे बूचराज, ठक्कुरसी, छीहल जैसे श्रेष्ठ कवि हुए। जिन्होंने अपनी रचनाओ के माध्यम से हिन्दी साहित्य मे अपना स्थान बनाये रखा तथा आगे आने वाले कवियो के लिए मार्ग दर्शन का कार्य किया। प्रस्तुत भाग मे ब्रह्म बूचराज, छीहल, ठक्कुरसी, चतुरु एव गारवदास का जीवन परिचय, मूल्याकन एव उनके काव्य पाठ दिये जा रहे हैं। इसलिए उक्त कवियो के अतिरिक्त अवशिष्ट जैन कवियो का सक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है।

१. विमल मूर्त्ति

विमल मूर्त्ति कृत पुण्यसार रास सवत् १५७१ की रचना है ।[1] इसे कवि ने धूंधक नगर मे समाप्त किया था । विमलमूर्त्ति आगमगच्छ के हेमरत्न सूरि के शिष्य थे ।[2] रास का आदि अन्त भाग निम्न प्रकार है—

आदि—

केवल ज्ञान अलकारी सेवइ अमर नरेस
सयल जनुं हितकारी जिणवाणी पमरणुंस
हेमसूरि गुरु बुझिविउ कुमारपाल भूपाल
जेह समु जगि को नही जीव दया प्रतिपाल

अन्त—

तसु सानिध्यइ ए अवकास
साभलता हुइ पुण्य प्रकास ।।८३।।

२. मेलिग

मेलिग कवि १६ वी शताब्दी के अन्तिम चरण के कवि थे । वे तपागच्छ के मुनि सुन्दरसूरि के शिष्य थे । उन्ही की आज्ञा से उन्होने प्रस्तुत रास की रचना की थी ।[3] सवत् १५७१ मे इन्होने 'सुदर्शन रास' की रचना अपने गुरु की आज्ञा से समाप्त की थी । सुदर्शन रास की एक प्रति पाटण के जैन भण्डार मे तथा एक राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान मे सुरक्षित है ।[3]

१. संवत् पनर एकोतरइ पोस बदि इग्यारसि अतरइ ।
धूंधकइ पुरि पास समध्य, सोमवार रचिउं अवध्य ।।८०।।
हिन्दी रासो काव्य परम्परा, पृष्ठ सं० १६१ ।

२ आगम गछ प्रकास दिरणद
श्री हेमरत्न गुरु सूरि गुरणचन्द ।।८१।।
हिन्दी रासो काव्य परम्परा पृष्ठ स० १६१

३. सवत पनर एकोतरइ एम्हा, जेठह चउथि विशुद्ध-सुरिण ।
पुण्य नर्क्षत्र गुरु वारिसें ए म्हा चरित्र ए पुहवि प्रसिद्ध सुरिण ।।२२२।।

३ आदि भाग—पहिलउ प्रणमिसु अनुक्रमिइए जिरणवर चुवीस ।
पछइ शासीन देवताए तहि नामु सीस ।

क्रमश

३. प० धर्मदास

प० धर्मदास उन कवियो मे से हैं जिनके साहित्य और जीवन से हिन्दी जगत अपरिचित सा है। हिन्दी जैन साहित्य के इतिहास मे भी इनका केवल नामोल्लेख ही हुआ है। धर्मदास का जन्म कब और कहा हुआ था इसका उल्लेख न तो स्वयं कवि ने ही अपनी रचना मे किया है और न अन्यत्र ही मिलता है। लेकिन सवत् १५७८ वैशाख सुदि ३ बुधवार के दिन इन्होने 'धर्मोपदेशश्रावकाचार' को समाप्त किया था।[1] इस आधार पर इनके जन्म काल का अनुमान किया जा सकता है। कवि की अभी तक एक ही रचना मिल सकी है। अत यह सम्भव है कि उन्होने यही एक रचना लिखी हो।

धर्मदास ने सम्पन्न घराने मे जन्म लिया था। इनके वंशज दानी परोपकारी तथा दयावान थे। ये 'साहु' कहलाते थे। साहु शब्द प्राचीन काल मे प्रतिष्ठित और धनाढ्य पुरुषो के लिए प्रयोग हुआ हैं तथा जो साहूकारी का कार्य करते थे वे भी साहू कहलाते थे। कवि के पिता का नाम रामदास और माता का नाम शिवी था। इनके पितामह का नाम 'पदम' था। ये विद्वान् तथा चतुर पुरुष समझे जाते थे। सज्जनता इममे कूट-कूट कर भरी हुई थी। स्वय विधाता ने ही मानो इनको परोपकारी बनाया था। देश-देश के बहुत से मित्र इनसे सभी प्रकारके कार्यो के लिए सलाह लिया करते थे। ये कवियो और विद्वानो को खूब सम्मान देते थे। कवि की वशावली इस प्रकार है[2]—

समरीअ सामिणि सारदा सामिणि सभारु।
आगइ पालउ प्रतिपय कवितएं कारु ॥

अन्त भाग—शील प्रबन्ध जे सांभलिए ए म्हाः ते नर नारि धनधत्व सु।
सुदर्शन रिषि कवलीए म्हा चउविह सघ सुप्रसन्न ॥२५॥

१ पन्द्रहसै अट्ठहत्तरि वरिसु सवच्छरु कुसलह कन सरसु।
निर्मल वैशाखी अखनीज बुधवार गुनियहु जानीज ॥

२ जिन पय भत्तउ होरिल साहू. सो जु दान पूज कौ पवाहू।
तासु तू मनु सत्य जस गेहू, धर्मशील वत जानेहू।
तासु पुत्र जेठौ करमसी, जिनमति सुमति जासु मन वसी।
दया आदि दे धर्म हि लीन परम विवेकी पाप विहीन।

क्रमशः

होरिल साहू

करमसी

पदम

रामदास

धर्मदास

धर्मदास को जैन धर्म पर दृढ़ श्रद्धान था। वह शुद्ध श्रावक था तथा श्रावक धर्म को जीवन मे उतार लिया था। यद्यपि कवि गृहस्थ था। व्यापार करके आजीविकोपार्जन करता था फिर भी उसका अधिक समय शास्त्रो के पठन-पाठन मे व्यतीत होता था।

जैनधर्म सेवै नित्त, अरु दह लक्षण भाव पवित्त।
नित निर्ग्रन्थ गुरनि मानउ, जिन आगम कहू पठतु सु ंनहू।

धर्मोपदेशश्रावकाचार मे दैनिक जीवन मे जन साधारण के मन मे उतारने योग्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह परिमाण के अतिरिक्त आठ मद, दस धर्म, बारह भावना और सप्त व्यसन पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

कवि ने रचना मे अपना कोई पाडित्य का प्रदर्शन नही करके साधारण भाषा मे विषय का वर्णन किया है। शब्दो को तोड मरोड कर प्रयोग करने की आदत कवि मे नही पायी जाती और न आलकारिक भाषा मे पाठको के चित्त को उलझन मे डालने की चेष्टा की गयी है।

पदम नाम ताकै भौ पूत, कवियनु वेदकु कला सजूत।
अवर वहुत गुन गहिर समान, महा सुमति अति चतुर सुजानु।
अरु सो सज्जनता गुण लीन, पर उपगारी विधना कीन।
बहू मिन्त्री तस मनवि कोइ, सलह ही देस देस कौ लोइ।
राम सिवी तसू तनिय कलत्त, परम सील वे पस्य पवित्र।
तासु उदर सुत उपनौ वेवि, जिनु तिजि अवरुन धावंहि ते वि।
जै कौ धम विनुह सिरमनी, जिहि पर राम अवांगनी।
दयालीन जिनवर पय धुनी, पर पायो धनु धूलि सम गिनै।

ससारी जीव का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है जो युवावस्था मे विलासिता मे फंसा रहता है, इन्द्रियो ने जिस पर विजय प्राप्त करली है जिसका जीवन इन्द्रियो की लालसा तथा वासना को पूर्ण करने मे ही व्यतीत होता है। ऐसा मनुष्य ससारी कहलाने योग्य है उस मनुष्य को लौकिक जीवन के सुधारने मे कभी सफलता नही मिलती ।

राग लीन जौवन महि रहे इन्द्री जिते परीसा सहै ।
ता कहू सिद्धि कदाचित होइ ससारी तिन जानहु सोइ ।।

पण्डित अथवा विवेकी मनुष्य वही है जो पुत्र, मित्र, स्त्री, धन आदि पर अनुचित मोह नही करता है तथा उनके उपयोग के अनुसार ही उन पर मोह करता है—

पुत्र, मित्र नारी धन धानु, वधु सरीर जु कुल असमान ।
अवरु प्रीय वस्तु अनुसरै ता पर राग न पण्डित करै ।

वेश्यागमन मनुष्य के लिए अति भयकर है । वह उसे कर्त्तव्य मार्ग से विमुख कर देता है । इस जीवन को तो दुखमय बना ही देता है किन्तु पारलौकिक जीवन को भी दुख मे डाल देता है। सच्चरित्र पुरुष वेश्या के पास जाते हुए डरते हैं । क्योकि व्यसनो मे फसाना ही उसका काम होता है—

वेश्या सग धर्म को हरै, वेश्या सग नर्क को करै ।
जाते होइ सुगति कौ भगु, नहि ते तज नौ वेश्या सगु ।।

मनुष्य जीवन बार-बार नही मिलता । जो इस जीवन का सदुपयोग नही करता उसको अन्त मे पश्चाताप के सिवा कुछ नही मिलता । जैसे समुद्र मे फेंके गये माणक को फिर से प्राप्त करना मुश्किल है उसी प्रकार मनुष्य जीवन दुर्लभ है। लेकिन प्राप्त हुए मानव जीवन को व्यर्थ खोना सबसे बडी मूर्खता है। वह मनुष्य उस मूर्ख के समान है जो हाथ मे आये हुए माणक को कौए को उडाने मे फेंक देता है—

समुद माइ माणिक गिरि जाइ, वूडत उछरत हाथ चडाइ ।
पुनु सो काग उडावन काज, राख्यौ रतन मूढ वे काज ।
तेम जीव भव सागर माहि, पायो मानुस जन्म अनाहि ।

श्रेष्ठ मनुष्यो की सगति ही जीवन को उन्नत करती है । कुसगति से मनुष्य व्यसनी बन जाता है । कुसगति मे गुणी-निर्गुणी, साधु असाधु तथा धर्मात्मा पापी बन जाता है। यह उस दावानल के समान है जो हरे-भरे वन को जला कर राख कर देती है ।

ज्वरी मासाहारी जीव अवगनु, जिन्हि चोरी की भीव ।
पर तिय लीन करहि मद पान, तिन सौ सत्रुन दूजो आन ।
करै कुमित्र सगु जो कोइ, गुनवन्तो जो निर्गुण होइ ।
सूखै दाद संग ज्यौ हर्यौ दावानल महि पुनु सौ पर्यो ।

इस प्रकार कवि समाज के शिक्षक के रूप मे हमारे समक्ष आता है। उसने यह दर्शाया है कि गृहस्थी रहकर भी मानव अपने जीवन को उन्नत बना सकता है। उसे साधु सन्यासी बनने की आवश्यकता नही है।

कवि की रचना मे व्रजभाषा तथा अवधी भाषा के शब्दो का प्रयोग अधिक हुआ है। इससे तत्कालीन हिन्दी साहित्य पर उक्त दोनो भाषाओ का प्रभाव झलकता है। अलकारिक भाषा न होते हुए भी उदाहरणो के प्रयोग से रचना सुन्दर बन गयी है।

४. भट्टारक शुभचन्द्र

शुभचन्द्र भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य थे। वे अपने समय के प्रसिद्ध भट्टारक, साहित्य प्रेमी, धर्म प्रचारक एव शास्त्रो के प्रबल विद्वान थे। इनका जन्म सवत् १५३०–४० के मध्य हुआ था। जब वे बालक थे तभी इनका भट्टारको से सम्पर्क हो गया। पहले इन्होने सस्कृत एव प्राकृत के ग्रन्थो का गहन अध्ययन किया। तत्पश्चात् व्याकरण एव छन्द शास्त्र मे निपुणता प्राप्त की।

सवत् १५७३ मे ये भट्टारक के सम्माननीय पद पर आसीन हो गये। इनकी कीर्ति धीरे-धीरे देश मे फैल गयी। ये राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, पजाब एव उत्तर प्रदेश सभी प्रदेशो मे लोकप्रिय बन गये। ये वक्तृत्व कला मे पटु तथा आकर्षक व्यक्तित्व वाले सन्त थे। इन्होने जो साहित्य-सेवा की थी वह अभूतपूर्व एव अद्वितीय है। भट्टारक के उत्तरदायित्व एवं सम्माननीय पद पर होते हुए भी इनका विशाल साहित्य सर्जन अनुकरणीय है।

शुभचन्द्र ४० वर्षो तक भट्टारक पद पर रहे। चालीस वर्षो मे इन्होने सस्कृत की ४० रचनाए एव हिन्दी की ७ रचनाओ का सर्जन किया। हिन्दी रचनाओ मे "तत्वसार दूहा", "दान छन्द", "गुरु छन्द", "महावीर छन्द', नेमिनाथ छन्द, विजयकीर्ति छन्द एव अष्टाह्निका गीत के नाम उल्लेखनीय हैं। तत्वसार दूहा के अतिरिक्त सभी लघु कृतिया हैं। तत्वसार दूहा सैद्धान्तिक रचना है, जो जैन सिद्धान्त पर आधारित है। इसमे ६१ दूहे है। इसे श्रावक दुलहा के अनुरोध से लिखा था। महावीर छन्द मे २७ पद्य हैं, इसी तरह विजयकीर्ति छन्द मे २६ पद्य हैं। गुरु छन्द

मे ११ तथा नेमिनाथ छन्द मे २५ पद्य हैं।[1]

५ ब्रह्म यशोधर

ब्रह्म यशोधर का जन्म कब और कहाँ हुआ इस विषय मे कोई निश्चित जानकारी उपलब्ध नही होती। लेकिन एक तो ये भट्टारक सोमकीर्ति (सवत् १५२६ से १५४०) के शिष्य थे तथा दूसरी इनकी रचनाओ मे सवत् १५८१ एवं १५८५ ये दो रचना-काल दिये हुए हैं इसलिए इनका समय भी सवत् १५४० से १६०० तक के मध्य तक निश्चित किया जा सकता है। इनकी रचनाओ वाला एक गुटका नैणवा (राजस्थान) के शास्त्र भण्डार मे उपलब्ध हुआ है। उनमे इनकी बहुत सी रचनाए दी हुई हैं तथा वह इनके स्वय के हाथ का लिखा हुआ है।

अब तक कवि के नेमिनाथ गीत (तीन) मल्लिनाथ गीत, वलिभद्र चौपई के अतिरिक्त अन्य कितने ही गीत उपलब्ध हुए हैं, जो विभिन्न शास्त्र भण्डारो मे सग्रहीत हैं। वलिभद्र चौपई इनकी सबसे बड़ी कृति है जो १८६ पद्यो मे समाप्त होती है। कवि ने इसे सवत् १५८५ मे स्कन्ध नगर के अजितनाथ के मन्दिर मे पूर्ण की थी। कवि की सभी रचनाए भाव भाषा एवं शैली की दृष्टि से उच्चस्तरीय रचनाए हैं।[2]

६. ईश्वर सूरि

ये शान्ति सूरि के शिष्य थे। इनकी एकमात्र कृति 'ललिताङ्ग चरित्र' का उल्लेख मिश्रबन्धु ने किया है।[3] ललिताङ्ग चरित्र का रचना काल सवत् १५६१ है।

सालकार समत्थ सच्छन्द सरस सुगुण सजुत्त।
ललियग कुम चरिय ललरणा ललियव निसुरणेह।
महि महति मालव देस धण कणय लाच्छि निवेस।
तिह नयर मांडव दुग्ग अहि नवउ जाणकि सग्ग।
नव रस विलास उल्लोल नवगाह गेह कलोल।
निज बुद्धि बहुअ विनाणि, गुरु धम्म कफ बहु जाणि।

१. कवि का विस्तृत परिचय के लिए देखिये लेखक की कृति "वीर शासन के प्रभावक आचार्य"—पृष्ठ सख्या १७८ से १८८ तक।
२ विशेष परिचय के लिए लेखक की कृति—'राजस्थान के जैन सन्त–व्यक्तित्व एव कृतित्व' पृष्ठ संख्या ८३ से ९२।
३. मिश्रबन्धु विनोद, पृष्ठ सख्या १३४।

इय पुण्य चरिय सबन्ध ललिअग नृप सबध ।
पहु पास चरियह चित्त उद्धरिय एह चरित्त ।।

७. बालचन्द

इन्होने सवत् १५८० मे राम-सीता चरित्र की रचना की थी ।[1]

८. राजशील उपाध्याय

खतरगच्छ के साधु हर्ष के शिष्य थे । इन्होने सवत् १५६३ मे चित्तौड नगर मे 'विक्रम चरित्र चौपई' की रचना की थी । रचना काल एव रचना स्थान का वर्णन निम्न प्रकार दिया हुआ है ।[2]

पनरसइ त्रिसठी सुविचारी जेठ मासि उज्जान पाखि सारी ।
चित्रकूट गढ तास मझाई भणता भवियण जय जयकारी ।

९. वाचक धर्मसमुद्र

धर्मसमुद्र वाचक विवेकसिह के शिष्य थे । अब तक इनकी निम्न रचनाए प्राप्त हो चुकी हैं[3]—

सुमित्रकुमार रास — सवत् १५६७
गुणाकर चौपई — सवत् १५७३
कुलध्वज कुमार — संवत् १५८४
सुदर्शन रास —
सज्झाय —

१०. सहजसुन्दर

ये उपाध्याय रत्नसमुद्र के शिष्य थे । सवत् १५७० से १५९६ तक लिखी हुई इनकी २० रचनायें प्राप्त होती हैं । इनमे इलातीपुत्र सज्झाय, गुणरत्नाकर छन्द (स० १५७२), ऋषिदत्ता रास, आत्मराग रास के नाम उल्लेखनीय है ।

११. पार्श्वचन्द्र सूरि

पार्श्वचन्द्र सूरि का राजस्थानी जैन कवियो मे उल्लेखनीय स्थान है । इन्ही के नाम से पार्श्वचन्द्र गच्छ प्रसिद्ध हुआ था । ९ वर्ष की आयु मे ये मुनि बन गए ।

१. मिश्रबन्धु विनोद, पृष्ठ सख्या १४४ ।
२ राजस्थान का जैन साहित्य, पृष्ठ सख्या १३२ ।
३ राजस्थान का जैन साहित्य, पृष्ठ संख्या १७३ ।

गहन अध्ययन के पश्चात् १७ वर्ष की आयु मे ये उपाध्याय बन गये। जब २८ वर्ष के थे तो ये आचार्य पद से सम्मानित किये गये। साहित्य निर्माण मे इन्होने गहन रुचि ली और पर्याप्त सख्या मे ग्रन्थ निर्माण करके एक कीर्तिमान स्थापित किया। इनकी भाषा टीकायें प्रसिद्ध हैं जिनमे राजस्थानी गद्य के दर्शन होते है।[1] सवत् १५९७ मे इन्होने वस्तुपाल तेजपाल रास की रचना समाप्त की थी।[2]

१२. भक्तिलाभ एव चारुचन्द्र

भक्तिलाभ एव चारुचन्द्र दोनो गुरु शिष्य थे। राजस्थानी भाषा मे इन्होने कितने ही स्तवन लिखे थे। ये सस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे। चारुचन्द्र ने सवत् १५७२ मे बीकानेर मे उत्तमकुमार चरित्र की रचना की थी।[3]

१३ वाचक विनयसमुद्र

ये उपकेशीय गच्छ वाचक हर्षसमुद्र के शिष्य थे। अब तक इनकी ३० रचनाए उपलब्ध हो चुकी है जिनका रचना काल सवत् १५८३ से १६१४ तक का है। इनकी विक्रम पचदड चौपई (स० १५८३) आराम शोभा चौपई (स० १५८३) अम्बड चौपई (स० १५९९)' मृगावती चौपई (स० १६०२) पद्मावती रास (स० १६०४) पद्म चरित्र (स० १६०४) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।[4]

उक्त कवियो के अतिरिक्त इन ४० वर्षों मे और भी जैन कवि हुये हैं जिन्होने हिन्दी मे विपुल साहित्य का निर्माण किया था। देश के विभिन्न शास्त्र भण्डारो मे ऐसे कवियो की खोज जारी हैं।

ब्रह्म बूचराज

कविवर ब्रह्म बूचराज विक्रम की १६ वी शताब्दी के अन्तिम चरण के कवि थे। वे भट्टारकीय परम्परा के साधु थे तथा ब्रह्मचारी पद को सुशोभित करते थे। कवि ने अपना सबसे अधिक जीवन राजस्थान मे ही व्यतीत किया था और एक स्थान से दूसरे स्थान पर बराबर विहार करके यहाँ की साहित्यिक जाग्रति मे अपना योग दिया था। रूपक काव्यो के निर्माण मे उन्होने सबसे अधिक रुचि ली साथ ही जन सामान्य मे अपने काव्यो के माध्यम से आध्यात्मिकता का प्रचार प्रसार किया।

१　राजस्थान का जैन साहित्य पृष्ठ १७३।
२　हिन्दी रासो काव्य परम्परा-पृष्ठ १९६-९७।
३.　राजस्थान का जैन साहित्य पृष्ठ १७३।
४　विस्तृत परिचय के लिए—राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल—पृष्ठ ६६-७६.

ब्रह्म बूचराज भट्टारक भुवनकीर्ति के शिष्य थे।[1] जो अपने समय के सम्माननीय भट्टारक थे। वे सकलकीर्ति जैसे भट्टारक के पश्चात् भट्टारक पद पर विराजमान हुए थे। बूचराज ने भुवनकीर्ति गीत मे भट्टारक रत्नकीर्ति का भी उल्लेख किया है जिससे जान पडता है कि कवि को अपने अन्तिम समय मे कभी-कभी भट्टारक रत्नकीर्ति के पास रहने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ था। इसीलिए उन्होने भुवनकीर्ति गीत मे 'बूचराज भणि श्री रत्नकीर्ति पाटिउ संगु कलिया सुरतरो" रत्नकीर्ति के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की है।

कवि राजस्थानी विद्वान थे। लेकिन इनका पर्याप्त समय पजाब के नगरो मे व्यतीत हुआ था। इन्होने स्वय अपने जन्म-स्थान, माता-पिता, शिक्षा-दीक्षा, आयु आदि के बारे मे कुछ भी परिचय नही दिया। इनकी अधिकाश रचनाएँ राजस्थान के शास्त्र भण्डारो मे ही उपलब्ध हुई है। इसलिए इन्हे राजस्थानी विद्वान् कहा जा सकता है। इन्होने अपनी दो रचनाओ मे रचना सवत् का उल्लेख किया है। जो सवत् १५८६ एव सवत् १५६१ है। सवत् १५८६ मे रचित मयरणजुज्झ मे इन्होने न किसी स्थान विशेष का उल्लेख किया है और न किसी व्यक्ति विशेष का परिचय दिया। इसी तरह सवत् १५६१ मे रचित 'सतोष जय तिलकु' मे केवल हिसार नगर मे काव्य रचना समाप्त करने का उल्लेख किया है। अत वश एवं माता-पिता का परिचय प्रस्तुत करना कठिन है।

बूचराज का प्रथम नामोल्लेख सवत् १५८२ की एक प्रशस्ति मे मिलता है। यह प्रशस्ति 'सम्यकत्व कौमुदी' के लिपि कर्त्ता द्वारा लिखी हुई है। उसमे भट्टारक प्रभाचन्द्र देव के आम्नाय का, चम्पावती (चाकसू, जयपुर) नगर का, वहाँ के शासक महाराजा रामचन्द्र का उल्लेख किया गया है। चम्पावती के श्रावक खण्डेलवाल वशीय साह गोत्र वाले साह काधिल एव उनके परिवार के सदस्यो ने सम्यक्त्व कौमुदी की प्रति लिखवाकर ब्रह्म बूचराज को प्रदान की थी। इससे ज्ञात होता है कि सवत् १५८२ मे कवि चम्पावती मे थे। वहा मूल सघ के भट्टारको का जोर था और ये भी उन्ही के सघ मे रहते थे।[2] चम्पावती उस समय भट्टारक प्रभाचन्द्र

१ श्री भुवनकीर्ति चरण प्रणमोहू सखी आज वद्धावहो। भुवनकीर्ति गीत

२ सवत् १५८२ वर्षे फाल्गुन सुदी १४ शुभदिने श्री मूलसघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे नद्याम्नाये श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनन्दि-देवा स्तत्पट्टे भट्टारक श्री शुभचन्द्र देवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री जिनचन्द्रदेवास्तत्पट्टे

क्रमश

एव ब्रह्मचारी शिष्यो का केन्द्र थी। इसी संवत् मे राजवार्तिक जैसे ग्रन्थ की प्रति करवाकर ब्रह्म लाल को दी गयी थी।[1] सवत् १५७५ से १५८५ तक जितनी प्रशस्तियाँ हमारे सग्रह मे उपलब्ध होती है उन सभी के ग्रन्थ किसी न किसी भट्टारक अथवा उनके शिष्य, ब्रह्मचारी या साधु को भेंट किये गये थे। उस समय बूचराज की भट्टारक प्रभाचन्द्र के प्रिय शिष्यो मे गिनती थी। इनकी सम्भवत वह साधु बनने की प्रारम्भिक अवस्था थी। भट्टारक संघ मे संस्कृत एवं प्राकृत के ग्रन्थो का अध्ययन चलता था। इसीलिए भट्टारक प्रभाचन्द्र अपने शिष्यो के पठनार्थ ग्रन्थो की प्रतियाँ भेंट स्वरूप प्राप्त करते रहते थे।

चाटसू (चम्पावती) से इनका विहार किधर हुआ इसका स्पष्ट निर्देश तो नही किया जा सकता लेकिन सवत् १५८९ मे ये राजस्थान के किसी नगर मे थे। वही रहते हुए इन्होंने अपनी प्रथम कृति 'मयणजुज्झ' को समाप्त की थी। यह अपभ्रंश प्रभावित कृति है।

सवत् १५९१ मे वे हिसार पहुँच गये और वहाँ हिन्दी मे इन्होंने 'सतोषजय-तिलकु' की रचना समाप्त की। उस दिन भादवा सुदी पचमी थी। पर्यूषण पर्व का प्रथम दिन था। बूचराज ने अपनी कृति दशलक्षण पर्व मे स्वाध्याय के लिए समाज को समर्पित की। संवतोल्लेख वाली कवि की यह दूसरी व अन्तिम कृति है। इस कृति के पश्चात् कवि की जितनी भी शेष कृतियाँ प्राप्त हुई है उनमे किसी मे सवत् दिया हुआ नही है।

हस्तिनापुर गमन

कवि ने अपने एक गीत मे हस्तिनापुर के मन्दिर एव शान्तिनाथ स्वामी के मन्दिर का वर्णन किया है तथा वहाँ पर होने वाले कथा पाठ का उल्लेख किया है। इससे मालूम पड़ता है कि कवि हस्तिनापुर दर्शनार्थ गये थे।

> भट्टारक श्री प्रभाचन्द्रदेवास्तदाम्नाये चपावती नामनगरे महाराव श्री रामचन्द्रराज्ये खडेलवालान्वये साह गोत्रे सघभार धुरंधर सा० काधिल भार्या कावलदे तस्य पुत्र जिनपूजापुरन्दर सा० गूजर भार्या प्रथम लाछी द्वितीय सरो...... ....एतान् इद शास्त्र कौमुदी लिखाप्य कर्मक्षय निमित्त ब्रह्म बूचाय दत्तं।
>
> (प्रशस्ति संग्रह—सम्पादक डा० कासलीवाल पृष्ठ, ६३)

१. देखिये प्रशस्ति सग्रह—सम्पादक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, पृ० ५४।

कृतियाँ

उक्त दोनो कृतियो सहित बूचराज की अब तक निम्न रचनाएँ प्राप्त हो चुकी है—

१. मयणजुज्झ
२. सन्तोष जयतिलकु
३. बारहमासा नेमीस्वर का
४ चेतनपुद्गल धमाल
५ नेमिनाथ बसतु
६ टडाणा गीत
७ भुवनकीर्ति गीत
८ नेमि गीत
६. विभिन्न रागो मे निबद्ध ११ गीत एवं पद

इस प्रकार कवि की अब तक १६ कृतियाँ प्राप्त हो चुकी है जो भाषा, शैली एव भावो की दृष्टि से हिन्दी की अच्छी रचनाए है। कवि के पदो पर पजाबी भाषा का स्पष्ट प्रभाव है जिससे मालूम पड़ता हैं कि कवि पजाबी भापा भाषी भी थे।

विभिन्न नाम

कविवर बूचराज के और भी नाम मिलते है। बूचराज के अतिरिक्त ये नाम है बूचा, वल्ह, वील्ह, वल्हव। कही-कही एक ही कृति मे दोनो प्रकार के नामो का प्रयोग हुआ है। इससे लगता है कि बूचराज अपने समय के लोकप्रिय कवि थे और विभिन्न नामो से जन सामान्य को अपनी कविताओ का रसास्वादन कराया करते थे। वैसे उनका बूचा अथवा बूचराज सबसे अधिक लोकप्रिय नाम रहा था।

समय

कवि के समय के बारे मे निश्चित तो कुछ भी नही कहा जा सकता। लेकिन यदि उनकी आयु ७० वर्ष की भी मान ली जावे तो हम उनका समय सवत् १५३०–१६०० तक का निश्चित कर सकते है। आखिर सवत् १५६१ के वाद उन्होने जितनी कृतियो को छन्दोवद्ध किया था उसमे कुछ वर्ष तो लगे ही होगे। इसके अतिरिक्त ऐसा लगता है उन्होने साहित्य लेखन का कार्य जीवन के अन्तिम १५–२० वर्षो मे ब्रह्मचारी की दीक्षा लेने और सस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश का गहरा अध्ययन करने के पश्चात् ही किया था।

कवि ने अपनी किसी भी कृति मे तत्कालीन शासक का उल्लेख नही किया और न उनके अच्छे बुरे शासन के बारे मे लिखा। जान पडता है कि उस समय देश मे कोई भी शासक कवि को प्रभावित नही कर सका था इसलिए कवि ने उनका नामोल्लेख करने की आवश्यकता ही नही समझी।

मयणजुज्झ (मदन युद्ध)

मयणजुज्झ कवि की सवतोल्लेख वाली प्रथम रचना है। यह अपभ्रंश भाषा प्रभावित हिन्दी कृति है। हिन्दी अपभ्रंश का किस प्रकार स्थान ले रही थी यह कृति इसका स्पष्ट उदाहरण है। मदनयुद्ध एक रूपक काव्य है जिसमे प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव एव कामदेव के मध्य युद्ध होने पर भगवान ऋषभदेव की उस पर विजय वतलाई गयी है।

मदनयुद्ध कवि की प्रथम रचना है यह तो स्पष्ट नही कहा जा सकता क्योकि उनकी अधिकाश रचनाओ मे रचना काल दिया हुआ नही हैं। फिर भी ऐसा लगता है कि यह उनकी प्रारम्भिक रचना है जिसमे उन्होने अपभ्रंश भाषा का प्रयोग किया है और इसके पश्चात् जव केवल हिन्दी की ही रचनाओ की माग हुई तो कवि ने अन्य रचनाओ मे केवल हिन्दी का ही प्रयोग किया। इस काव्य का रचना काल सवत् १५८९ आश्विन शुक्ला प्रतिपदा शनिवार है।[1] कृति मे रचना स्थान का कोई उल्लेख नही मिलता।

इस रूपक काव्य मे १५९ पद्य हैं। जो विभिन्न छन्दो मे निवद्ध है। इन छन्दो मे गाथा, रड मडिल्ल, दोहा, रगिका, षट्पद कवित्त आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। भाषा की दृष्टि से हम इसे डिंगल की रचना कह सकते हैं। शब्दो पर जोर देने की दृष्टि से उन्हे युगलात्मक बनाया गया है। जैसे निर्वाण के लिए णिव्वाणि, पैदा होने के लिए उपज्जइ, एक के लिए इक्कु (१७) अधर्म के लिए अघम्म आदि इसके उदाहरण हैं। काव्य की कथा वड़ी रोचक एव शिक्षाप्रद है। कथा भाग का साराश निम्न प्रकार है।

कथा

प्रारम्भिक मगलाचरण के पश्चात् कवि ने कहा है कि काया रूपी दुर्ग मे चेतन राजा निवास करते हैं। मन उनका मत्री है। प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दो उनकी स्त्रियाँ हैं। दोनो के ही एक-एक पुत्र उत्पन्न होता है जिनके नाम मोह एव

१ राइ विक्कम तणउ सवतु नवासिय पनरहसै सरद रूति आसवज वखाणिउ।
तिथि पडवा सुकनु पखु, सनि सुवारू करू नखित्तु जाणिउ॥
- मयण जुज्झ

विवेक हैं। चेतन राजा से दोनो को ही बराबर स्नेह मिलता है। मोह के घर मे माया रानी होती है जो जगत को सहज ही मे फुसला लेती है। निवृत्ति विवेक को साथ लेकर नगर छोड देती है। वे दोनो आगे चलकर पुण्य नगर पहुँचते हैं जहाँ चेतन राजा राज्य करते थे। वहाँ उन दोनो को बहुत आदर दिया गया। सुमति का विवाह विवेक के साथ हो जाता है। विवेक का वहाँ राज्य हो जाता है।

इससे मोह को बहुत निराशा होती है। उसने पुण्य नगर मे अपने चार दूत भेजे। उनमे से तीन तो वापिस चले आये केवल वहाँ कपट बचा जो सरोवर पर पानी भरने वाली महिलाओ के पास जाकर बैठ गया। नगर मे ज्ञान जल सरोवर भरा हुआ था। वहाँ जो वृक्ष थे वे मानो व्रत रूप ही थे। उस पर जो पक्षी बैठते थे वे मानो रिद्धि रूप मे ही थे। कपट ने साधु का वेष धारण करके नगर मे प्रवेश किया। वहाँ उसने न्याय नीति का मार्ग देखा तथा इन्द्र लोक के समान सुख देखे। वहाँ से वह अधर्मपुरी पहुँचा तथा मोह से सब वृतान्त कह सुनाया।

अपने दूत द्वारा सब वृतान्त सुनकर उसे बडा विषाद हुआ और उसने शीघ्र ही रोष, झूठ, शोक सताप, सकल्प विकल्प, चिंता, दुराव, क्लेश आदि सभी को अपने दरवार मे बुलाया और निम्न वाक्य कहे—

करिवि सभा तब मोह मदु, इव चितइ मन माँहि।
जव लग जीवइ विवेक इहु, तब लगु सुख हम नाहि ॥३३॥

मोह की बात सुनकर उसका पुत्र कामदेव उठा और उसने निवृत्ति के पुत्र विवेक को बाध कर लाने का वचन दिया। इससे सभी ओर प्रसन्नता छा गयी। साथ मे उसने कुमति, कुसील एव कुवुद्धि को साथ लिया।

कामदेव को अपनी विजय पर पूर्ण भरोसा था। सर्वप्रथम उसने वसन्त को भेजा। बसन्त के आगमन से चारो ओर वृक्ष एव लताए नवपल्लव एव पुष्पो से लद गयी। कोयल कुहु कुहु की मधुर तान छेडने लगी तथा भ्रमर गुजार करने लगे। सुरभित मलयानिल, सुन्दर मधुर गीत एवं वीणा आदि वाद्यो के मधुर गीत सुनायी देने लगे। चारो ओर अजीव मादकता दिखाई देने लगी। मदनराज आ गये हैं यह चर्चा होने लगी। कामदेव ने वहुत से ऋषि मुनियो को तप से गिरा दिया। वडे-वडे योद्धा जिन्हे अव तक मदोन्मत्त हाथी एव सिंह भी डरा नही सके थे वे सव कामदेव के वशीभूत होकर चारो खाने चित्त पड़ गये। इस प्रकार कामदेव सव पर विजय प्राप्त करता हुआ उस वन मे पहूँचा जहाँ भगवान ऋषभदेव ध्यानस्थ थे।

वह धर्मपुरी थी। विवेक ने सयमश्री का विवाह आदिनाथ से कर दिया था। लेकिन जव उसने कामदेव का आगमन सुना तो शत्रु को पीठ दिखा कर भागने

की अपेक्षा लडना उचित समझा । मदन सब देशो पर विजय प्राप्त करके स्वच्छन्द विचरने लगा । नट व भाट उसकी जय जयकार कर रहे थे । पिशाच एव गधर्व गीत गा रहे थे । कामदेव जब विजय प्राप्त करके लौटा तो उसका अच्छा स्वागत हुआ । रति ने भी कामदेव का खूब स्वागत किया और उसको विजय पर वधाई दी । लेकिन साथ मे यह भी प्रश्न किया कि उसने कौन-कौन से देश पर विजय प्राप्त की है । इस पर कामदेव ने निम्न प्रकार उत्तर दिया—

> जिणि सकरु इंदु हरि वमु, वासिग्ग पयालि जिसु ।
> इदु चदु गहगण तारायण विद्याधर यक्ष सु गधव्व सहि देव गण इण ।
> जोगी जंगम कापडी सन्यासी रस छदि
> ले ले तपु वण महि दुडिय ते मइ घाले वदि ॥६२॥

रति ने अपने पति कामदेव की प्रशसा करते हुए कहा कि धर्मपुरी को अभी और जीतना है जहाँ भगवान का ऋषभदेव का साम्राज्य है । रति की बात सुनकर कामदेव को वहुत क्रोध आया और वह तत्काल धर्मपुरी को विजय करने के लिए चल पडा । उसने आदीश्वर को शीघ्र ही वश मे करने की घोषणा की । कामदेव ने अपने साथी क्रोध, मोह, मान एव माया सभी को साथ लिया और धर्मपुरी पर आक्रमण कर दिया । अपने विपुल हावभाव एव विलास रूपी शस्त्रो से उन्हे जीतने का उपक्रम किया ।

दोनो ओर युद्ध के लिए खूब तैयारी की गयी तथा एक ओर सभी विकारो ने ऋषभदेव के गुणो पर आक्रमण कर दिया । अज्ञान ने ज्ञान को पछाडने का उपक्रम किया । मिथ्यात्व जैसे सुभट ने पूरे वेग से आक्रमण किया । लेकिन सम्यक्त्व रूपी योद्धा ने अपनी पूरी ताकत से मिथ्यात्व का सामना किया । जैसे सूर्य को देखकर अन्धकार छिप जाता है उसी प्रकार मिथ्यात्व भी सम्यकत्व के सामने नही टिक सका । राग ने गरज कर अपना अस्त्र चलाया लेकिन वैराग्य ने इसके वार को वेकार कर दिया । मद ने अपने आठ साथियो के साथ ऋषभदेव पर एकसाथ आक्रमण किया लेकिन ऋषभदेव ने उन्हे मार्दव धर्म से सहज ही मे जीत लिया । इसके पश्चात् माया ने अपना जाल फेंका और वाईस परिषहो ने एक साथ आक्रमण किया । लेकिन ऋषभदेव ने माया को आर्जव से तथा वाईस परिषहो को अपने 'धीरज' सुभट से सहज ही मे जीत लिया । इसके पश्चात् 'कलह' ने पूरे वेग से अपना अधिकार जमाना चाहा लेकिन क्षमा के सामने वह भी भाग गया । जब मोह का कोई वश नही चला और वह मुख फेर कर चल दिया तो लोभ ने अपनी पूरी सामर्थ्य मे विजय प्राप्त करना चाहा । उसका प्रभाव सारे विश्व मे व्याप्त है, कभी वह आगे वढता और कभी पीछे हट जाता । लेकिन जब सन्तोष ने पूरे वेग से प्रत्याक्रमण किया तो वह ठहर नहीं सका । कुशील पर ब्रह्मचर्य ने विजय प्राप्त की ।

ऋषभदेव ने कुमति को तो पहिले ही छोड़ दिया था इसलिए सुमति ही विवेक के साथ हो गयी। लेकिन मोह ने अपने सभी साथियो की हार सुनी तो उसकी आँखे लाल हो गयी तथा वह दात पीसने लगा तथा अपने रौद्र रूप से उसने आक्रमण कर दिया। ऋषभदेव ने विवेक रूपी सुभट को बुलाया और स्वय अपूर्वकरण गुणस्थान मे विचरने लगे। मोह की एक भी चाल नही चली और अन्त मे वह भी मुख मोड कर चल दिया।

जब कामदेव ने मोह को भी भागते देखा तो वह अपनी पूरी सेना के साथ मैदान मे उतर गया। लेकिन ऋषभदेव सयम रूपी रूप मे सवार हो गये थे। तीन गुप्तियाँ उनके रथ के घोडे थे। पच महाव्रत एव क्षमा उनके योद्धा थे। ज्ञान रूपी तलवार को हाथ मे लेकर सम्यक्त्व का छत्र तान कर वे मैदान मे उतरे। रणभूमि से कामदेव के सहायक एक-एक करके भागना चाहा। लेकिन ऋषभदेव ने युद्ध भूमि का घेरा इतना तीव्र किया कि कोई भी वहाँ से भाग नही सका और सबको एक-एक करके जीत लिया गया। चारो कषायो को जीत लिया, मिथ्यात्व का पता भी नही चला। ऋषभदेव को कैवल्य होते ही देवो ने दुदुभि बजानी प्रारम्भ कर दी तथा चारो दिशाओ मे ऋषभदेव के गुणगान होने लगे।

इस प्रकार कवि ने प्रस्तुत काव्य मे काम विकार एव उसके साथियो पर जिस प्रकार गुणो की विजय बतलायी है वह अपने आप मे अपूर्व है। इस प्रकार के रूपक काव्यो का निर्माण करके जैन कवि अपने पाठको को तत्कालीन युद्ध के वातावरण से परिचित भी रखते थे तथा उन्हे आध्यात्मिकता से दूर भी नही होने देते थे।

भाषा एव शैली

मयणजुज्झ यद्यपि अपभ्र श प्रभावित कृति है लेकिन इसमे हिन्दी के शब्दो का एव उसके दोहा एव रड, षट्पद, वस्तुबंध एव कवित्त जैसे छन्दो का प्रयोग इस बात का द्योतक है कि देशवासियो का मानस हिन्दी की ओर हो रहा था तथा वे हिन्दी की कृतियो के पढने के लिए लालायित थे। हिन्दी का प्रारम्भिक विकास जानने के लिए मयण जुज्झ अच्छी कृति है।

कवि ने कुछ तत्कालीन प्रचलित शब्दो का भी प्रयोग किया है। उसने सेना के स्थान पर फौज शब्द का[1] तथा तुरही के स्थान पर नफीरी का प्रयोग किया है।

१ ले फौज सबलु सकहि करि, इव विवेक भडु आइयउ।

इससे पता चलता है कि कवि प्रचलित शब्दो के प्रयोग का मोह नही त्याग सका और उसने अपने काव्य को लोकप्रिय वनाने के लिए प्रचलित शब्दो का प्रयोग करके उनको भी अपनाने का प्रयास किया ।

मयणजुज्भ की राजस्थान के शास्त्र भण्डारो मे कितनी ही प्रतियाँ सग्रहीत है । इनमे निम्न उल्लेखनीय हैं ।

१ भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर	गुटका स० २३२	पद्य स० १५८	लिपि सवत् १६१९
२ दि० जैन मन्दिर दीवानजी कामा[1]	,, ९	—	—
३ दि० जैन मन्दिर लश्कर, जयपुर	,, १६	—	—
४. दि० जैन मन्दिर बडा तेरहपथी जयपुर[2]	,, २४२	—	लिपि स० १७०५
५ दि० जैन मन्दिर वडा तेरहपथी, जयपुर	,, २७६	—	,, १७०७
६. महावीर भवन, जयपुर[3]	,, ४९	,, १५९	—
७ दि० जैन मन्दिर नागदी, बू दी	१०४	१४२	—

२ सतोष जयतिलकु

बूचराज की यह दूसरी रचना है जिसमे उसने रचना समाप्ति का उल्लेख किया है । सतोष जयतिलकु का रचना काल सवत् १५९१ भाद्रपद शुक्ला ५ है अर्थात् मयण जुज्भ के ठीक २ वर्ष पश्चात् कवि ने प्रस्तुत कृति को समाप्त किया था ।[4] दो वर्ष के मध्य मे कवि केवल एकमात्र रचना लिख सके अथवा अन्य लघु रचनाओ को भी स्थान दिया इसके सम्बन्ध मे निश्चित जानकारी नही मिलती है । लेकिन कवि राजस्थान से पजाब चले गये थे यह अवश्य सत्य है । प्रस्तुत कृति को उन्होने हिसार मे छन्दोवद्ध की थी । जैसा कि स्वय कवि ने उल्लेख किया है

सतोषह जय तिलउ जपिउ हिसार नयर मभ मे ।
जे सुणहि भविय इक्क मनि ते पावहि वछिय सुक्ख ।।

सतोष जय तिलकु भी एक रूपक काव्य है जिसमे लोभ पर सतोष की विजय बतलायी

१. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची पंचम भाग पृष्ठ ९८४, १०८८, ११०९ ।
२. वही, द्वितीय भाग ।
३ वही, प्रथम भाग ।
४ संवति पनरइ इक्याणु भद्दवि सिय पक्खि पंचमी दिवसे ।
सुक्कवारि स्वाति वृषे जेड तह जाणि वंभणामेण ।।१२२।।

गयी है। मयरा जुज्झ मे जिस प्रकार ऋषभदेव नायक एवं कामदेव प्रतिनायक है उसी प्रकार प्रस्तुत काव्य मे सतोष नायक एवं लोभ प्रतिनायक है। ऐसा लगता है कि कवि आत्मिक विकारो की वास्तविकता को पाठको के सामने प्रस्तुत करके उन्हे आत्मिक गुणो की ओर लगाना चाहता था तथा आत्मिक गुणो की महत्ता को रूपक काव्यो के माध्यम से प्रकट करना उसको अधिक रुचिकर प्रतीत होता था।

प्रस्तुत रूपक काव्य मे १२३ पद्य है जो साटिक, रड, गाथा षट्पद, दोहा, पद्धडी छद, मडिल्ल, चदाइरा छन्द, गीतिका छन्द, तोटक छन्द, रगिका छन्द, जैसे छन्दो मे विभक्त है। छोटे से काव्य मे विभिन्न ११ छन्दो का प्रयोग कवि के छन्द ज्ञान की ओर तो प्रकाश डालता ही है साथ ही मे तत्कालीन पाठको की रुचि का भी हमे बोध कराता है कि पाठक ऐसे काव्यो का सगीत के माध्यम से सुनना अधिक पसन्द करते थे। इसके अतिरिक्त उस समय सगुरा भक्ति के गुणानुवाद से भी पाठक गरा ऊब चुके थे इसलिए भी वे अध्यात्म की ओर झुक रहे थे।

प्रस्तुत काव्य की सक्षिप्त कथा निम्न प्रकार है।

मगलाचरण के पश्चात् कवि लिखता है कि भगवान महावीर का समवसरण पावापुरी मे आता है। भगवान की जब दिव्य ध्वनि नही खिरती तब इन्द्र गौतम ऋषि के पास जाता है और कहता है कि महावीर ने तो मौन धारण कर रखा है इसलिए "त्रैकाल्य द्रव्य षटक नव पद सहित' आदि पद्य का अर्थ कौन समझा सकता है? तब गौतम तत्काल इन्द्र के साथ जाने को तैयार हो जाते हैं। जब वे दोनो महावीर के समवसरण मे स्थित मानस्तम्भ के पास पहुँचते हैं तो मानस्तम्भ को देखते ही गौतम का मान द्रवित हो जाता है।

देखत मानथभो गलियउ तिसु मानु मनह मज्झमे।
हूवउ सरल पणामो पुछ्छ गोइमु चित्ति सदेहो ॥१०॥

गौतम ने भगवान् महावीर से पूछा कि स्वामी, यह जीव ससार मे लोभ के वशीभूत रहता है तो उसके बचने के क्या उपाय हैं? क्योकि लोभ के काररा ही मानव प्राणिवध करता है, लोभ के काररा ही वह झूठ बोलता है। लोभ से ही वह दूसरो के द्रव्य ग्रहरा करता है। सब परिग्रहो के सग्रह मे भी लोभ ही काररा है। जिस प्रकार तेल की बूद पानी मे फैल जाती है उसी प्रकार यह लोभ भी फैलता रहता है। एक इन्द्रिय के वश मे आने से यह प्राणी इतने दुख पाता है तो पाच इन्द्रियो के वशीभूत होने पर उसकी क्या दशा होगी, यह वह स्वय जान सकता है। लोभी मनुष्य उस कीडे के समान है जो मधु का सचय ही करता है उसका उपयोग नही करता है। क्रोध, मान, माया तथा लोभ इन चारो मे लोभ ही प्रमुख है।

इसके साथ ही तीन अन्य कषायो का प्रादुर्भाव होता है। जैसे सर्प के गले में गरल विष सयुक्त होता है उसी प्रकार राग एव द्वेष दोनो ही लोभ के पुत्र हैं। जहाँ राग सरल स्वभावी एव द्वेष वक्र स्वभावी होता है। लोभ के इन दोनो पुत्रो ने सभी प्राणियो को अपने वशीभूत कर रखा है फिर चाहे वह योगी हो अथवा यति एव मुनि हो। भगवान महावीर गौतम ऋषि से कहते हैं कि प्राणी को चारो गति मे डुलाने वाला यह लोभ ही है, इसलिए लोभ से बुरा कोई विकार नही है।

गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से फिर प्रश्न किया कि लोभ पर किस प्रकार विजय प्राप्त की जा सकती है तथा किस महापुरुष ने लोभ पर विजय पायी है। इम प्रकार भगवान महावीर ने निम्न प्रकार कहा—

सुणहु गोइम कहइ जिणणाहु,
यहु सासणु विम्मलड, सुणतं धम्मु भव वध तुट्टहि,
अति सूषिम भेद सुणि, मनि सदेह खिण माहि मिट्टहि।
काल अनंतिहि ज्ञान यहि कहियउ आदि अनादि।
लोभु दुसहु इव जिज्तियइ सतोषह परसादि ॥४८॥

लेकिन गौतम ने भगवान से फिर निवेदन किया कि सतोष कैसे पैदा हो, उसके रहने का स्थान कौन सा है। किसके साथ होने से उसमे शक्ति आती है। उसकी कौन-कौन सी सेना दल है तथा संतोष सुभट कैसा है। जब तक ये सब मालूम नही होगा लोभ पर विजय प्राप्त करना सम्भव नही है।

महावीर स्वामी ने कहा कि आत्मा मे सतोष स्वाभाविक रूप से पैदा होता है तथा वह आत्मपुरी मे ही रहता है। धर्म की सेना ही उसका बल है। ज्ञान रूपी बुद्धि से उस पर विजय प्राप्त की जा सकती है। जिस प्राणि ने सतोष को अपने मे उतार लिया बस समझलो कि उसने जगत को ही जीत लिया। जिसके जितना अधिक सतोष होगा उसको उतना ही सुख प्राप्त हो सकेगा। सतोषी प्राणी मे राग द्वेष की प्रवृत्ति नही होती तथा वह शत्रु मित्र मे समान भाव रखने वाला होता है। जिनके हृदय मे सतोष है उनकी बुद्धि चन्द्रकला के समान होती है तथा उनका हृदय कमल खिल जाता है। सतोष एक चिंतामणि रत्न हैं जिससे चित्त प्रसन्न रहता हैं। वह कामधेनु के समान सबको वाछित फल देता रहता है। जहाँ सतोष है वहाँ सब सुख विद्यमान हैं। सतोष से उत्तम ध्यान होता है, परिणामो मे सरलता आती है। वाछित सुखो की प्राप्ति होती है। सतोष से सवर तत्व की प्राप्ति होती है जिसके सहारे ससार को पार किया जा सकता है और अन्त मे निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है।

इधर जब लोभ को सतोष की बात मालूम हुई तो वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने सतोष को सदा के लिए समाप्त करने की घोषणा कर दी। उसने उस समय झूठ को अपना प्रधान बनाया। क्रोध एव द्रोह, कलह एव क्लेश, पाप एव सताप सभी को उसने एकत्रित किया। मिथ्यात्व, कुव्यसन, कुशील, कुमति, राग एव द्वेष सभी वहाँ आ गये और इन सब को अपने साथ देखकर लोभ प्रसन्न हो गया। उसने कपट रूपी नगाडो को बजाया तथा विषय रूपी घोडो पर बैठकर सतोष पर आक्रमण कर दिया।

सतोष ने जब लोभ रूपी शत्रु का आक्रमण सुना तो उसे प्रसन्नता हुई। उसका सेनापति आत्मा वही आ गया और उसने अपनी सेना को भी वही बुला लिया। वहाँ १८००० अगरक्षको के साथ शील सुभट आया। साथ मे ही सम्यक् दर्शन, ज्ञान एव चारित्र, वैराग्य, तप, करुणा, पंच महाव्रत, क्षमा एव सयम आदि सभी योद्धा वहाँ आ गये। वह अपने सैनिको को लेकर लोभ से जा टकराया। जिन शासन की जय जयकार होने लगी तो मिथ्यात्व भागने लगा। जय जयकार की महाध्वनि को सुनकर ही कितने ही शत्रु पक्ष के योद्धा लड़खडा गये। शील का चोला पहनकर रत्नत्रय के हाथी पर सवार होकर विवेक की तलवार लेकर सम्यक्त्व रूपी छत्र पहनकर पद्म एव शुक्ल लेश्या के जिस पर चवर ढुल रहे थे, ऐसा सतोष राजा रण मे लोभ से जा भिडा। उसने अपने दल के अन्दर अध्यात्म का संचार किया। जो शूरवीरो के हृदयो मे जाकर बैठ गया। एक ओर लोभ छलकपट से अपनी शक्ति को तोलने लगा तथा दूसरी ओर सतोष ने अपने सुभटो मे सरलता एव निर्मलता के भाव भरे। इस पर दोनो ओर से चतुरगिनी सेना एकत्रित हो गयी। भेरी बजने लगी। तब लोभ ने अपने सैनिको को सतोष के सैनिको पर आक्रमण करने के लिए ललकारा। सतोष ने लोभ से कहा कि ऐसा लगता है कि उसके सिर पर काल चढ गया है। उसके सब साथियो को मूढता सता रही है। जहाँ लोभ है वहाँ रात दिन यह प्राणी दु ख सहता रहता है। लेकिन जहाँ सतोष है वहाँ उसकी इन्द्र एव नरेन्द्र सेवा करते हैं। लोभ ने जगत मे अभी तक सभी को सताया है तथा जगत मे सभी को जीत रखा है, लेकिन आज सतोष का पौरुष भी देखे। यह सुनकर लोभ ने झूठ को आगे भेजा। लेकिन सतोष ने सत्य को भेजा और उसने उसका सिर काट लिया। इसके पश्चात् मान को बीडा दिया गया और वह जब रणभूमि मे उतरा तो मार्दव ने उसका सामना किया और उसको बलहीन कर दिया। लेकिन फिर भी वह हटा नही तो महाव्रतो ने एक साथ उस पर आक्रमण कर दिया और क्षण भर मे ही उसे परास्त कर दिया। अब मोह अपने प्रचण्ड हाथी पर बैठ कर आगे बढा। मोह को देखकर विवेक उठा और उसे रणभूमि मे से भागने

पर मजबूर कर दिया । माया ने विवध रूप धारण कर लिया और यह समझा कि उससे लडने की किसी मे शक्ति नही है । लेकिन आर्जव ने उसे सहज मे ही जीत लिया । क्रोध को क्षमा से तथा मिथ्यात्व को सम्यकत्व से जीत लिया गया । आठ कर्मो के प्रखर प्रहार को तप से जीतने मे सफलता प्राप्त की । अन्य जितने भी छोटे-छोटे योद्धा थे उनकी एक भी नही चली और उन्हे युद्ध भूमि मे ही सुला दिया । लोभ अपने सभी साथियो को युद्ध भूमि मे खेत् हुआ देखकर माथा धुनने लगा ।

लोभ गरज कर अपने हाथी पर सवार हुआ । कपट का उसने छत्र लगाया तथा विषयो की तलवार को हाथ मे ली । लेकिन सामने दमवें गुणस्थान मे चढे हुए तपस्वी विराजमान थे । लोभ पूरे विकट स्वभाव मे था । कभी वह बैठता, कभी वह उठता, कभी आकाश मे और कभी पृथ्वी पर अपना जाल फैलाने लगता । वह अपने विभिन्न रूप धारण करता । लोभ का रूप ऐसी अग्नि की कणी के समान लगने लगा जो, क्षण भर मे ही सारे जंगल को जला डालती है ।

लोभ का सामना करने के लिए सतोष आगे बढा । दसवें गुणस्थान से आगे बढकर शुक्ल ध्यान मे विचरने लगा । अज्ञानान्धकार नष्ट हो गया और केवल ज्ञान प्रकट हुआ । जिन वचनो को चित्त मे धारण कर सतोष ने लोभ पर विजय प्राप्त की । तेरह प्रकार के व्रतो को, बारह प्रकार के तप को अपने मे समाहित कर लिया ।

सतोष की विजय के उपरान्त देवगण दुदुभि बजाने लगे । ग्यारह अग और चौदह पूर्व का ज्ञान प्रकट हो जाने से मिथ्यात्वियो का गर्व गल गया और चारो ओर आत्मा की जय जयकार होने लगी ।

भाषा

प्रस्तुत कृति की भाषा यद्यपि मयणजुज्भ से अधिक परिस्कृत है लेकिन फिर भी वह अपभ्रंश के प्रभाव से पूर्ण रूप से मुक्त नही हो सकीहै । बीच-बीच मे गाथाओ का प्रयोग हुआ है । शब्दो को उकारान्त बनाकर प्रयोग करने मे कवि को अधिक रुचि दिखलायी देती है ।

कवि नाम

कवि ने प्रस्तुत कृति मे अपना नाम 'वल्हि' लिखकर रचना समाप्त की है ।[1]

---

१ यहु सतोषहु जय तिलउ जपइ वल्हि सभाइ ।

३. बारहमासा नेमीस्वरका

नेमि राजुल को लेकर प्राय: प्रत्येक जैन कवि किसी न किसी कृति की रचना करता रहा है। हमारे कवि बूचराज ने भी नेमीस्वर का बारहमासा लिखकर इस परम्परा को जोवित रखा। यह बारह मासा श्रावण मास से प्रारम्भ होकर आषाढ मास तक चलता है। इसमे रागु बडहसु के १२ पद्य हैं जिनमे एक-एक महिने का वर्णन किया गया है। राजुल की विरह वेदना तथा नेमिनाथ के तपस्वी जीवन के प्रति जो उसकी अप्रसन्नता थी वह सब इन पद्यो मे व्यक्त की गयी है।

इसमे न तो रचना काल दिया हुआ है और न रचना स्थान। इससे कृति का निश्चित समय नही दिया जा सकता है। फिर भी भाषा एव शैली की दृष्टि से रचना सवत् १५९१ के पश्चात् किसी समय लिखी गयी थी। इसमे कवि ने अपना नाम 'बूचा' कह कर उल्लेख किया है।[1]

बारह मासा सावण मास से प्रारम्भ होता है। सावण मे राजुल नेमिनाथ से अन्यत्र गमन न करने का आग्रह करती है तथा कहती है कि उनके अभाव मे उसका शरीर क्षण क्षण छीज रहा है। जब आकाश मे विजली चमकती है तो उसका विरह असह्य हो जाता है। जब मोर कुह कुह की आवाज करते हैं उस समय नेमि की याद आती है। इसलिए वह सावण मास मे अन्यत्र गमन न करने की प्रार्थना करती है।[2]

कातिक का महिना जब आता है तो राजुल हाथो मे दीपक लेकर अपने महल पर चढकर नेमिनाथ का मार्ग खोजती है। उसकी आँखे आसुओ से भर जाती है। वे दशो दिशाओ की ओर दौडती है। सरोवर पर सारस पक्षी के जोडे को देखकर वह कहती है कि नवयौवना एव तरुणी बाला ऐसे समय मे अपने पति के विरह मे कैसे जीवित रह सकती है। इसलिए वह नेमिनाथ से कातिक के महिने मे वापिस आने की प्रार्थना करती है।

१ आषाढ चडिया भणइ बूचा नेमि अजउ न आईया।

२. ए रुति सावणे सावणि नेमि जिण गवणो न कीजै वे।
सुणि सारगा भाष दुसह तनु खिणु खिणु छीजै वे।
छीजति बाढी विरह व्यापित घुरइ घण मइ मतिया।
सालूर सरि रड रडहि निसि भरि रयणि विजु खिवतिया।
सुरगोपि यह सुह वसुह माडित मोर कुह कुहि वणि वणि।
विनवति राजुल सुणहु नेमिजिन गवउ नां करु सावणे ॥१॥

इसी प्रकार जब वैशाख का महिना आता है तो नयनो को केवल नेमि की बाट जोहने का काम ही रहता है जब नेमि नही आते हैं तो वे वर्षा ऋतु के समान वे बरसने लगते है ।[1]

उनके वियोग मे उसका वज्र का हृदय नही फटता है इसलिए ए सखि उनके बिना वैसाख महिना अत्यधिक दारुण दुख को देने वाला बन जाता है ।[2]

नेमि राजुल को लेकर कितने ही जैन कवियो ने बाराह मासा निबद्ध किये है । विरह का एव षट् ऋतुओ का वर्णन करने के लिए नेमि राजुल का जीवन जैन साहित्य मे सबसे अधिक आकर्षण की सामग्री है ।

कविवर बूचराज के प्रस्तुत बारहमासा का हिन्दी बारहमासा साहित्य मे उल्लेखनीय स्थान है । कवि ने इसमे राजुल के मनोगत भावो को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वे पाठको को प्रभावित किये बिना नही रहते । कवि के प्रत्येक शब्द मे विरह व्यथा छिपी हुई है और वह परिणय की आशा लगाये विरही नव यौवना के विरह का सजीव चित्र उपस्थित करता है । राजुल को प्रत्येक महिने मे विरह वेदना सताती है तथा उस वेदना को वह नेमि के बिना सहन करने मे अपने आपको असमर्थ पाती है । कवि को राजुल की विरह वेदना को सशक्त शब्दो मे प्रस्तुत करने मे पूर्ण सफलता मिली है ।

४. चेतन पुद्गल धमाल

कविवर बूचराज की यह महत्त्वपूर्ण कृति है । पूरी कृति मे १३६ पद्य हैं ।

१. इनु कातेगे कातिगि आगमु की ताडा पालैवा ।
चडि मंडपे मंडपि राजुल मग्गो नेहो लैवे ।
मग्गो निहालै देवि राजुल नयण दह दिसि धावए ।
सर रसहि सारस रयणिभिनी दुसहु विरहु जगवए ।
कि वरहउ तुव विणु पेम लुद्धिय तरुणि जोवणि बालाए ।
बाहुडहु नेमि जिण चडिउ कातिगु कियउ आगमु पालए ।।४।।

२ ए यहु आइयडा अब दुसहु सखी बइसाखो वे ।
जइवइसेवा इसि जाइ सनेहडा आखोवं ।
आखो सनेहा जाइ बाइस अन्नु नीरु न भावए ।
दुइ नयण पावस करहि निसि दिनु चितु भरि भरि आवए ।
फुट्टउ न ज वल्लभ वियोगिहि हिया दुखि वज्जिहि घड्या ।
बइसागु तुव विणु सुणहु सखिए दुसहु अति दारुगु चड्या ।।१०।।

उनमे १३१ पद्य राग दीपगु तथा शेष ५ अष्टपद छप्पय छन्द मे निबद्ध है। कवि ने धमाल का रचना काल एव रचना स्थान दोनो ही नही दिये है। लेकिन भाषा की दृष्टि से यह रचना उसकी अन्तिम रचनाओ मे से दिखती है। कवि ने इस कृति मे अपने आप का वल्हपति[1], वल्ह[2], बूचा[3] इन तीन नामो से उल्लेख किया है।

चेतन पुद्गल धमाल एक सवादात्मक कृति है। जिसमे सवाद के माध्यम से चेतन एव पुद्गल दोनो अपना-अपना पक्ष रखते हैं, एक दूसरे पर दोषारोपण करते करते है। ससार मे फिराने एव निर्वाण मार्ग मे रुकावट पैदा करने मे कौन कितना सहायक है, इसका बहुत ही सुन्दर वर्णन हुआ है। इस प्रकार के वर्णन प्रथम बार देखने मे आये हैं और वे वर्णन भी एकदम विस्तृत। चेतन पुद्गल के सवाद इतने रोचक एव आकर्षक है कि कोई भी पाठक उनसे प्रभावित हुए बिना नही रहेगा। प० परमानन्दजी शास्त्री ने अपने एक लेख मे इस कृति का नाम अध्यात्म धमाल भी दिया है।[4] लेकिन स्वय कवि ने इसे सवादात्मक कृति के रूप मे प्रस्तुत करने को कहा है।[5]

कवि ने प्रारम्भ मे सम्यग्ज्ञान रूपी दीपक की प्रशसा की है। जिसके द्वारा मिथ्यात्व का पलायन हो जाता है। इसके पश्चात् चौवीस तीर्थंकरो का २५ पद्यो मे स्तवन किया गया है। फिर चेतन को इस प्रकार सम्बोधित करके रचना प्रारम्भ की गयी है।

यह जड खिणिहि विघसिणी, ता सिउ सगु निवारू।
चेतन सेती पिरती करु, जिउ पावहि भव पारो।
चेतन गुरा ॥३३॥

चेतन और जड के विवाद को प्रारम्भ करते हुए कहा गया है कि जिसने जड को अपना मान लिया तथा उससे प्रीति कर ली वह ससार सागर मे निश्चय ही डूबता है। क्योकि विषधर के मुख मे दूध पडने पर उसका विष रूप ही परिणमन होता है। उससे अच्छे फल की आशा करना व्यर्थ है। लेकिन इस मनतव्य का जड ने

१ कवि वल्हपति सुस्वामि के गावउ चलल सिरु धारि ॥१॥
२. जिण सासण महि दीवडा वल्ह पया नवकारु ॥३॥
३, इव भणइ बूचा सदा निम्मलु मुकति सरूपी जीया ॥१३६॥
४ अनेकान्त वर्ष १६–१७ पृष्ठ २२६।
५. पच प्रमिष्टि बल्ह कवि ए पणमी धरिभाउ।
चेतन पुद्गल दहूक सादु विवादु सुणावो ॥ चेयण सुणु ॥३२॥

वहुत सुन्दर खण्डन किया हैं जो निम्न प्रकार है—

चेतनु चेति न चालई, कहउत मानै रोसु।
आये बोलत सो फिरै, जडहि लगावहि दोसु ।। चेयन सुणु ।।३८।।

चेतन पट्रस एव अन्य विविध पकवानो से शरीर को प्रतिदिन सींचता रहता है तो फिर इन्द्रियो के वशीभूत चेतन से धर्म पर चलने की आशा कैसे की जा सकती है। खेत मे जब समय पर बीज ही नही डाला जावेगा तो उसके उगने की आशा भी कैसे की जा सकती है। वास्तव मे देखा जावे तो यह चेतन जब २४ प्रकार के परिग्रह तज कर १५ प्रकार के योग धारण करता है लेकिन वह सब तो जड के सहारे से ही है। फिर उसकी निन्दा क्यो की जावे। पुद्गल का विश्वास कर जो प्राणी मन मे नि शक हो जाता है वह तो निश्चित ही कलंकित होने के समान है। यह मूर्ख मानव आपने आपको जाग्रत नही करता है और विषयो मे लुभाए रखता है। वह तो अंधे पुरुष द्वारा वटने वाली उस जेवडी के समान है जिसको पीछे से बछडे खाते रहते है।

मूरख मूलनु चेतई, लाहै रह्या लुभाइ ।
अंधा वाटै जेवड़ी, पाछइ वाछा खाइ ।।४५।।

जड़ फिर चेतन को कहता है कि जिसने पाँचो इन्द्रियो को वश मे करके आत्मा के दर्शन किये हैं उसी ने निर्वाण पद प्राप्त किया है तथा उसका फिर चतुर्गति मे जन्म नही होता,

पंचै इदी दडि करि, आपी आप्पणु जोइ।
जिउ पावहि निरवाण पदु, चौगइ जनमु न होइ
चेयन सुणु ।।४८।।

जैसे काष्ठ मे अग्नि, तिलो मे तेल रहता है उसी प्रकार अनादि काल से चेतन और पुद्गल की एकात्मकता रहती है। पुद्गल के उक्त कथन का चेतन निम्न प्रकार उत्तर देता है,

लेहि वैसदरु कठु तजि लेहि तेलु खलि राडि।
चेतहि चेतनु मेलियै, पुद्गल परिहरि वालि ।।
चेतन गुण ।।५५।।

मन का हठ सभी कोई पूरा करते हैं लेकिन चित्त को कोई भी वश मे नही करता है क्योकि सिखर के चढने के पश्चात् घबराहट होने पर उसको दूर कैसे की जा सकती है—

मन का हठु सबु कोइ करइ, चित्तु वसि करइ न कोइ।
चडि सिखरहु जब खडहडै, तवरु विगुचणि होइ ।। चेयन सुणु ।।

इसका उत्तर चेतन ने निम्न प्रकार दिया,

सिखरहु भूलिन खडहडे जिरण सासण आधारु ।
सूलि ऊपरि सीझियाँ चोरि जप्या नवकारु ॥ चेयन गुरण ॥५६॥

जड और पुद्गल ने वहुत सुन्दर एव तर्कपूर्ण विवाद होता है लेकिन दोनो ही एक दूसरे के गुणो की महत्ता से अपरचित लगते हैं। इसलिए एक दूसरे के अवगुणो को वखारने मे लगे रहते हैं।

पुद्गल कहता है—कि पहले अपने आपको देखकर सयम लेना चाहिए। जितना ओढणा हो उतना ही पाव पसारना चाहिए। इसका पुद्गल उत्तर देता हुआ कहता है कि भला-भला सभी कहते हैं लेकिन उसके मर्म को कोई नही जानता। शरीर खोने पर किससे भला हो सकता है—

भला करितहि मीत सुरिण, जे हुइ वुरहा जाणि ।
तौ भी भला न छोडिये उत्तिम यहु परवाणु ॥ चेयन सुणु ॥७०॥
भला भला सहु को कहै, मरमु न जाणै कोइ ।
काया खोई मीत रे भला न किस ही होए ॥ चेयन गुण ॥७१॥

यह शरीर हाड मास का पिजरा है। जिस पर चमडी छायी हुई है। यह अन्दर नरको से भरा हुआ है लेकिन यह मूर्ख मानव उस पर लुभाता रहता है। इसका पुद्गल बहुत सुन्दर उत्तर देता है कि जैसे वृक्ष स्वय धूप सहन कर औरो को छाया देता है उसी तरह इस शरीर के संग से यह जीव मोक्ष प्राप्त करता है।

हाडह केरा पजरी वरिया चम्मिहि छाइ ।
वहु नरकिहि सो पूरिया, मुरिखु रहिउ लुभाए ॥ चेयन सुणु ॥७२॥
जिम तरु आपणु धूप सहि, अवरह छाह कराइ ।
तिउ इसु काया सगते, जीयडा मोखिहि जाए ॥ चेयन गुरण ॥

जिस तरह चन्द्रमा रात्रि का मण्डल और सूर्य दिन का उसी तरह इस चेतन का मण्डल शरीर है।

जिउ ससि मल्गु रयणिका, दिन का मडणु भाणु ।
तिम चेतन का मडसा यहु पुद्गलु तू जाणु ॥ चेयन सुणु ॥७८॥

काया की निन्दा करना तथा प्रत्येक क्षेत्र मे उसे दोषी ठहराना पुद्गल को अच्छा नही लगा इसलिए वह कहता है कि चेतन शरीर की तो निन्दा करता है किन्तु अपनी ओर तनिक भी झाक कर नही देखता। किसी ने ठीक ही कहा है कि जैसे-जैसे कावली भीगती है वैसे-वैसे ही वह भारी होती जाती है।

काया की निन्दा करहि, आपुन देखहि जोइ ।
जिउ जिउ भीजइ कावली, तिउ तिउ भारी होइ ।। चेयन सुणु ।।६०।।

चेतन कहता है कि उस जड को कौन पानी देगा जिसके न तो फूल है न फल और न पत्ते है । उस स्वर्ण का क्या करना है जिसके पहिनने से कान ही कट जावें ।

सा जड मूढ न सीचियै, जिसु फलु फूलु न पातु ।
सो सोना क्या फूकिये, जोरु कटावै कान ।। चेयन गुण ।।१०६।।

पुद्गल इसका वहुत सुन्दर उत्तर देता है कि यौवन, लक्ष्मी, शरीर सुख एव कुलवंती स्त्री ये चारो पुण्य जिसे प्राप्त हैं वे तो देवताओ के इन्द्र ही हैं ।

सवादात्मक रूप मे कवि कहता है कि जिन्होने उद्यम, साहस, धीरता, वल, बुद्धि और पराक्रम इन छ वातो की ओर मन को सुदृढ कर लिया उन्होने निर्वाण प्राप्त किया है ।

उद्दिमु साहसु धीरु वलु, बुद्धि पराकमु जाणि ।
ए छह जिनि मनि दिढु किया, ते पहुचा निरवाणि ।।
चेयन सुणु ।।१३०।।

प्रस्तुत कृति मे १३२ से १३६ तक के ५ पद्य अष्ट पद्य छप्पय छन्द के हैं । इनमे दो पद्यो मे जड का प्रस्ताव है तथा तीन मे चेतन का उत्तर है । अन्तिम पद्य चेतन द्वारा कहलवाया गया है जिसमे जड से प्रतीति नही कहने का उपदेश दिया गया है—

जिय मुकति सरूपी तू निकलमलु राया ।
इसु जड कै संग ते भमिया करमि भमाया ।
चडि कवल जिवा गुणि तजि कद्दम ससारो ।
भजि जिण गुण हीयडै तेरा यहु विवहारो ।
विवहारु यहु तुझु जाणि जीयडे करहु इदिय सवरो ।
निरजरहु वंधण करम्म केरे जानत निढुकाजरो ।
जे वन्न श्री जिण वीरि भासे ताह नित धारह हीया ।
इव भणइ वूचा सदा निम्मलु मुकति सरूवी जीया ।।१३६ ।।

इस प्रकार चेतन पुद्गल धमाल हिन्दी जगत का प्रथम संवादात्मक रोचक काव्य है जिसमे चेतन एव जड मे परस्पर गहरा किन्तु मैत्री पूर्ण वाद विवाद होता है । इसमे चेतन वादी है और पुद्गल प्रतिवादी है । 'चेयन सुणु' यह पुद्गल कहता है तथा 'चेयन गुण' यह चेतन द्वारा कहा जाता है । पूरा काव्य सुभापितो

एव सूक्तियो से भरा पडा है। कवि ने जिन सीधे सादे शब्दो मे प्रस्तुत किया है वह उसके गहन तत्व ज्ञान एव व्यावहारिक ज्ञान का परिचायक है। कवि ने लोक प्रचलित मुहावरो का भी प्रयोग करके सवाद को सजीव बनाने का प्रयास किया है।

भाषा, शैली एव विषय वर्णन आदि सभी दृष्टियो से यह एक उत्तम काव्य है।

५ नेमिनाथ वसन्तु

यह एक लघु रचना है जिसमे वसन्त ऋतु के आगमन का आध्यात्मिक शैली मे रोचक वर्णन किया गया है। एक ओर नेमिनाथ तपस्या मे लीन है दूसरी ओर मादकता उत्पन्न करने वाली वसन्त ऋतु भी आ जाती है। राजुल ने पहिले ही सयम धारण कर लिया है इसलिये उसका मन रूपी मधुवन सयम रूपी पुष्प से भरा हुआ है। वसन्त ऋतु के कारण वोलसिरी महक रही है। समूचे सौराष्ट्र मे कोयल कुहक रही है। भ्रमरो की गु जार हो रही है। गिरनार पर्वत पर गन्धर्व जाति के देव गीत गा रहे हैं। काम विजय के नगारे क्या बज रहे हैं मानो नेमिनाथ के यश के ढोल बज रहे हैं। और उनकी कीर्ति स्वय ही नाच रही हो। सयम श्री वहाँ निर्भय होकर घूमती है क्योकि सयम शिरोमणि नेमिनाथ के शील की १८ हजार सहेलियाँ रक्षा मे तत्पर है। उनके शरीर मे ज्ञान रूपी पुष्प महक रहे है तथा वे चारित्र चन्दन से मडित है। मोक्ष लक्ष्मी उनसे फाग खेलती है। नेमिनाथ तो नवरत्नो से युक्त लगते हैं लेकिन वसन्त स्वय नवरसो से रहित मालूम पडता है। नेमि ने छलिया वनकर मानो तीनो लोको को ही अपने अपने वश मे कर लिया है।

सयम श्री राजुल ऐसी सुहावनी ऋतु मे अपने नेमि को देखती है जो जब ससार जगता है तब वे सोते है और जव वे सोते हैं तो ससार जगता है। जिसने मोह के किवाडो को अपने अनिमिष नेत्रो से जला डाला है। स्वय राजुल अपनी सखियो के साथ विभिन्न पुष्पो से नेमिनाथ की वन्दना के लिए सबको कहती रहती है।

रचना काल

कवि ने इस कृति मे किसी भी रचना काल का उल्लेख नही किया है। किन्तु मूल सघ के मडण भट्टारक पद्मनन्दि के प्रसाद से इस कृति का निर्माण हुआ, ऐसा कवि ने उल्लेख किया है।

मूलसघ मुखमडण पद्मनन्दि सुपसाइ।
वील्हि वसतु जि गावइ से सुखि रसीय कराइ॥

बारहमासा, नेमिनाथ बसन्त जैसी रचनाओ द्वारा विरह रस का वर्णन किया और अपने पाठको को वैराग्य रस की ओर प्रेरित किया। किन्तु इसके अतिरिक्त छोटे-गीतो द्वारा मानव के हृदय मे जिनेन्द्र भक्ति के भाव भरे, जगत की निःसारता बतलायी और अपने कर्तव्यो की ओर सकेत किया। लेकिन ये अधिकाश गीत पजाबी शैली मे प्रभावित हैं। जिससे स्पष्ट है कि कवि ने ये सब गीत हिसार की ओर विहार करने के पश्चात् लिखे थे। ऐसा अनुमान किया जा सकता है। सभी गीत यद्यपि भिन्न-भिन्न रागो मे लिखे हुए है लेकिन मूलत सबका उपदेशात्मक विषय है। मानव को जगत की बुराइयो से दूर हटा कर सन्मार्ग की ओर ले जाना तथा ससार का स्वरूप उपस्थित करना ही इन गीतो का मुख्य उद्देश्य है। कभी-कभी स्वय को भी अपने मन की चपलता के बारे मे ज्ञान प्राप्त हो जाता है और इसके लिए वह चिन्ता करने लगता है। सयम रूपी रथ मे नही चढने की उसको सबसे अधिक निराशा होती है। लेकिन उसका क्या किया जावे। अब तो सयम पालन एव सम्यक्त्व साधना उसके लिए एकमात्र मार्ग बचता है और उसी पर जाने से वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

अब तक कवि के ११ गीत एव पद मिल चुके हैं। इन गीतो के अतिरिक्त और भी गीत मिल सकते है इससे इन्कार नही किया जा सकता। सभी गीत गुटको में उपलब्ध हुए हैं। इसलिए गुटको के पाठो की विशेष छानबीन की विशेष आवश्यकता है। यहाँ सभी गीतो का साराश दिया जा रहा है।

९ गीत (ए सखी मेरा मनु चपलु दसै दिसे ध्यावै वेहा)

प्रस्तुत गीत मे उस महिला की आत्म कथा है जिसे अपने चचल मन से बडी भारी शिकायत है। वह चचल मन लोभ रस मे डूबा हुआ है और उसे शुभ ध्यान का तनिक भी स्थान नहीं है। यह पाचो इन्द्रियो के सग फसा रहता है। इस जीव ने नरकों के भारी दुःख सहे हैं। मिथ्यात्व के चक्कर मे फस कर उसने अपना सम्पूर्ण जन्म ही गंवा दिया है। उसका मन भवसागर रूपी भूल भुलैया मे पडकर सब कुछ भुला बैठा है, यही नही उसे दुःख होने लगता है कि वह अपनी आत्मा को छोड़कर दूसरी आत्मा के वश मे हो गया। इसलिए अब उसने वीतराग प्रभु की शरण ली है जो जन्म मरण के चक्कर से मुक्त है तथा रत्नत्रय से युक्त है।

गीत में ४ पद हैं और प्रत्येक पद ६–६ पक्तियो का है गीत की भाषा राजस्थानी है। जिस पर पजाबी वाणी का प्रभाव है। गीत राग वडहस मे निबद्ध है। इसकी प्रति दि० जैन मन्दिर नेमिनाथ (नागदी) बूंदी के शास्त्र भण्डार के एक गुटके में उपलब्ध है।

१० **गीत** (सुणिय पधानु मेरे जीय वे की सुभ ध्यानि आवहि)

यह गीत राग धनाक्षरी मे लिखा हुआ है। गीत मे ४ पद हैं तथा प्रत्येक पद मे ६ पक्तियाँ हैं।

प्रस्तुत गीत मे इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया गया है कि यह मनुष्य सच्चे धर्म का पालन नही करता है इसलिए उसे व्यर्थ मे ही गतियो मे फिरना पडता है। मोहिनी कर्म के उदय से वह सत्तर कोडाकोडी सागर तक भ्रमता रहता है फिर भी वन्धन से नही छूटता। सपत्ति, स्वजन, सुत एव मनुष्य देह सब कर्म सयोग से मिल जाते है। मनुष्य जीवन रूपी रत्न मिलने पर भी वह उसे यो ही खो देता है तथा मधु बिन्दु प्राप्ति की आशा मे ही पडा रहता है। निर्ग्रन्थ अर्हन्त देव ने जो कहा है वही सच है। उसी से जन्म मरण के वन्धन से छूट सकता है।

११. **गीत** (पट मेरी का चोलणा लालो, लौग मोती का हारु वे लालो)

राग धनाश्री मे लिखा हुआ यह दूसरा गीत है जिसमे ४ पद हैं तथा पहिले वाले गीत के समान ही प्रत्येक पद मे ६ पक्तियाँ हैं।

प्रस्तुत गीत मे हस्तिनापुर क्षेत्र के शान्तिनाथ स्वामी के पूजा के महात्म्य का वर्णन किया गया है। अभिषेक व पूजा की पूरी विधि दी हुई है। शान्तिनाथ की पूजा पीत वस्त्र पहनकर तथा अपने आप का शृगार करके करना चाहिए। कवि ने उन सभी पुष्पो के नाम गिनाये हैं जिन्हे भगवान के चरणो मे समर्पित करना चाहिए। ऐसे पुष्पो मे रायचपा, केवडा, मरुवा, जुही, कुंद, मचकुद आदि के नाम गिनाये हैं। कवि ने लिखा हैं कि जब मालिन इन पुष्पो की माला गूथ कर लाती है तो मन से वडी प्रसन्नता होती है। उस माला को भगवान के चरणो मे समर्पित कर फिर पाच कलशो से भगवान शान्तिनाथ का अभिषेक किया जाना चाहिए। अन्त मे कवि ने भगवान शान्तिनाथ की स्तुति भी की है—

मुकति दाता नयणि दीठा, रोगु सोगु निकदणो।
अवतारु अचला देवि कुक्षिहि, राइ विससेण नदणो।
जगदीस तू सुणु भणइ बूचा जनम दुखु दालिद हरो।
सिरि सति जिणवर देउ तूठा थानु गढि हथिनापुरी।

१२, **गीत**—रग हो रग हो रगु करि जिणवरु ध्याइयै।

प्रस्तुत गीत राग गौडी मे निवद्ध है जिसके ४ अन्तरे हैं। कवि ने इस गीत मे मानव से जिनदेव के रग मे रगे जाने का उपदेश दिया है। क्योकि उन्होने आठ कर्मो पर तथा पचेन्द्रियो के विषयो पर विजय प्राप्त कर ली है इसलिए झूठ एव लालच

६. टडाणा गीत

कविवर बूचराज ने एक ओर रूपक काव्य लिखे है, सवादात्मक काव्य लिखे हैं, तो दूसरी ओर छोटे-छोटे गीत भी निबद्ध किये है। उन्होने सदैव जनरुचि का ध्यान रखा और अपने पाठको को अधिक से अधिक आध्यात्मिक खुराक देने का प्रयास किया है। टडाणा गीत उसी धारा का एक गीत है जिसमे कवि ने ससार के स्वरूप का चित्रण किया है। गीत का टडाणा शब्द टाडे का वाचक है। बनजारे बैलो के समूह पर वस्तुओ को लाद कर ले जाते हैं उसे टाडा कहा जाता है। साथ ही मे ससार के दु खो से कैसे मुक्ति मिले यह भी बताने का प्रयास किया है।

कवि ने गीत प्रारम्भ करते हुए लिखा है कि यह ससार ही टडाणा है जो दु खो का भण्डार है लेकिन पता नही यह जीव उसके किस गुण पर लुब्ध हो रहा है। यह जगत् उसे अनादि काल से ठग रहा है। फिर भी वह उस पर विश्वास करता है। इसलिए वह कुमार्ग मे पडकर मिथ्यात्व का सेवन करता रहता है और जिनराज की आज्ञा के अनुसार नही चलता है। दूसरे जीवो को सता कर पाप कमाता है और उसका फल तो नरक गति का बन्ध ही तो है।

गीत मे कवि ने इस मानव को यह भी चेतावनी दी है कि उसने न व्रतो का पालन किया है और न कोई सयम धारण किया है। यही नही वह न काम पर भी विजय प्राप्त करने मे सफल हो सका है। मानव का कुटुम्ब तो उस वृक्ष के समान है जिस पर रात्रि को पक्षी आकर बैठ जाते हैं और प्रात काल होते ही उड कर चले जाते हैं। यह मानव नर के समान अपने कितने ही नाम रख लेता है।

कवि आगे कहता है कि यह मानव क्रोध, मान, माया और लोभ के वशीभूत होकर जगत मे यो ही भ्रमण करता रहता है। जब वृद्धावस्था आती है तो सब साथी यहाँ तक कि जवानी भी साथ छोड कर चली जाती है। कवि ने अन्त मे यही कामना की है कि तू जब अन्तरदृष्टि होकर आत्मध्यान करेगा तब सहज सुख की प्राप्ति होगी।

सुद्ध सरूप सहज लिव नितिदिन भावहु अन्तर झाणावें।
जपति बूचा जिम तुम पावहु वछित सुख निरवाणावै।

इस गीत मे कवि ने अपने नामोल्लेख के अतिरिक्त रचना काल एव रचना स्थान नही दिया है।

७. भुवन कीर्ति गीत

बूचराज की भुवनकीर्ति गीत एक ऐतिहासिक कृति है। इसमे भट्टारक

भुवनकीर्ति की यशोगाथा गायी गयी है। भुवनकीर्ति सकलकीर्ति के शिष्य थे जिनका भट्टारक काल सवत् १४९९ से सवत् १५३० तक का माना जाता है। भुवनकीर्ति अपने समय के वडे भारी यशस्वी भट्टारक थे। भ० सकल कीर्ति के पश्चात् इन्होने देश मे भट्टारक परम्परा की गहरी व मजबूत नीव जमा दी थी। बूचराज जैसे आध्यात्मिक कवि ने भुवनकीर्ति की जिन शब्दो मे प्रशसा की है उससे मालूम होना है कि उनकी कीर्ति चारो ओर फैल चुकी थी। कवि ने भुवनकीर्ति के दर्शन मात्र से ही सासारिक दु खो से मुक्ति एव नव निधि को प्राप्त करने का निमित्त माना है। उनके चरणो मे चन्दन व केशर लगाने के लिए कहा है। भुवनकीर्ति की विशेषताओ को लिखते हुए कवि ने उन्हे तेरह प्रकार के चारित्र से विभूषित सूर्य के समान तपस्वी तथा सर्वज्ञ भगवान द्वारा प्रतिपादित धर्म का बखान करने वालो मे होना लिखा है। वे षट् द्रव्य पचास्ति काय तत्वो पर प्रकाश डालते है तथा २२ परिषहो को सहन करते हैं। भ० भुवनकीर्ति २८ मूलगुणो का पालन करते हैं। उन्होने जीवन मे दश धर्मों को धारण कर रखा है। जिनके लिए शत्रु मित्र समान है। तथा मिथ्यात्व का खण्डन करने जैन धर्म का प्रतिपादन करते हैं। भुवनकीर्ति के नगर प्रवेश पर अनेक उत्सव आयोजित होते थे, कामनियाँ गीत गाती तथा मन्दिर मे पूजा पाठ करती थी।

बूचराज ने भट्टारक के स्थान पर भुवन कीर्ति को आचार्य लिखा है इससे पता चलता है कि वे भट्टारक होते हुए भी नग्न रहते थे और आचार्यों के समान चारित्र पालन करते थे। लेकिन बूचराज की इनकी भेंट कब हुई हुई इसका उन्होने कोई उल्लेख नही किया। इसके अतिरिक्त इसी गीत मे उन्होने भट्टारक रत्नकीर्ति के नाम का उल्लेख किया है और अपने आपको रत्नकीर्ति के पट्ट से सम्बन्धित माना है। रत्नकीर्ति भ० प्रभाचन्द्र के शिष्य थे जिनका भट्टारक काल सवत् १५७१ से १५८१ तक का रहा है।

८. नेमि गीत

बूचराज ने अपने लघु नाम वल्हण से एक नेमीश्वर गीत की रचना की थी। यह भी अपभ्र श प्रभावित रचना है जिसमे १५ पद्य हैं। सवत् १६५० मे लिपिबद्ध पाण्डुलिपि दि० जैन अ० क्षेत्र श्री महावीर जी के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत थी।

लघु गीतों का निर्माण

कविवर बूचराज ने एक ओर मयणजुज्झ एव चेतन पुद्गल धमाल जैसी रचनाओ द्वारा अपने पाठको को आध्यात्मिक सन्देश दिया तो वहाँ नेमीश्वर

मे नही फसकर जिनेन्द्र देव का ध्यान करना चाहिए। इसमे कवि ने अपना नाम बूचराज के स्थान पर 'वल्ह' दिया है।

१३. **गीत**—(न जाणी तिसु वेल कौ वे चेतनु रह्या लभाई वे लाल)

इस गीत की राग दीपु है। यह प्राणी किस कारण ससार मे फंसा हुआ है। इसका स्वय चेतन को भी आश्चर्य होता है। इस जीव को कितनी ही वार शिक्षा दी जाय पर यह कभी मानता ही नही। अब तक वह न जाने कितनी वार शिक्षाएँ ले चुका है लेकिन उन्हे वह तत्काल भूल जाता है। यौवनावस्था मे स्त्री सुखो मे फस जाता है तथा साथ ही मरना साथ ही जीना इस चाह मे फसा रहता है। अन्त मे कवि कहता है कि इस मानव को इस माया जाल के सागर मे से कैसे निकाला जावे यह सोचना चाहिए।

१४. **गीत**—(वाले वलि वेहु मावे मनु माया घुलि रासावे।)
वाले वलि वेहुं मावे रहइ आठ मादि मात्तावे॥

प्रस्तुत गीत सूहड राग मे निवद्ध है। इसमे ४ अन्तरे हैं। यह भी उपदेशात्मक गीत है जिसमे ससार का स्वरूप बताया गया हैं। पाचो इन्द्रियो द्वारा ठगा जाने पर और चारो गतियो मे फिरने पर भी यह मानव जरा भी नहीं सम्भलता और अन्त मे यो ही चला जाता है।

१५ **गीत**—(ए मेरै अंगणे वाच वावा सोचवे को वल कलि यावा।)

जिनेन्द्र की अष्टविध पूजा से भव के दुख दूर हो जाते हैं। इसी भक्ति भावना के साथ इस गीत की रचना की गयी है। यह राग विहागडा मे निवद्ध है। जिसमे ४ अन्तरे हैं। प्रत्येक अन्तरा मे ६ पक्तियाँ है।

१६. **गीत**—(संजमि प्रोहणि ना चडे भए अनत संसारि।)

यह गीत आसावरी राग मे है। प्रथम दोहा है। इस गीत मे लिखा है कि सयम रूपी रथ नही चढने के कारण अनन्त ससार मे घूमना पड रहा है। यह प्राणी इस ससार मे घूमते-घूमते थक गया है। किन्तु न धर्म सेवन किया और न सम्यकत्व की आराधना की। नरकों की घोर यातना सही, वहा शीत एव उष्ण की वाधा सही, कुगुरु एव कुदेव की सेवा की लेकिन सम्यकत्व भाव पैदा नही हुआ। इसलिए कवि जिनेन्द्र देव मे प्रार्थना करता है कि उनके दर्शन से ही उसे सम्यक् मार्ग मिल जावे यही उसकी हार्दिक इच्छा है।

१७ **गीत**—(नित्त नित्त नवली देहडी नित नित अवइ कम्मु।)

प्रस्तुत गीत मे भी ४ अन्तरे हैं। गीत मे कवि ने कहा है कि जीव को न तो वार-वार मनुष्य जीवन मिलता है और न अपनी इच्छानुसार भोग मिलते है इसलिए जब तक यौवनावस्था है वृद्धावस्था नही आती है, देह को रोग नही सताते है तब तक उसे सम्भल जाना छाहिए।

राजद्वार पर लगी हुई झालरी रात्रि दिन यही शब्द सुनाती रहती है कि शुभ एव अशुभ जैसे भी दिन इस मानव के निकल जाते है वे फिर कभी नही आते। इसलिए अब किञ्चित भी विलम्ब नही करके जीवन को सयमित बना लेना चाहिए। जिस प्रकार सर्वज्ञ देव ने कहा है उसी प्रकार हमे जीवन मे उत्तम धर्म का पालन करना चाहिए।

प्रस्तुत गीत शास्त्र भण्डार मन्दिर बधीचन्द जी, जयपुर के गुटका सख्या ६७१ मे सग्रहीत है।

१८. पद—ए मनुषि लियडा कवल विगस्सेवा।
ए जिण देखीयडा पाप पणस्सेवा॥

प्रस्तुत पद मे भगवान महावीर के आगमन पर अपार हर्ष व्यक्त किया गया है। महावीर के पधारने से चारो ओर प्रसन्नता का वातावरण छा जाता है। उनके दर्शन मात्र से जीवन सफल हो जाता है तथा धर्म की ओर मन लगने लगता है। मालाकार भगवान के चरणो मे विभिन्न पुष्पो से गुथी हुई माला अर्पण करता है। उनके चरणो मे ध्यान ही मानव को जन्म मरण के बन्धनो से छुडाने वाला है।

प्रस्तुत पद बूंदी के नागदी मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत गुटके के ५७–५८ पृष्ठ पर लिपिबद्ध है।

१९. धम्मो दुग्गय हरणो करणो सह धम्मु मगल मूल।
जो भास्यो जिण वीरो, सो धम्मो नरह पालेहु॥१॥

भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित धर्म दुर्गति को हरण करने वाला तथा मगलीक फल का देने वाला है इसलिए मानव को उसी धर्म का पालन करना चाहिए ये ही भाव उक्त कुछ छन्दो मे निबद्ध है। सभी छन्द अशुद्ध लिखे हुए है तथा लिपिकार स्वय अनपढ सा मालूम देता है। फिर ये सभी छन्द तथा १८ वा सख्या वाला पद अभी तक अज्ञात था इसलिए इसका पाठ भी यहाँ दिया जा रहा है।

प्रस्तुत पद बूंदी के नागदी मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत गुटके मे लिपिबद्ध है।

विषय प्रतिपादन

बूचराज जैन सन्त थे इसलिए उनके जीवन के दो ही उद्देश्य थे। प्रथम अपना आत्म विकास द्वितीय अपने भक्तो को सही मार्ग का निर्देशन। वे स्वय जिन-धर्म के अनुयायी थे इसलिए उन्होने पहिले अपने जीवन को सुधारा फिर जनता को काव्यो के माध्यम से तथा उपदेशो से बुराइयो से बचने का उपदेश दिया। उनके समय मे देश की राजनीति अस्थिर थी। हिन्दुओ एव जैनो पर भीषण अत्याचार होते थे। यहा के निवासियो को ठेस पहुँचाना मुस्लिम शासको का प्रमुख काम था। तत्कालीन मुस्लिम शासक विषयान्ध थे। उन्ही के समान यहा के राजपूत शासक भी हो गये थे। महाराजा पृथ्वीराज की वासना पूर्ति के लिए इस देश को गुलाम बनना पडा। मुहम्मद खिलजी ने अपनी वासना पूर्ति के लिए लाखो निरपराधियो का सहार किया।

कविवर बूचराज ने ब्रह्मचारी का पद ग्रहण करके सबसे पहले काम वासना पर विजय प्राप्त की तथा साधु वेष धारण कर ब्रह्मचारी का जीवन बिताने लगे। काम से अपने आप का पिण्ड छुडाया। इसलिए सर्वप्रथम कवि ने 'मयणजुज्झ' नामक एक रूपक काव्य लिख कर तत्कालीन वासनामय वातावरण के विरुद्ध अपनी लेखनी उठायी। यद्यपि उनके काव्य मे कही किसी शासक अथवा उनकी वासना विषयक कमजोरियो का नामोल्लेख नही है। लेकिन कृति तत्कालीन सामाजिक दुर्बलताओ के लिए एक खुली पुस्तक है। १६ वी शताब्दी अथवा इसके पूर्व नारियो को लेकर जो युद्ध होते थे वे सब देश एव समाज के लिए कलक थे। इनसे नारी समाज का मनोबल तो गिर ही चुका था उनमे अशिक्षा एव पर्दा प्रथा ने भी घर कर लिया था। काम वासना से अन्धा पुरुष समाज अपना विवेक खो बैठा था। और पशु के समान आचरण करने लगा था। कवि ने 'मदन युद्ध' रूपक काव्य मे काम वासना पूर्ति के लिए जिन-जिन बुराइयो को अपनाना पडता है उनका बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है।

कवि ने अपनी दूसरी कृति सन्तोषजयतिलकु मे 'लोभ' रूपी बुराई पर करारी चोट की है। इस पूरे रूपक काव्य मे लोभ के साथ-साथ अन्य कौन-कौन सी बुराई घर कर जाती है उनका विस्तृत वर्णन किया है। लोभ पर विजय पाना सरल काम नही है। बडे-बडे राजा महाराजा साधु महात्मा भी लोभ के चगुल मे फसे रहते हैं इसलिए कवि ने कहा है—

दुसउ लोभु काया गढ अतरि, रयणि दिवस सतवड निरतरि।
करइ ढीठु अप्पणु बलु मडइ, लज्या न्यातु मीलु कुल खडइ॥

लोभ पर विजय प्राप्त किये विना चतुर्गति मे लगातार भ्रमण करना पडता है । लोभ अकेला नही है उसका पूरा परिवार है । राग एव द्वेष इसके दो पुत्र है । झूठ उसका प्रधान अमात्य है क्रोध और लोभ उसके सेनापति हैं । माया, कुव्यसन एव कुशील उसके अग रक्षक हैं । कपट उसके ध्वज का निशान है तथा इन्द्रियो के विषय उसके घोडे हैं । दूसरी ओर सन्तोष राजा के समाधि नारी है तथा सवर पुत्र है । अठारह हजार शील के भेद उसके सिपाही है । सुधर्म, सम्यकत्व, ज्ञान एव चारित्र, वैराग्य, तप एवं करुणा, क्षमा, सयम, महाव्रत ये सभी सन्तोष के अग रक्षक हैं । सन्तोष राजा है । वह रत्नमय हाथी पर सवार है । हाथ में विवेक की तलवार है तथा सम्यक्त्व का छत्र सिर पर रखा हुआ है । दोनो ओर पद्म एव शुक्ल लेश्या ही मानो चवर ढोल रही है ।

कवि ने इस प्रकार दोनो ओर की सेना मे घमासान युद्ध कराया है । एक ओर नीति है नैतिकता है तथा सम्यक् आचरण है दूसरी ओर लोभ है, झूठ है, माया एव कपट सभी अनैतिक । सन्तोष और लोभ के मध्य कवि ने अच्छा युद्ध करा दिया है । रण भूमि मे उतरते ही दोनो नायक प्रतिनायक मे वाद-विवाद तथा एक दूसरे को चैलेंज देते है जिससे पता चलता है कि स्वय कवि को युद्ध भूमि का अच्छा ज्ञान था चाहे स्वय ने कभी युद्ध नही लडा हो । लेकिन जब वाद-विवाद मे लोभ सन्तोष पर विजय प्राप्त नही पा सका तो उसने तत्काल ही अपने अमात्य एव सेनापति को युद्ध प्रारम्भ करने के आदेश दिये । इसके बाद दोनो ओर से घमासान युद्ध होता है । जो अत्यधिक रोमाचक एवं वीर रसात्मक है । युद्ध भूमि मे एक दूसरे पर घात प्रतिघात तथा जय पराजय का जो वर्णन किया गया है उसमे कवि की काव्य प्रतिभा का पता चलता है । लोभ ने जब झूठ का शस्त्र फेंका तो सन्तोष ने उस पर सत्य के शस्त्र से वार किया । और उसे परास्त करने मे सफलता प्राप्त की । लोभ ने तत्काल मान को रण मे लडने के लिए भेज दिया । सन्तोष ने उसका जवाब मार्दव से दिया । साथ ही महाव्रतो को भी रणभूमि मे भेज दिया । दोनो मे भयानक युद्ध होता है ।

इस प्रकार कवि सत्य-असत्य के मध्य, मान और मार्दव तथा सम्यक् आचरण और मिथ्या-आचरण के मध्य युद्ध करा कर जगत को यह दिखाने मे सफल हो सका है कि चाहे प्रारम्भ मे असत्य एव मिथ्याचरण की कितनी ही विजय दिखलाई देती हो लेकिन अन्त मे विजय होती है सन्तोष, सम्यक् आचरण एव मार्दव की । और वही स्थायी विजय होती हैं ।

कवि की इस कृति मे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मनुष्यत्व प्राप्त

करने के लिए विवेक से काम लिया जाना चाहिए। एक ओर मोह है जिसने अपने माया जाल से सारे जगत को फसा रखा है और जो कोई इससे टक्कर लेना चाहता है उसे किसी न किसी की सहायता से वह गिरा देता है। वह नही चाहता कि मानव गुणों से पूर्ण रहे। सम्यक्त्वी हो और व्रतो के धारक हो। विवेक का वह महान शत्रु है।

सत् असत् की यह लडाई यद्यपि आज की नही किन्तु युगो से चली आ रही है। कवि ने इस लोभ रूपी बुराई से बचने के लिए जो उपाय बतलाये हैं वे ठोस प्रमाण पर आधारित हैं।

कवि की 'चेतन पुद्गल धमाल' तीसरी बडी रचना है। चेतन (जीव) और पुद्गल (जड) का सम्बन्ध अनादि काल से चला आ रहा हैं। जब तक यह चेतन बन्धन मुक्त नहीं हो जाता, अष्ट कर्मों से नही छूट जाता तथा मुक्ति पुरी का स्वामी नही बन जाता तब तक दोनो इसी प्रकार एक दूसरे से बधे रहेगे। कवि ने इसमे स्वतन्त्रता पूर्वक अपने विचारो को प्रस्तुत किया है। दोनो मे (चेतन, पुद्गल) वाद-विवाद होता है एक दूसरे की ओर से वादी प्रतिवादी बन कर कमियो एव दोषो को प्रस्तुत किया जाता है। सासारिक बन्धन के लिए जब चेतन पुद्गल को उत्तरदायी ठहराता है। तो जड बन्धनो का उत्तरदायित्व चेतन पर डालकर दूर हो जाता हैं। पूरा वर्णन सजीव है। सूझबूझ से युक्त है तथा आध्यात्मिकता से ओतप्रोत है। कवि ने पूरे प्रसग को सरल भाषा मे प्रस्तुत किया है जिससे प्रत्येक पाठक उसके भावो को समझ सके। आत्मा को सचेत रहने तथा पुद्गल द्रव्यो के सेवन से दूर रहने पर कवि ने सुन्दर प्रकाश डाला है।

कबीर ने माया को जिस रूप मे प्रस्तुत किया है बूचराज ने वैसा ही वर्णन पुद्गल का किया है। कबीर ने "माया, मोहनी जैसी मीठी खाड" कह कर माया की भर्त्सना की है। तो बूचराज ने पुद्गल पर विश्वास करने से जो कलक लगता है उसकी पक्तियां निम्न प्रकार है—

इस जड तणा विसासु करि, जो मन भया निसकु।
काले पामि वडट्ठि यह, निश्चै चडइ कलंकु ।।४३।।

लेकिन जड तो शरीर भी है जिसमे यह चेतन निवास करता है। यदि शरीर नही हो तो चेतन कहां रहेगा। दोनो का आधार आधेय का सम्बन्ध हैं। उत्तर प्रत्युत्तर देने, एक दूसरे पर दोषारोपण करने तथा कहावतो के माध्यम से अपने मन्तव्य को प्रभावक रीति से प्रस्तुत करने मे कवि ने बड़ी शालीनता से काव्य रचना की है। वाद-विवाद मे कवि ने जड की भी रक्षा की है। चेतन पर दोषारोपण

करने मे उसने जरा भी सकोच नही किया है ।[1] कवि ने चार सुख गिनाये हैं और वे हैं यौवन, लक्ष्मी, स्वस्थ्य शरीर एव शीलवती नारी । जहाँ ये चारो है वही स्वर्ग है । लेकिन सासारिक सुख तो नश्वर है जो दिन दिन घटते रहते है अतः सयम ग्रहण ही मोक्ष का एक मात्र उपाय है ।

बूचराज ने केवल आध्यात्मिक तथा उपदेशात्मक काव्य ही नही लिखे किन्तु 'बारहमासा' 'नेमिनाथ वसन्त' जैसी रचनाएँ लिखकर अपनी शृगार प्रियता का भी परिचय दिया है । यद्यपि इन काव्यो के लिखने का उद्देश्य भी वैराग्यात्मक है किन्तु इनके माध्यम से षड् ऋतुओ की प्राकृतिक छटा का तथा राजुल की विरहात्मक दशा का वर्णन स्वत ही हो गया है और इससे काव्यो के विषयो मे कुछ परिवर्तन आ गया है । राजुल नेमिनाथ के आने की प्रतीक्षा करती है । सावन मास से लेकर आषाढ मास तक १२ महिने एक एक करके निकल जाते हैं । राजुल का विरह बढता रहता है तथा उसे किसी भी महिने मे नेमिनाथ के अभाव मे शान्ति नही मिलती है । वह अपनी विरह वेदना सहती-सहती थक जाती है । नेमिनाथ अपने वैराग्य मे डूबे रहते हैं उन्हे राजुल की चिन्ता कहाँ । यदि चिन्ता होती तो तोरण द्वार से ही क्यो लौटते । घरबार छोडकर दीक्षा नहीं लेते । लेकिन राजुल को ऐसी बात कैसे समझ मे आती । उसने यौवन मे प्रवेश लिया था विवाह के पूर्व कितने ही स्वर्णिम स्वप्न लिये थे । इसलिए उनको वह टूटता हुआ कैसे देख सकती थी । बारहमासा मे इसी सब का तो वर्णन किया हुआ है । सावन मे बिजली चमकती है, मोर मेघ से पानी बरसाने की रट लगाते हैं, भाद्रपद मे चारो ओर जल भर जाता है और आने जाने का मार्ग भी नष्ट हो जाता है, इसी तरह आसोज मे निर्मल जल मे कमल खिल उठते हैं ऐसे समय मे राजुल को अकेलापन खाने को दौडता है, उसकी आखो से आसुओ की धारा रुकती नही । इसी प्रकार राजुल नेमि के विरह मे बारह महिने के एक एक दिन गिनकर निकालती है उनकी प्रतीक्षा करती रहती है । लेकिन उसका रोना, प्रतीक्षा करना, आहे भरना, सभी व्यर्थ जाते हैं । क्योकि नेमिनाथ फिर भी नहीं लौटते और न कुछ सदेशा ही भेजते हैं । कवि ने इस प्रकार इन रचनाओं मे पात्रो के आत्म भावो को उडेल कर ही रख दिया है ।

कवि ने उक्त रचनाओ के अतिरिक्त पदो के रूप में छोटे-छोटे गीत भी लिखे है जो विभिन्न रागो मे निबद्ध है । सभी पदो मे अर्हत भगवान की भक्ति के लिए पाठको को प्रेरणा दी गई है साथ ही मे वस्तु तत्व का भी वर्णन किया गया है ।

---

१ काया की निंदा करई आपु न देखई जोइ ।
जिउं जिउ भीजइ कावली तिउ तिउ भारी होई ।।४१।।

इस जीव को फिर चतुर्गति मे भ्रमण नही करना पडे इसलिए अरिहन्त भगवान की भक्ति मे मन लगाना चाहिए। ऐसे उपदेशात्मक पदो मे मनुष्य का अथवा इस जीव का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। कवि को वडी चिन्ता है कि यह जीवात्मा पता नही किस वेला से जगत पर लुभा रहा है। जिसको भी आत्मा में लगन लग जाती है तो उसे कष्टो का भान नही होता।

सयम जीवन के लिए आवश्यक है। जो व्यक्ति सयम रूपी नाव पर नहीं चढता है वह अनन्त ससार मे डुलता रहता है। इसलिए एक पद मे "सजमि प्रोहणि ना चढै भए अनन्त संसारि" के रूप मे प्रस्तुत किया है। सभी गीतो मे इस जीव को विषय रूपी कलापो से सावधान किया है तथा उसे मोक्ष मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है। क्योकि स्वय कवि भी उसी मार्ग का पथिक वन गये थे तथा रात्रि दिन आत्म साधना मे ही लगे रहते थे।

इस प्रकार कवि ने अपनी कृतियो मे पूर्णत आध्यात्मिक विषय का प्रतिपादन किया है जिसको पढकर प्रत्येक पाठक बुराई से वचने का प्रयत्न कर सकता है तथा अपने आत्मा विकास की ओर आगे वढ सकता है।

भाषा

कविवर बूचराज की कृतियों की भाषा के सम्बन्ध मे इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि बूचराज जन कवि थे। इसलिए जनता की भाषा मे ही उन्हे काव्य लिखना अच्छा लगता था। उनके काव्यो की भाषा एक सी नही रही। प्रारम्भ मे उन्होंने मयणजुज्झ लिखा जो अपभ्रंश से प्रभावित कृति है। इसकी भाषा को हम डिंगल राजस्थानी के निकट पाते हैं। जिसमे प्रत्येक शब्द का वडे जोश के साथ प्रयोग किया गया है जिसका उद्देश्य अपने वर्णन मे जीवन डालना मात्र माना जा सकता है। मैं मयणजुज्झ की भाषा को राजस्थानी डिंगल का ही एक रूप कहना चाहूँगा। जिसमे जननी को जणणी (२), मध्य को मज्झि (७), पुत्र को पुत्त (१०) के रूप मे शब्दो का प्रयोग हुआ है। यही नही राजस्थानी शब्दो का जैसे पूछण लागा (२२), भाग्या (५८), वीडउ (३५) का भी प्रयोग कवि को रुचिकर लगा है। कवि उस समय सम्भवत ढूढाड प्रदेश के किसी नगर मे थे इसलिए उसमे उर्दू शब्द जो उस समय बोलचाल की भाषा के शब्द वन गये थे, आ गये हैं। ऐसे शब्दो मे चूतडि (३०), खवरि (३१), फौज (६५) जैसे शब्द उल्लेखनीय हैं।

इस समय अपभ्रंश का जन सामान्य पर सामान्य प्रभाव था। तथा अपभ्रंश की कृतियो का पठन पाठन खूब चलता था। इसलिए बूचराज ने भी अपनी

कृति मे अपभ्रंश शब्दो का खुलकर प्रयोग किया । ऐसे शब्दो के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

काव्य की भाषा	हिन्दी शब्द
गाण	ज्ञान
रिसहो	ऋषभ
तित्थयरु	तीर्थंकर
जम्मणु मरणु	जन्म मरण
धम्मु	धर्म
दुट्ठ	दुष्ट
तिजच	तिर्यन्च
गव्वु	गर्व
गोइमु	गौतम

कवि ने कुछ शब्दो के आगे 'ति' लगाकर उनका क्रिया पद शब्दो मे प्रयोग किया है । इस दृष्टि मे हाकन्ति, हसति, कुकति, कुरलति, गायति, वजति (३४) जैसे शब्दो का प्रयोग उल्लेखनीय है ।

यहाँ पर यह कहना पर्याप्त होगा कि कवि ने प्रारम्भ मे अपनी कृतियो की भापा को अपने पूर्ववर्ती अपभ्रंश कवियो की भाषा के अनुकूल बनाने का प्रयास किया लेकिन इसमे उसने धीरे-धीरे परिवर्तन भी किया जिसे 'सन्तोष जयतिलकु' एव 'चेतन पुद्गल धमाल' मे देखा जा सकता है । 'चेतन पुद्गल धमाल' कवि की सबसे अधिक परिष्कृत भाषा मे निबद्ध कृति है । जिसे कोई भी पाठक सरलता से समझ सकता है । सवादात्मक कृति के रूप मे कवि ने बहुत ही सहज एव बोलचाल के शब्दो मे गूढ से गूढ बातो को रखने का प्रयास किया है । इसलिए उसमे कोमल, सरल एव सुबोध रूप मे विषय का प्रतिपादन हो सका है ।

कवि की तीन प्रमुख कृतियो के अतिरिक्त 'नेमिनाथ बसन्तु', 'टडाणा गीत' जैसे अन्य गीतो की भाषा भी राजस्थानी का ही एक रूप है । इन गीतो की भाषा पूर्वापेक्षा अधिक सरल है तथा शब्दो का सहज रूप मे प्रयोग किया गया है । इसका एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

राज दुवारह झल्लरी, अहि निसि सवद सुणावे ।
सुभ असुभ दिनु जो धटइ, वहुडि न सो फिर आवइ ।
आवइ न सो फिरि धाइ जो दिनु, आउ इणि परि छीज्जइ ।
मोरुहु सम्भाइकु व्रत सजम, खिणु विलब न कीजिए ।

पच परमेष्ठी सदा ममणउ हिंसइ तिज्ज समिकितु धरइ ।
खिणाखिण चितावइ चेत चेतन राज द्वारह् झल्लरी ।

लेकिन जब कवि ने पजाब की ओर प्रस्थान किया तथा वहा कुछ समय रहने का अवसर मिला तो अपनी कृतियो को पजाबी शैली मे लिखने मे वे पीछे नही रहे । इनके कुछ गीतो मे पजाबी पन देखा जा सकता है । शब्दो के आगे वे, वा, वो लगा कर उन्होने अपने लघु गीतो मे इनका प्रयोग किया है । ए सखी मेरा मणु चपलु दसै दिसे ध्यावै वेहा' इस पक्ति मे कवि ने 'वेहा शब्द जोडकर पंजाबीपने का उदाहरण प्रस्तुत किया है ।

इस प्रकार बूचराज यद्यपि शुद्धत राजस्थानी कवि है । उसके काव्यो की भाषा राजस्थानी है लेकिन फिर भी किसी कृति पर अपभ्र श का प्रभाव है तो कोई पजाबी शैली से प्रभावित है । किसी-किसी पद एव गीत की भाषा भी दुरुह हो गयी है और उसमे सहजपना नही रहा है तथा वह सामान्य पाठक की समझ के बाहर हो गयी है ।

छन्द

कविवर बूचराज ने अपनी कृतियो मे अनेक छन्दो का प्रयोग करके अपने छन्द-शास्त्र के गम्भीर ज्ञान को प्रस्तुत किया है । मयणजुज्झ मे १५ प्रकार के छन्दो का तथा सन्तोष जयतिलकु मे ११ प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया है । केवल एकमात्र चेतन पुद्गल धमाल ही ऐसी कृति है जो केवल दीपक छन्द एव छप्पय छन्द मे ही निबद्ध की गयी है । इसके अतिरिक्त बारहमासा राग वडहसु मे तथा अन्य गीत राग धन्याश्री, गौडी, सूहड, विहागडा एव असावरी मे निवद्ध किये गये हैं । बूचराज को दोहा, मडिल्ल, रड एवं षट्पदु छन्द अत्यधिक प्रिय हैं । वह दोहा को कभी दोहडा नाम देता है । कवि ने रासा छन्द के नाम से छन्द लिखा है जिसमे चार चरण है । तथा प्रत्येक चरण मे १५ व १६ अक्षर है । मयणजुज्झ मे ऐसे ८६ से ६२ तक के ४ पद्य है ।[1] अपभ्र श के पद्धडिया छन्द का भी कवि ने प्रयोग किया है । लेकिन इसमे केवल ४ चरण है तथा प्रत्येक चरण मे ११ अक्षर हैं ।[2]

---

१ करिवि पलाणउ मोहु भडु चल्लियउ ।
समुह झखज बाल वधूलउ भुल्लियउ ।
फुट्टिउ जलहरु कु भ वाह तरुणि दिय ।
ले आइ तह अग्गि धूवंतिय रंडतिय ।।८६।।

२ तमकायउ तिनि भडु मोहु, जाइ, पुगु माया तह बुलाइ ।।
जब वैठे इनउ एक सत्थि, कलिकालु कहइ जव जोडि हत्थु ।।

रड छन्द मे भी कवि ने कितने ही पद्य लिखे है। यह वस्तुबंध छन्द के समान है और किसी-किसी पाण्डुलिपि मे तो रड के स्थान का वस्तुबंध नाम भी दिया है। इसी तरह मडिल्ल छन्द का भी पर्याप्त प्रयोग हुआ है। यह चौपई छन्द से मिलता जुलता छन्द है। रगिका छन्द मे आठ चरण होते है और यह सबसे बडा छन्द है। कविवर बूचराज ने इस छन्द का 'मयणजुज्झ' एव 'सन्तोष जयतिलकु' इन दोनो मे ही प्रयोग किया है।

कवि ने मयणजुज्झ एव अन्य कृतियो मे गाथा छन्द का भी खूब प्रयोग किया है। एक गाथा निम्न प्रकार है—

ए जित्ति चित्त खिल्लउ, आयउ आनदि घरह वद्धारे।
उट्ठु उट्ठु चचल वयणि, आरतउ वेगि उत्तारउ ।।५६।।

पाण्डुलिपि परिचय

मयणजुज्झ की राजस्थान के विभिन्न शास्त्र भण्डारो मे निम्न पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध होती हैं

		पत्र सख्या	लेखन काल	पद्य सख्या
१	आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर (महावीर भवन के सग्रह मे) गुटका स० ४६ वेष्टन स० २८७	२४	—	१५६
२.	भट्टारकीय शास्त्र भण्डार, अजमेर	२०	सवत् १६१६	१५८
३	शास्त्र भण्डार दि० जैन ठोलियान, जयपुर	—	सवत् १७१२	१५८
४	शास्त्र भण्डार दि० जैन बड़ा मन्दिर, जयपुर (गुटका स० ५ वेष्टन स० २६६४)	४१	—	१५८
५	शास्त्र भण्डार नागदी मन्दिर, बूदी	२२	—	१४२
६.	शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर, दीवान जी कामा (भरतपुर)	—	—	—

लेकिन प्रस्तुत पुस्तक मे दिया जाने वाला पाठ प्रथम, चतुर्थ एवं पचम पाण्डुलिपियो के ग्राधार पर तैयार किया गया है। आमेर शास्त्र भण्डार वाली प्रति जीर्ण अवस्था मे है। लेकिन उसके पाठ सबसे अधिक शुद्ध है। बू दी वाली पाण्डुलिपि मे ५२।। पद्य एक लिपिकर्त्ता द्वारा तथा शेप पद्य दूसरे लिपिकार द्वारा लिखे हुए हैं। इसको पारा बाई द्वारा लिखवाया गया था। लिखने वाले देवपाल माली ग्रलविरे का था। यहा क प्रति ग्रामेर शास्त्र भण्डार वाली पाण्डुलिपि है। ख प्रति बू दी के शास्त्र भण्डार की है। तथा ग प्रति से तात्पर्य शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर बडा तेरहपथी मन्दिर जयपुर से है।

□ □ □

मयणजुज्झ

मंगलाचरण—साटिकु

जो सव्वट्ठविमाणहुति चविउ तइ णाण चिततरे ।
उवन्नो मरुदेवि कूखि रयणो, स्याग कुले मइणो ।
भुक्त भोव सिरज्ज देस विमल, पाली पवज्जा पुणो ।
सपत्तो णिव्वाणि देउ रिसहो, काऊण तुव मंगल ।।१।।

जिण अरह वागवाणि, पणवउ सुहमति देहि जय जणणी ।
वण्णेसु मयण जुज्झ, किव जित्तिउ श्रीय रिसहेस ।।२।।

रिसह जिणवरु पढम तित्थयरु,
जिणधम्मह उद्धरणु, जुयलु[1] धम्मु सव्वै निवारणु ।
नाभिराइ कुलि कवलु, सरवनु ससारह तारणु ।
जो सुर इदहि वदियउ, सदा चलण सिरुधारि ।
किउ किउ रतिपति जित्तिउ, ते गुण कहउ विथारि ।।३।।

सुणहु भवियण एहु परमत्थु,
तजि चिंता परकथा, इकु ध्यानु हुइ कन्नु दिज्जइ ।
मनुषिल्लइ कव लाज्यउ, हुइ समाधियउ अमी उपज्जइ ।
परचै जिन्ह चित्तु एहु रसु, घालइ कसमल खोइ ।
पुनरपि तिन्ह ससार महि जम्मणु मरणु न होइ ।।४।।

सुणहि नही जूवइ जे रत्त,
जे इत्तिय कामरस, बहु उपाय थघइ जि रत्तीय ।
पर निंदा पर कत्थ जिके, तियवरि उनमादि मत्तिय ।
पडिय जि घोर समुद्द महि, नहु आवहि सुभ ध्यान ।
नौमा रसु वहु अमीय रस, इतहि न सुणही कान ।।५।।

१ जुवल (क प्रति)

दोहा

चेतन एव उसका परिवार—

पुव्व करम गहि वधिउ, सहइ सु-दुख सताउ ।
इसु काया गढ भित्तरङ, वसै सचेतन राउ ॥६॥

रड

राउ चेतन काउ गढ मज्झि,
नहु जाणइ सार किमु, मनु मत्री सपर वल वखाणउ ।
परवत्ति निर्वत्ति दुइ तासु तीय, ए प्रगट जाणउ ।
जाणउ निर्वत्ति विवेक सुत, परवत्तिहि भयो मोह ।
सो मल्लि वैठा रजू ले, करइ[1] कपटु सनेह नित दोहु ॥७॥

मडिल्ल

मोह धरहि माया पटरानी, करइ न सक अधिक सवलाणिय ।
करि परपंचु जगतु फुसलावइ, तहि निर्वत्ति किव आदरु पावइ ॥८॥

दोहा

चलिय निर्वत्ति विवेकु ले, दीठ्ठे इसिय[2] आचार ।
मोह राउ तव गरजियउ, दल वल सयन विथार ॥९॥

गाथा

गढ[3] कनकपुरीय[4] नामो, राजा तह सत्तु करइ थिरु रज्जो ।
तह[5] ले पुत्त पहुत्तिया, बहु आदरु पाइयो[6] तेण ॥१०॥
दीनो कन्या सत्त तिसु, सुमति सरस सुविमाल ।
थप्पि रज्जि विवेकुँ थिरु थालि गलइ गुणमाल ॥११॥

१ कर कपटु नित दोहु (क प्रति)
२ इसे (क प्रति)
३. चेतन की स्त्री निवृत्ति अपने विवेक सुत को लेकर कनकपुरी मे पहुँच जाती है।
४ पुण्णपुरी (ग प्रति)
५. तहा लोकत पहुतइ (ख प्रति)
६ पाइउ (ख प्रति)

मोह द्वारा चार दूतो को बुलाना—

सालु विवेकह मोह मनि, सोवइ पान पसारि ।
अेक दिवस इव सोचि करि, दूत बुलावइ चारि ।।१२।।

मडिल्ल

मोह[1] चारि तव दूत बुलाइय, सार लेण कु वेगि पठाइय ।
कपटु कुसत्त पापु वखाणउ, अरु[2] तहा दोहु चवथउ जाणउ ।।१३।।

खोजत खोजत देस सवाइय, पुन रगइपट्टण[3] तब आइय ।
करि[4] भरडइ को वेस पठाइय, धीरज कोतवाल तब दिट्ठिय ।।१४।।

दोहा

रंगपट्टण का वर्णन—

धीरज देखि कु दरसणीय, वहु ताडण तिन्ह दीय ।
पैसण मिले न नगर महि, ले करि भागे जीय ।।१५।।

तीनि गए तिहु घाहुडइ, कपटु कीयउ मनि चिट्ठ ।
तित[5] सरवर तिय भरहि जल, जितुसर जाइ वइट्ठ ।।१६।।

रड

ज्ञान सरोवर ध्यानु तसु पालि, जलुवाणी विमलमइ ।
संघण वरषत व्रत वारह, थिरु पखी जोग तिहा ।
नलनि मगर प्रतिमा इग्यारह, अठतीसउ रिधि तिहा ।
आणद कुंभ भरेहि, इक्क जीहते सुन्दरी वहु थुति जैन करेह ।।१७।।

दोहा

बहुती जैन पससना, करत सुणी इक नारि ।
कपट छल्यउ तव नगर कहु, रूप जतीकउ धारि ।।१८।।

---

१ ख प्रति मे १३ से १६ तक के पद्य नही है ।
२ अवरु ग प्रति
३ रंगपट्टन
४ करि भरडे कउ वेसु पइठे ग प्रति
५ तिस ग प्रति

मडिल्ल

नगरी माहि कपटु, सचरयउ ठाम ठाम सो देखत फिरयउ ।
देखि विवेक सभा सुविचक्षण, देखि प्रजा वय सुभ लक्षण ॥१६॥
देख्या न्याउ नीति मारग वहु, देख्या तह दुइ लोगु सुख सहु ।
भेद छेदु सर्वहि तिहा पायो, तव सु कपटु उठि पथिहि पायो ॥२०॥

कपट का वापिस अधर्मपुरी मे आना—

आइ अधम्मपुरी सुपहुत्तउ, जाइ जुहार मोहसिंहु कित्तउ ।
मोह बुलाइ वात तसु पुच्छइ, कहहु विवेकु कवणट्ठइ अच्छइ ॥२१॥

दोहा

पासि बुलायो कपटु तव, पूछण लागा बात ।
कहा विवेक निर्वात्ति कहु, कहु तिन्ह की कुसलात ॥२२॥

कपट का उत्तर—

मोह सुणहु तुम्हि कानु धरि[1], कपटु पयासइ एउ ।
जैसी देखी नयण मइ, तैसी वात कहेउ ॥२३॥

वस्तु बन्ध

धर्मपुरी का वर्णन—

वसइ पट्टणु पुन्नपुरु नयरु ।
तहाँ राजा सत थिरु, तिनि विवेकु गढि सुथिरु थप्पिउ ।
परणाई धीय तिनि, राजु देसु सवइ समप्पिउ ।
दया धम्मु तहा पालीयइ, कीजइ पर उपगारु ।
तह ठइ सुपनन दीसई, चोर अन्याई जारु ॥२४॥

दोहा

पवण छतीस्यु सुखस्यउ वसहि, करइ न को परतीति ।
काचे कचन गलिय महि, पडे रहहि दिनु राति ॥२५॥
तेरे गढ महि फोडि घर, चोर चरड ले जाहि ।
पर तिण कोइण छीपई, उसकी आज्ञा माहि ॥२६॥
तहा परपचु न दीसई, जह छै विसियन कोइ ।
सर्भ सतोषी मेदनी दीठी मइ अवलोइ ॥२७॥

१. दे क प्रति
२ ग प्रति मे २८-२६ पद्य को केवल २८ वां पद्य ही माना है ।

मडिल्ल

दीठा नयरु फिरि विचारयउ पखि ।
सुभ वाणी सुणीय सव्वह मुखि ।
राउ नयरु विषमउ दलु वलु अति ।
इद नरिंद करहिं जिसु की थुति ।।२८।।
सुणु सुणहो तूं मोह मुवपत्ति, मइं दीठा नयर तणी यह गति ।
स्वामि विवेकु चडिउ अति चाडइ, तुम्ह ऊपरि गव्वइ दिउ हाडइ ।।२९।।

दोहा

जव पच्चारिउ कपटि तिनि, तव मनि मच्छरु वाधु ।
डालि चडया जणु वांनरा, चूतडि बीछू खाधु ।।३०।।
तव[1] अहकार कीयउ तह, लीयउ वेगि बुलाइ ।
खवरि करहु सव सयण कहु, सभा जुडी जिउं आइ ।।३१।।

रड

मोह राजा की सभा—

रोसु आयउ साथि तिसु झूठ,
अरु सोक सतापु तह, सकलपु विकलपु आयउ ।
आर्वत्ति चिंता सहितु, दुखु कलेसु कौ ध्यायउ ।
कलहु अदेसा छदमु तह, समसरु[2] वलगरु जाइ ।
अैसी राजा मोह की सभा जुडी सभ आइ ।।३२।।

दोहा

करिवि सभा तब मोह भडु, इव चिंतइ मन माहि ।
जव लगु जीवइ विवेकु इहु[3], तव लगु सुख हम नाहि ।।३३।।

रड

तात मोहहि वयण सुणीयइ,
सुत मनमथु उठियउ, सिरु निवाइ करि जोडि जपइ ।
दावानलु जिउ जलिउ, थरहराइ करि कोउ कपिउ ।
रहहिकि कुंजर वापुडे, जितु वनि केहरि गधि ।
आजु निवत्ति विवेक सुतु गहि ले आउ वधि ।।३४।।

१. तव अहकारन कीवु तिनि क प्रति
२. अवरु समसरु सव्वलु गरजाये ग प्रति
३ दहु ग प्रति

दोहा

मदन का बीडा लेकर प्रस्थान—

मोह राउ तब हाथि करि, वीडउ अप्पइ अप्पु ।
कुमति कुबुद्धि कुसीष देइ, चलायिउ कदप्पु ।।३५।।

गाथा

गुडिय मयण मय मत्त गज्जिउ, सज्जिउ दलु विषमु चहु पयरेण ।
हरि बमु ईसु भज्जिउ, जब वज्जिउ गहिर नीसाणु ।।३६।।

गीतिका छंद

वसन्त का आगमन—

वज्जिउ निसानु वसन्तु आयउ, छल्ल कुंदसु खिल्लिय ।
सुगंध मलयापवण भुल्लिय, अब कोइल बुल्लिय ।
रुण झुणिय केवइ कलिय महुवर, सुतर पत्तिहि छाइय ।
गावन्ति गीय वजंति वीणा, तरुणि पाइक आइय ।।३७।।

जिन्ह कुंडिल केस कलाव कुंतिल, मग मोत्तिय धारिय ।
जिन्ह विणा भुवग रुलति चदनि गुंथि कुसम सवारियं ।
जिन्ह भवह धुणहर धरिय समुह नयण वाण चडाइयं ।
गावन्ति गीय वजन्ति वीणा तरुणि पाइक आइय ।।३८।।

जिन्ह तिलक त्रिगमय तिक्ख भल्लिय चीर धज फरकतियं ।
जिन्ह कनक कुंडल कध मनमथ मूढ पंडिव भतिय ।
जिन्ह दन्त विज्जु चमकत लग्गहि कुको कोनद वाइय ।
गायन्ति गीत वजन्ति वीणा तरुणि पाइक आइय ।।३९।।

जिन्ह सिहणि गिरिवर रोम वण घण, नखसि असिवर करट्ठए ।
इतु मग्गि चलतह समरि तसकर कहउ नर कित्तिय हए ।
वज्जति घणरउ खिइ नूपुर काछ कुसम वणाइय ।
गावन्ति गीय वजन्ति वीणा तरुणि पाइक आइय ।।४०।।

जिन्ह रागि कटि वधिय पटवर जिरह उर कचूक से ।
हाकति हसति कुकति कुरलति मूढ पट लहरी वसे ।
जे कुटिल बुधिहि हरहि परचितु चरत चेउन जाणीय ।
गायन्ति गीय वजन्ति वीणा तरुणि पाइक आइय ।।४१।।

देखतु दरसणु जिन्ह केरा रूप पहिला नासए ।
तिन्ह साथि परसु करत खिणमहि तेउ तनहु पणासए ।
मोहणु करतह आउ छीजइ कहहु किमि सुखु पाइयं ।
गायन्ति गीय वजन्ति वीणा, तरुणि पाइक आइय ।।४२।।

जे दव्वु देखत चित्त रजहि सील सत्त गवावहि ।
जे चहुव गति महि अनत जम लगु वहुतु दुख सहावहि ।
चिति अवरु चिताहि अवरु जपहि अवरु जुगपति आइय ।
गायन्ति गीय वजन्ति वीणा तरुणि पाइक आइय ।।४३।।[1]

रड[2]

तरुण पथ कडत मतीस
मिथ्यातीय गय गुडिय विसन सत्त हय तेउ सज्जिय ।
सुनाहु कुसील तिणि पापु कुत निसान वज्जिय ।
छत्तु धरियउ परमादु सिरि चमर कषाय ढलति ।
इव रतिपति सवूह करि चडिउ गहीर गाजति ।।४४।।

रंगिका

कामदेव का आक्रमण—

चडिउ गहीर गाजत घोरि मानइ न सक उरि ।
सुभटु आपणु जोरि अतुल वले तिणि कुसम कोवडलीय ।
भमर पण चकीय देखत तरुणि तिय कि कि न छले ।
सज्जि आणिय कुत कृपाण साधिये पाचउ वाण ।
फेरिये जगत आण वडिवि रणे, आइया आइया रे मदन राइ ।।
दुसहु लगउ धाइ चलिय सूर पलाइ गहवि तणो ।।४५।।

जिणि मिलिउ[3] सकरु माणु, छोडियउ अतर ध्यानु ।
गोरी सग हित प्राणु इव नडियं, जिन तपहु बिच टालि ।
घालिउ माया जालि गहन रूपि निहालि फद पडिया ।
हरि लियो मदन कसि सोलह सहस वसि रहिउ गूजरि रसि रयण दिणो ।
आइया आइया रे मदनु राइ दुसह लगो धाइ
चलिय सूर पलाइ गहिवितणो ।।४६।।

१. क प्रति मे यह पद्य तीन पक्तियो का है ।
२ ग प्रति मे इसका नाम वस्तु वध दिया है ।
३. मल्यउ—ग प्रति ।

जमदगनि वे स्वामी तू टालिउ तिन्हा चित्त, छोडि तपु गेहकितु ।
आपु खोइय, इदु विषय अधिकु व्यापउ अहिल्या टालीयउ आपु ।
गोतमी दिय सरापु, भगउ इय जिन लकापति डिगाइ ।
आणिय सीय चुराइ, घाल्या रावणु घाइ कइ जिणो ।
अइया अइया रे मदन राइ चलिय सूर पलाइ गहिवि जिणो ॥४७॥

जिणि सन्यासी जतीय सार, जगम सिर जटा धार ।
जोगीय मडित छार घलिय रसे, जिन भरउ भगववेस ।
विहडी लुंचित केस, काली पोस दरवेस कि कि नगसे ।
जस्य राकस गधव गुरु, सुभट सबल नर पसुव पखिय घर कित्तिय थुणो ।
अइया अइया रे मदन राइ दुसुहु लागा धाइ ।
चलिय सूर पलाइ गहियावितणो ॥४८॥

कि के जैन के सेवणहार ते तो कीते भिष्टचार ।
भोगिय सुख अपार ससार तणो ।
उहि देखत भये अघ पडिय करम फध ।
किये कुगत बंध जनम घणौ ।
जैसे बंभदत्त चक्कवति काम भोग करि थिति ।
गयउ नरक गति सतमि थुणो ।
अइया अइया रे मदन राइ दुसहु लागो घ्याइ ।
चलिय सूर पलाइ गहियावितणो ॥४९॥

जिनि कुंड रिषि ताडि, लीयउ सुभट पाडि ।
सिखर हु दिया राडि तपु तजिय ।
लीए सबल सुम्रर अंगि रहिउ तिय रंगि ।
विपय विपय सगि सुख भजिय ।
वीर चरण सेवक नितु ईंदिय लोलप चित्तु ।
सेणिकु नरय पत्तु सुख निपणो ।
अइया अइया रे मदन राइ दुसहु लागो घ्याइ ।
चलिय सूर पलाइ गहवितणो ॥५०॥

इक अवुह सजम रूपि, छलिय मदन भूप ।
दीनीय ससार कूप दसण भट्टे ।
नित करहिसि परपचु अनेकह जीव वचु ।
तजि मान लेहि कचु अप्पणु हट्टे ।

ते तौ रहिय सुचि आरंभ सकिन वरतु ठभि ।
उवर भरहि डभि रंजिवि जिणो ।
अइया अइया रे मदन राइ दुसहु लागी ध्याइ ।
चलिय सूर पलाइ गहिवितणो ।।५१।।

षट्पद

जितउ सुभटु वलिवडु जिन्हु गज सिंघ निवाइय ।
जीतउ दैत्य प्रचड लोइ जिन्ह कुमगिहि लाइय ।
जितउ देउ वलि लवधि धारि वहु रूप दिखालहि ।
जितउ दुट्ठ तिजच करिवि लघु वणखड जालहि ।
असपति गजपति नरपतिय भूपतिय भूरहिय भरि ।
ते अच्छ लच्छ ले टालिय अटल मयण नृपति परपचु करि ।।५२।।

रड्ड

जीतिये सहि कीयउ मनि हरषु ।
पुन्नपुरि[1] दिसि चलिउ, तव विवेक आवत सुणियो ।
चित्तंतरि चिंतविउ करिवि मतुये रिसउ मुणियउ ।
धम्मपुरिहिं श्री आदि-जिणु सुणियउ परगट नाउ ।
तत्थ गए हुउ उव्वरउ मदन गवावउं ठाउं ।।५३।।

गाथा

इव करंत गुह्य मंतो, आयउ सुह ध्यान दूव रिसहेसु ।
विवेक वेगि चवहु वुल्लावइ देव सरवन्नि ।।५४।।

दोहा

चलिउ विवेकु आनदु करि, धम्मपुरी सुपहुत्त ।
परणाई संजमसिरि, सुखु भोगवइ बहुत्त ।।५५।।
जव विवेकु नाठउ सुण्या, चिंतवइ अनगु अयाणु ।
भाग्या पीठि न धावहि, पुरुषहि इहु परवाणु ।।५६।।[2]

---

1 पुण्यपुरी ।
२ 'ग' प्रति मे ५६ वें पद्य की दूसरी पंक्ति नही है ।

रड

कामदेव का स्वदेश आगमन—

फिरिउ मनमथु जित्ति सब देसु,
नट भट जै जै करिहृ, पिसाच गधव्व गावहि ।
वहु खिल्लिय दुट्ठु मणि, कुजमु पडहु गढ महि बजावहि ।
माया करइ वधावणउ, मोह रहमि चित्तु ।
सव्वे इछा पुण्णिया, जिण घरि आयउ पुत्तु ॥५७॥

दोहडा

माइ पिता पगि लागि करि, तव मनमथु घरि जाइ ।
रहसिउ अगिन मावई, जीते राणा राइ ॥५८॥

गाथा

ए जित्ति चित्ति खिल्लउ, आयउ आनद घरहृ जव वारि ।
उट्टु उट्टु चद वयणि, आरतउ वेगि उत्तारउ ॥५६॥
मुहु रहिय मोड मानणि, पुच्छइ तब मयणु कवण कज्जेण ।
को सूरु वीरु अटलो कहि सु दरि मुज्झ सरि मुवणे ॥६०॥

रड

रति एवं कामदेव के मध्य प्रश्नोत्तर—

कत जित्तउ कवणु तै देसु,
को पट्टणु वरु णयरु, कवणु सवलु भूपत्ति डिगायउ ।
किसु छत्तु विहडियउ, करिवि वदि कहु कासु ल्यायो ।
किसु मलिया परतापु, तै कह कह फेरी आण ।
रति जपइ हो मदन भड कहु पौरिपु अप्पाणु ॥६१॥
जिणि सकरु इदु हरि वमु,
वासिग्गु पयालि जिसु, इदु चदु गह गण तारायण ।
विद्याधर यक्षसु गवव्व सहि देव मण इण ॥
जोगी जगम कापडी सन्यासी रस छदि ।
ले ले तपु वण महि दुड्यि ते मइ घलि वंदि ॥६२॥

दोहा

सुणि करि पौरिप मुज्झु तणा, घाल्यो मण भरमाई ।
समुहु अणिय न जुज्झयउ, गयउ विवेकु पलाइ ॥६३॥

रड

जाणिमतु पिय गयउ विवेकु,
धम्मपुरि गढ चडिउ सर्वेनि सनमानु दीयउ।
परतापै गरजियो, सूरजिव उद्योतु कियो।
जीवतउ वैरी गयउ, देषुजि करिहो सीजु।
ता तू मदनु न मोह भडु दुहु गवावइ षोजु ।।६४।।

दोहा

ढढोलिय तीन्यो[1] भुवण बलु लिद्धउ सुहडाइ।
सोमइ कहूँ न दिखियउ सो मुज्झु पकडइ बाह ।।६५।।

चडहू वडेरी पिरथवी, घर महि गव्वहि कासु।
तव बल पौरिष कत तुव, जे जित्तहि आदीसु ।।६६।।

जव तिनि नारि विछोहियउ, तव तमकिउ तिसु जीउ।
जणु पजलती अग्गि महि, लेकरि घालिउ घीउ ।।६७।।

कवित्त

कामदेव का धर्मपुरी की ओर प्रस्थान—

रोम रोम उद्धसिया, भिकुटि चडिय निल्लाडिय।
गुरणाउ जिउ सिंघु षालि चललिय अगडाइये ।।
विसहर जिउ फुकरइ, लहरि ले कोयह चडियउ।
जिव पावस घण मत्त तिवसु गज्जवि गड अडियउ।
नहु सहिय तमतिसु तिय किय, मछ तुछ जलि जणु सलिउ।
श्री धम्मपुरी पट्टण दिसहि, तवसु दुट्ठु मनमथु चलिउ ।।६८।।

गाथा

चल्लियउ रयहणाहो, सुदरि धरि वयण चित्त मज्झमि।
कलि कालि तासु सुणियउ, उट्ठयउ मोहु भडु जाइ ।।६९।।

उट्ठि उठ्यो मोहू राउ दिट्ठिउ नर सूरु वीरु परचडो।
तू कवण कत्थ वासहि, कहू आयो कवण कज्जेण ।।७०।।

1. तिणिउ क प्रति, तिणि ख प्रति

रड[1]

सुणहू स्वामीहउ सुकलिकालु
दस खेत्तहि संचरिउ, मइ[2] प्रतापु आपणै कियउ ।
विवेकु दुडाइयउ, मुकति पथु चलण न दीयो ।
कोडाकोडी अट्ठदस सायर मइवलु कित्तु ।
आदीस्वर भय भग्गियउ, इव तुम्ह सरणि पहूत्तु ॥७१॥

दोहा

आइ पडिय तिहि[3] अवसरिहि, पुरषहि सीझहि काम ।
कलीकालि पच्चारिउ, मोहू तमक्किउ ताम ॥७२॥

पद्धडीय छंदु

तमकायउ तिनि भडु मोहू जाइ, पुणु माया तह ठेलै बुलाइ ।
जव वैठे दूनउं एक सत्थु, कलिकालु कहइ जव जोडि हत्थु ॥७३॥
तुम्ह पूत मदन अति चडिउ तेजि, मन माहि न देखिउ सो आगेजि ।
घर माहि वडत तिनि नारि दुट्ठि, आरत्तउ न कियउ वेगि उट्ठि ॥७४॥

कामदेव का प्रभाव—

नहु सहीय तमक मनमथ प्रचडु, उत्तरिउ जाइ तितु घोर कुडु ।
सो घोर कुड दुद्धरु अगाहु, जलु रुहिरु पूई भरियो अथाहु ॥७५॥
मय भीम भयकर पालि जाहु, आसाता वेयणि नलनि ताहु ।
जह विरख तिक्ख करवाल पत्त, झडि पडहि तुट्ठि छेदहि सिगात्त ॥७६॥
जह ढख कंख पखियन नेहु, जिन्ह चुंच सडासिय भखहु देह ।
जितु लहरि अगनि झाला तपाइ' खिणुमहि सतनु घालहि जलाइ ॥७७॥
करि मगर मछ ए दुट्ठ जीय, तिसु भीतरि ते पुण लेइ दीय ।
वै परमाधरमी बधिक जाणि, ते घालि जालु काढति ताणि ॥७८॥
इक लो कुहाड कूकहि गहीर[4], ते खड खड करि घालहि सरीरु ।
जह तपा तपहि नित लोह थभ, जिन्ह लावहि अगिजि षलिय वभ ॥७९॥

---

१ ग प्रति मे रड के स्थान पर वस्तु वन्ध छन्द का नाम दिया है ।
२ मैनु (ख प्रति)
३ तित्तु (क, ख प्रति)
४ अहीर (क प्रति)

थाइयइ सु ता वाताइ सुद्ध, मदि मासि जिहु तिय जीव लुद्ध ।
तह घाट विषम कु भी गहीर, तिसु माहि पचावहि ले सरीरु ।।८०।।
सिरु तलै करहि उपरि सि पाउ, वै घालहि सबल निसक पाउ ।
भाले करि पीडहि घाण माहि, रड वडहि रडहि बहु दुखु सहाइ ।।८१।।
वै छेयण भेयण ताडणह ताप, वैसहहि जीय जिनि कीय पाप ।
जिनि अन्यामानी मोह राइ, तितु सुर मज्जहि तेह जाइ ।।८२।।
तह स्वामि उत्तारिउ मयण कीय, मइ आइ सारथयह तुम्ह दीय ,
धम्म[2]पुरु गढु अति विषम ठाणु, तिस उप्परि चलिउ करि बिताणु ।।८३।।
इव आइ जुडियइहु विपम सघि, उहू सक न मानइ जीति कधि ।
उहु अप्पु अप्पु अप्पउ भणाइ, उहु अवरि कोडि नवडि गिणाइ ।।८४।।
आदीसुरस्यउ मिल्लिउ विवेकु, उहु वैसि कियउ दूहु मतु एकु ।
अप्पणउ दाउ सहुको गण ति, को जाणइ पासा कि ढलति ।।८५।।

दोहा

इती बाय सुणेवि करि, चित्ति उप्पणउ कोहु ।
सधनु सवै सवूहि करि, इव भडु चल्लिउ मोहु ।।८६।।

रड

मोह का साथ होना—

मोहु चल्लिउ साथि कलिकालु,
तहहू तउ मदन भडु, तह सु जाइ कुमतु कियउ ।
गढु विपमउ धम्मुपुरु, तहसु सघनु सवूहि लियउ ।
दोनउ चल्ले पैज करि, गव्वु धरिउ मन माहि ।
पवण प्रवल जव उच्छलहि, घण घट केम रहाहि ।।८७।।

गाथा

रहहि सुकिउ घण घट्ट, जुडिया जह सबल गजि थट्ठ ।
सवखिडि चले सुभट, पयाणउ कियउ भड मोह ।।८८।।

रासाछदु

करिवि पयाणउ मोहु भड चल्लियउ ।
समुह भखाज वालवधूलउ भुल्लियउ ।
फुट्टिउ जलहरु कु भ ध्याह तरुणि दिय ।
ले आइ तह अग्गि धूषतिय रडतिय ।।८९।।

२ धर्मपुरी

अपशकुन होना—

मु डिय सिरु नर न कटउ हथि कपालु जिसु ।
समुहुई छीक पयाणउ करत तिसु ।
तिण तुस चम्म कपास कद्दम्म गुड लवणा ।
मोह चलत तिसु नगर हू दीठे ए सवणा ।।६०।।

प्रथम मजलि चलत सुफीही फोकरई ।
नाइक वाभहु मालउ वत्तीसी अणुसरइ ।
वावइ काला विसहरु मैंसिहू फणु हुणई ।
मुक्क विरपतहि जुगिणि बोलइ दाहिणए ।।६१।।
सवणन सुपिनउ मानइ, चडिउ गविअते ।
कज्ज विणासण अवसरि पुरुपह डिगय मते ।

धर्मपुरी के दर्शन होना—

मजलि मजलि करि चलिउ, धम्मपुरी दिसहि ।
आगम ध्यातम सार जणाइय वेचरहि ।।६२।।

दोहा

आगम ध्यातम विचिचर तिन्ह जणायउ ।
आइ तुम्ह उप्परि पल्याण्यो, स्वामी मनमथु राइ ।।६३।।

गाथा

मुणिय बात मणरमु उपायउ ।
मरुवत्तणु न क्कीवु वुलायउ ।
सार देइ विव्वेक वुलावहु ।
सभा जोडि सुहु मतु उप्पावहु ।।६४।।

कवित्तु

विवेक की सेना—

सम दम सवरु ढुकु ढुकु वैरागु सवलु दलु ।
वोहि तत्तु परमत्थु सहण सतोप गरुवभर ।
पिमा सु अज्जउ मिलिउ मिलिउ मद्दउ मुत्तित्तउ ।
मजमु सुत्तु सउव्वु आयउ किंचणु वभवउ ।
वलु मडि मिलिय करुणा अटलु सासण विणु वधाइयउ ।
ले फौज सवलु सवूहि करि इव विवेक भडु आइयउ ।।६५।।

हक्कारिउ सुभट चारितु सज्जिउ तपु सैनु सवलु संवूहि ।
गह गहउ जैन चित्त, इव चल्लिउ रिसह जिरणणाहि ।।९६।।

चल्लिउ रिसह जिरणदु स्वामी, विहिसिया मनु कवलु ।
तिमु पंथि सनमुष आइया, नाथि यामैं मतु धवलु ।
मृदग तूरा सष भेरी झल्लरी झकारु ।
दाहिणइ सुदरि सवद मगल, गीय करहि उचारु ।।९७।।

ले हत्थि पूरण कलसु लक्षिमी, मीलिय सनमुष आइ ।
पावकु दीपग्गु जोति समसरि देषिया जिण राइ ।
सव रच्छ सुरही अति अनूपमु, काढ तासु गुवालु ।
पयसतु पवलिहि दिट्ठु नरवइ, करगहै करवालु ।।९८।।

निलटतु वावइ वोलिया चडि सुफल बिरखहि चाइ ।
इकु निवलु जुगलु पलोइया सावडू चडिया आइ ।
गरजत सुणिया केसरी सिरि धरया चवरु उठाई ।।९९।।

दुइ दिट्ठ गयवर अति सउज्जल करत गल गरजार ।
आवत फल नारिंग निहाले अवर कुसमहि हारु ।
सब सवण सुपन सजोग उतिमालबधि पोतइ जाम ।
जे नीति मारग पुरष चालहि तिनहि सीझइ काम ।।१००।।

रड

हुइय उत्तिम सवेरा जाम
गढ पाषलि उत्तरिउ, सुमति पच सा बाण छाइय ।
मनुसूरह गहं गहिउ, जाम नीसाण परगढ बजाइय ।
दोनउ ढुक्किय सवल दल, जुडिय सुभट मुख मोडि ।
रणु दिट्ठहि जे नर खिसहि, तिनकी जननी खोडि ।।१०१।।

पद्धडीय छन्दु

तिन्ह जननि खोडि जे भजि जाहि, पच्चारिय नर पौरिषु कराहि ।
रणु अगणु देखहि सूरवीर, पे रणिय जेव नच्चहि गहीरु ।।१०२।।

आइयउ पहिल अन्यान घोरि, उट्ठि न्यान पछाडिउ करिवि जोरु ।
मिथ्यातु उठिउ तव अति करालु, जिनि जीउ रुलाउ अनत कालु ।।१०३।।

घल्लिउ कुमग्गहि लोउ तासु, तिनि मुसिउ न कोको को विस्वासु ।
अनादि काल जो नरह सल्लु, उहु मिडइ सुभटुए कल्लु मल्लु ।।१०४।।

युद्ध का वर्णन —

लोगालोगोनरु दुहु पयार ।
जिसु सेवत भमियइ गति चयारि ।
समिकतु मुसूरु तव दिट्ठ होइ ।
वलु मडि रणहि जुट्टियो सोइ ॥१०५॥

फाटियो तिमरु जव देखि भानु ।
भग्गियो छोडि सो पढम ठाणु ।
उठि रागु चलिउ गरजत गहीर ।
वैरागि हणिउ तणि तासु तीरु ॥१०६॥

उठि धाइ दुसह तव विषइ लगु ।
पच्खाणु देवलु परइ भगु ।
उठि कोहू चलिउ झाला करालु ।
तव उपसमु ले हणियो करवालु ॥१०७॥

मद् श्रट्ठ सहित गजिउ मानु ।
जिनि मद्दवि जित्ति कर विताणु ।
तव माया श्रति उट्ठी करूर ।
मलि श्रज्ज विदिन्नी होट्ठ चूरि ॥१०८॥

वाईस परीसह उठेय गज्जि ।
दिखि देखि धीरजु सुभटु जि गईय भज्जि ।
श्राइयउ कलहु तह कलकलाउ ।
दुडि गयउ दुसहु तिसु खिमा धाइ ॥१०९॥

ढुक्कियउ झूट्ठ मूरिखु श्रगेजु ।
सति राउ गवायो तासु तेजु ।
कुसीलु जु होत दुट्ठ चित्ति ।
वलु करि विदारिउ वभदत्त ॥११०॥

दलु चलियउ मोहहु मुख फिराउ ।
तव लोभु सुभटु भो जुडिउ श्राउ ।
तिणि दारुणि वलु मडिउ वहूतु ।
उन विकट वुधि सिहू दिनी नुधुत्त ॥१११॥

उहु दुपी करइ नित पुरिष सत ।
उहु व्यापि रह्या सह जीव जता ।

उहु लडइ खिणहु खिणि भज्जि जाइ।
बलु करइ वहुडि संचरइ आइ ॥११२॥

दसमैं गुणठाणौ लगु चडेइ।
बलु करइ अधिकु नहु जाण देइ।
तिसु देषि पराक्रमु खलिय राइ।
सतोषु तबसु उट्ठियउ रिसाइ ॥११३॥

तिसु सीसु हण्या ले वज्ज दंडु।
खँड हडिउ लोभु पडियो प्रचडु।
एहु देषि जूद्धु सो कलियकालु।
खिण माहि फिरिउ नारदु बितालु ॥११४॥

तिनि तजिय कुमति सुहमति उपाइ।
विव्वेकु सहाई हुयउ आइ।
जो चलन न दित्तउ मुत्ति मग्गु।
कर जोडि सुस्वामी चलण लग्गु ॥११५॥

आसरउ उठिउ सव विधि समत्थु।
रण मज्झि भउ करि उब्भ हथु।
संवर वलु आणिउ ताम चित्ति।
तिमु खोइय मूलि उप्पाडि थित्ति ॥११६॥

वहु भिडिय सुभट रण महि पचारि।
के भग्गिय के घल्लियसि मारि।
दल माहि जु क्रम हुतिय प्रचडु।
तप सूर किये ते खड खड ॥११७॥

जब बात सुणीयहु मोह राइ।
तब जलिउ बलिउ उट्ठिउ रिसाइ।
करि रत्त नयण वहु दत पीसि।
अनिहाउ पडिउ जण तुट्टि सीसि ॥११८॥

वहु रूद्दि रूपि सो डह्यो आप्पु।
सो वहुत करइ जीयह सतापु।
रैं मडिउ सु रणमहि दुसहु धाइ।
उस समुहु न ढुक्कइ कोइ आइ ॥११९॥

वस्तु वन्ध

को न ढुक्कइ समुहु तिसु ग्राइ ।
वलु पौरिपु सवु हरिउ मलइ—
ग्रमल सो ग्रचल चालइ ।
वैरागहु चरितहु तपहु ग्रवरु संजमहु टालइ ।
ग्रट्ठाइसै पगल जिसु लगाइ जिस कहू धाइ ।
सो नरु जम्मणु मरणु करि वहूतै जोणि भमाइ ।।१२०।।

तव वुलाय देवु ग्रादीसु,
विव्वेकु सवलु भडु' अप्पुवकारणि थानिकि वइट्ठिउ ।
ग्रवगजनु मोहकौ, न्यान वुद्धि ग्रवलोइ देषिउ ।
पेरिउ तव तिनि सीख कहि, दे ग्रसिवरु सुहु भाणु ।
वेगि वियारहु धुत्त दुइ, जिउ प्रगटै निव्वाणु ।।१२१।।

गाथा

प्रगटावण पहुमतो, चडियो वव्वेकु सज्जि भोवालो ।
लो सरयन्नि चलणि लग्गिवि, लेउ नमतु चलियउ एव ।।१२२।।

चौपाई

उन्मतु ले चल्लिउ ननमहि खिल्लिउ ।
उपजी वहुत समाधि रणि रगणि ग्रायो ।
साधह भायो नाठी कुमति कुव्याधि ।
रजिय मुहु सज्जणि जिव पावस घण ।
दुज्जण मथै तालो मोहह मौषडनु ।
न्यानह मडनु चडिउ विवेकु भुवालो ।।१२३।।[1]

उम वाभ्हू जे नर, दीसहि रत खर कित्तै किसहि न काजे ।
जिन्ह कहु प्रसन्ना पुछिल्ल पुन्ना, ते राणे ते राजे ।
ते ग्रविहुउ मित्तह निम्मल चित्तह, विगसत वचन रसालो ।
मोहह मौपडणु न्यानह मडनु चडिउ विवेकु भुवालो ।।१२४।।

१ क ग्रौर ग प्रति की छन्द संख्या मे ग्रन्तर हे

जो दलि बलि पूरा, सव विधिसूरा, पचह महि परवीणो ।
परमत्थह वुज्झइ आगमु सुज्झइ धम्मि ध्यानि नित लीणो ।
जो फेडैं दुर्गति आणैं सुहगति वहु जीवह रखवालो ।
मोहह मौखडनु न्यानुह मडनु चडिउ विवेकु भुवालो ।।१२५।।

जो दव्वह खित्तहि, जाणैं छित्तिहि काल भावसु विचारइ ।
नयसुत्तिहि सत्थहि भेयहि अत्थहि सकट विकट निवारइ ।
जो आगम विमासइ निरतउ भासइ मदन खनन कुद्दालो ।
मोहह मौखडनु न्यानह मडनु चडिउ विवेकु भुवालो ।।१२६।।

छपदु

पाप पटलु निद्दलनु जोति परमप्पय कासणु ।
चिंता मणियहु रमणु भवियण जण मन उल्हासणु ।
सकल कल्याण कोसु, सवइ आरति भय खिल्लणु ।
जडिगत जीव अवठभि, भार धम्म धुर झुल्लणु ।
सतुट्ठ होइ जि सुर नर, मिलिउ तासु न पडइ कम्मपहु ।
चडिउ विवेकु इव सज्जि भडु, करण प्रगट निव्वाण पहु ।।१२७।।

पद्धडिय छदु

मोह एव विवेक के मध्य युद्ध—

परगटणु मग्गु निव्वाणु कज्जि ।
विवेकु सुभटु तव चडिउ सज्जि ।
तव ढोयो कीयो तेनि जाइ ।
मुहु मोडि चलिउ तव मोहु राइ ।।१२८।।

देखिउ मदनु जब खिसत मोहु ।
तव चल्लिउ अप्पु मनि करि विछोहु ।
उइ दोनउ दुक्किय काल कंधि ।
तव भिडिय रणागणि फौज बधि ।।१२९।।

वै अणिय जोडि जुझिय भुवाल ।
तव पडहि खग्गजणु असण झाल ।
ए तेजल्हेस्या गोले मिलति ।
तिसीय उल्हेस्या झाला झलति ।।१३०।।

वैर हीय सुभट्ट अच्चल्ल होइ ।
दुह माहि नपिछौड खिसई कोइ ।
जव देखिउ दलु दुधरु अगाहू ।
तव सजमि रथि चडि चलिउ नाहु ।।१३१।।

छदु रंगिका

आदिनाथ की कानदेव पर विजय—

जिणु सजमु रथहि चडि तिन्नि गुत्ति गय गुडि ।
मिलिय सुभट जुडि पच वरत खिमा आडणु समूहू धरि ।
न्यानु करवालु करि समिकतु तारिए सिरि तवि उत्थित ।
छुटि अगम सकल सार कुमति कथानर कपति घणो ।
भाजु भाजु रे मदन भट, आदिनाहु सिरिसट ।
देइ कर दह वट प्रथम जिणो ।।१३२।[1]

खेतुरचा भावन भाइ, मत्त घु जलहुकाइ ।
मिलिय राणिय राइ, छत्तीस गुण अनुप्रेक्षा पाइ कवार ।
सील सहस अगठार, दस विधि धम्मचार ।
सवल घण वैठी त्रोदसमे गुणगणु ।
देखिय अन्तर ध्यानि गति थि सव जाणि कहइ गुणो ।
भागु भाजु रे मदन भट आदिनाहु सिरि सरट''''जिणो।।१३३।।

तिनि रतन जो से निकसि वभु वरत धारि असि ।
नफीरी बाजहि जसि, गहिर सरोदयारहिय पौरिख पूरि ।
भागिय हिंसा दूरि वलु उपसनु सूरि कियो ।
नरो ए जु अतीसह ‑तीसचारि, परि जेति वच कारि ।
मतु सुध्यानु घरि राखिउ मणो, भाजु भाजु रे मदन भट ।
आदिनाहु सिरसट देइ कर दह वट प्रथम जिणो ।।१३४।।

घालिउ समर कटकु फदि, मोहु राउ कियो वदि ।
कसाइ चारि निन्द वहिहा भडमद मैगल किय निपातु ।
चालिय भागि मिथ्यातु मुडिय घडा धम्म सुरति भाट पढति ।
दु दही देव वाजति सुरह तीय गावति सासण गुणो ।
भाजु भाजु रे मदन भट'' ''''''''प्रथम जिणो ।।१३५।।

१ क प्रति मे १३२ की सख्या नहीं दी गई है ।

कवित्तु

चडिउ कोइ कदप्पु, अप्पु वलु अवर न मानइ ।
कुंदइ कुरलइ तसइ, हसइ सुभटह अवगण्णइ ।
ताणि कुसमु कोवड भडरडह सडह दल ।
वभई सहरि दैत तिन्ह रखिय तिन्हक ।
कवि बल्हगु जयतु जंगमु अटलु ।
सरकिय अवरु तिसु सरइ कोइ ।
असि झाण हणिउं श्री आदिजिण ।
गयउ मयणु दह बट्ट कुहुइ ।।१३६।।

वस्तु बन्ध

दुसहू बद्धउ मोहु प्रचडु, भडु मयणु निंदियउ ।
कलिय कालि तव पाडि लियउ, आनदु निर्वत्ति मनि ।
विवेक जसु तिलकु दीयउ, जे वडवडे धम्म के ते सव ।
घाले वदि चेयणुराउ छुडाइयउ, स्वामी आदि जिणदु ।।१३७।।
छुट्टि चेयणु हुयउ मणु महजि,
सह खुल्लिय धम्मदर, समाधि आगम जाणियउ ।
रवि कोट अनत गुण, प्रगट जोति केवलि दिपायउ ।
सुरपति नरपति, नागपति मिलिय सैन सव आइ ।
अन्या फेरन देसमहि दियउ विवेकु पठाइ ।।१३८।।
स्वामि पठायउ राउ विवेकु
सो देसहि सचरिउ, उसभ सेणिकहु वेगि बुलावहु ।
सो थप्पिउ गणहपत्ति, सुत्तु अत्थु तिसु कहु सुणायउ ।
इकु धम्मु दुहू विधि कह्यो, सागारी अणगारु दे ।
ससेपिहि इव कहियउ, भवियहु सणहु विचारु ।।१३९।।

कर्म का विवेचन—

मिलि चउविहु सघहु आइ,
वहू देवी देवतह, तिय जाचमि हुइय इक्कट्ठिय ।
करि वारह परिखधा, ठामि ठामि मडिवि वइट्ठिय ।
वाणीय निम्मल अमियमै, सुणि उपजै सुह झाणु ।
भवियणु मनु गहि गहिउ स्वामी करइ वखाणु ।।१४०।।

थिति पथासिय लोउ अलोउ,
पुणु भासिय अथि जो, नत्थि हु ति ते नत्थि भासिय ।
पुण्णि कारणि वहु विधि कहिउ, जो जो जिसीय करेइ ।
मो सो तिवहि मेलि दल, सा सा गति भोगेइ ।।१४१।।

महारभ पारभ करि परिग्गहु मिलवहि ।
पच इदिय वसि करहि मद मासि चितु लावहि ।
इसे सुख के फल पाप न पुन्न विचारहि ।
सो नरु नर गेहि जाइ मणुव जम्मतरु हारइ ।।१४२।।

वहु माया केवलहि कपटु करि पर मनु रंजइ ।
अति कूडिहि अवगूढ करिवि छल परजीवह वचइ ।
मुहि मीठा मनि मलिन पच महि भला कहावइ ।
इन कम्महि नरु जाणि जूनि तियजचह पावइ ।।१४३।।

भद्द प्रवृत्ति जे होहि ध्यान आरति न चहुँटहि ।
अनुकंपा चिति करहि विनउ रति मुखा भापइ ।
पचदह दहइ सरल प्रणामि, मनि न आणहि मछर गति ।
कहहि खरवन्नि पावहि सुगति राग सजम दहु पालहि ।।१४४।।

सावय धम्म जे लीण दिस समूह निहालइ ।
विण रुचि जे निजरहि वालयण तवु साधहि ।
इनु भाइ जिणराइ कह्यउ देवह एति वाधहि ।।१४५।।

रड छद

मणहु सवै चित्त धरि भाउ,
निज समकितु सद्दहहु, देउ इक अरहत सेवहु ।
आरभ पारभ विनु, सुगुरु जाणि निग्रन्थ सेवहु ।
भासिउ धम्मु जु केवलिय, सो निश्चइ जाणेउ ।
तिन्ह वरत सजम नेमि तिन्ह, जिन्ह पहिला थिरु एहु ।।१४६।।

थूल पाण मम भखहू थूल कूडउ मम भासहु ।
थूलु अकत्तु मलेहु देखि परतिय वितु तासहु ।
परिगहु दिउह पमाणु, भोगउपभोग संखेवहु ।
अनर्थदडिविमाणु, नमउहू सामाइकु सेवहु ।।१४७।।

ख प्रति

थूल पाण मम वहहु, थूल कूडवो मम भासहु ।
थूल अदत्तमलेहु, देखि परतिय तन तासहु ।
परिगह दिगह पमाणु, भोग उपभोग सखवेहु ।
अनथदड प्रमाण, नित्य सामाइकु सेवहु ।
पसरतु सुमनु दसमहि दमहु, पोसहु एकादसि घरहु ।
आहार सुद्ध चित्त निम्मलइ, असविभाग साधहु करहु ।।१४७।।

मडिल्ल

पहिली प्रतिमा दसण धारहु, वीजी व्रत निम्मल उच्चारहु ।
तीजी तिहु कालहि सामाइक, चौथी पोसहु सिव सुख दायक ।।१४८।।
पचमी सकल सचित्त विवज्जइ, राईभोयणु छट्ठीयन किज्जइ ।
सप्तमी वभ वरत दिढु पालहु, अट्ठमी आपणु आरमु टालहु ।।१४९।।
नवमी परगहु परइ मिलीजइ, सावघ वचनु दसमी दीजइ ।
एकादसमी पडिमा कहि परि, रिषि जाउ ले भिक्षा पर घर फिरि ।।१५०।।

दोहा

इव जे पालहि भावस्यु इहु उत्तिम जिण घम्मु ।
जग महि हूवउ तिन्ह तणउ, नर सकयत्थउ जम्मु ।।१५१।।

रड

जपि सक्कइ करहु तउ तिसउ
वलु मडिवि देहस्यउ, अहव किपि जे नर सक्कहु ।
ता सद्दह ध्यानु निजु, हीयइ धरत खिणु इक न थक्कहु ।
अते करहु सलेखणा, सव्वे जीव खमाइ ।
पालहु सावय सुख लहहु आण जिणेसुर राइ ।।१५२।।
सुणहु सावहु धम्मु हित करणु,
सो पालहु अलख मणि, सुग्गइ होइ दुग्गइ निवारइ ।
वुडत ससार महि, होइ तरड खिण महि तारइ ।
वधियइ कम्म जि सुह असुह, जीय अनंतइ कालि ।
ते तप वलि सव निद्दलहु, जिव तरु कु द कुदालि ।।१५३।।

षट् पद

छोडि इक्कु आरमु राग दोषह विहु तजहु ।
तीनि सल्ल परिहरउ, चारि कषाय विवज्जहु ।

पच प्रमाद निवारि, छोडि पीडणु छक्काइहि ।
पच सत्ति भय ठाणु, अट्ठ मद पडि सभा इहि ।
अवभुन नव विधि आचहु, मिथ्या दस विधि परहरहु ।
रिषि सुणहु एव सरवन्नि कहिउ, इकु अप्पणु पउ उवरहु ॥१५४॥

इकु वसि करि आतमउ, विनि थावर तेस पालहु ।
आरहहु तैर घण दिट्ठि, ते समिय निहालहु ।
पचइ चार चरहु दव्व छह विद्धि न लिज्जहु ।
सुत्त सत्त नय जाणि, मातु अडसमे गहिज्जहु ।
नव वभ वडि दिढु राखीयइ, दस लक्षण धम्महम्महु ।
जिण भास इव मुनिवर सुणहु, गति न चारि इणि परिभमहु ॥१५५॥

सुमइ पच तिय गुत्त पचह वैयारित परि ।
सजमु सत्त दह भेय, भेय वारह तपु आचरि ।
पडिमा हुइ दस सहहु, सहहु वाइस परीसहु ।
भावण भाइ पचीस, पापु सुत्त तजि नव वीसह ।
तेतीस असाइण धल्लियहि, जिण चौवीसड थुति करहु ।
अट्ठाईस पगय मडु मोहु जिणु, इय सुसाय सिवपुरि सहहु ॥१५६॥

दिन्नु देसण एह जिणराइ जह गणहरु सघ जाह ।
भव्व जिय सवेउ आयउ किध तित्थु चौविहहि ।
तित्थकरु तव नाउं पापउ, नामु गोतु फुणि वेघही ।
आउ सेसजिहु ति, तेखिउ करि सिवपुरि गयउ ।
सुख भोगवइ अनत ॥१५७॥

षट्पदु

जह न जरा न मरणु जत्थ पुणि व्याधि न वेयणु ।
जह न देहन न नेह जोति मइ तह ठइ चेयणु ।
जह ठइ सुक्ख अनत न्यान दसण अवलोवहि ।
कालु विणासइ सयलु सिद्ध पुणि कालहि खोवहि ।
जिसु वणु न गंधु न रसु फरसु, सबदु न जिस किसही लह्यो ।
बूचराजु कहै श्री रिसह जिणु सुथिरु होइ तह ठइ रह्यो ॥१५८॥

राइ बिक्कम तराउ' सबतु नवासिय पणरहसै ।
सरद[1] रुत्ति आसवज बखाणिउ' तिथि पडिवा सुकलु पखु ।
सनि-सुवारु करु नखित्तु जाणिउ तितु दिन बल्हु पसट्ठयउ ।
मयणु जुद्धु सुविसेसु, करत पढत निसुणत नरहु ।
जयउ स्वामि रिसहेसु ।।१५९।।

सुभं भवतु ।। लेखक—पाठकयो ।। लिखापितं बाई पारा स्वय पठनार्थं कर्म्म क्षयनिमित्त । लिखत देवपालु माली अलावरे को ।।[2]

□ □ □

१ सबद (क प्रति)
२. (ख प्रति)

२

संतोषजयतिलकु

राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो मे 'संतोषजयतिलकु' की एक मात्र पाण्डुलिपि उपलब्ध हो सकी है। पाण्डुलिपि श्री दि० जैन मन्दिर नागदी, बून्दी के गुटके मे कविवर बूचराज के अन्य पाठो के साथ सग्रहीत है जो पत्र संख्या १७ से ३० तक उपलब्ध है। तिलकु मे १२३ पद्य हैं। उसके लिपिकर्त्ता पाडे देवदासु थे जिनका उल्लेख 'चेतन पुद्गल धमाल' के अन्त मे दिया हुआ हे। पाण्डुलिपि शुद्ध, स्वच्छ एव सुन्दर है।

साटिक

मगलाचरण—

जा अज्ञान अधार फेडि करणं, संन्यानदी वंद्यवे।
जा दुख वहु कम्म एण हरणं, दाइकमुग्गै सुह।
जा देव मणुणा तिर्यच रमणी, भक्किख तारणी।
सा जै जै जिणवीर वयण सरिय वाणी अते निम्मल ॥१॥

रड

विमल उज्जल सुर सुरसणेहि,
सु भवियण गह गहहि, मनसु सरिजणु कवल खिल्लहि।
कल केवल पयडियहि, पाप पटल मिथ्यात पिल्लहि।
कोटि दिवाकर तेउ तपि निधि गुण रतन करडु।
सो व्रधमानु प्रसनु नितु तारण तरणु तरडु ॥२॥

तरण तारणु हरणु दुग्गयह,
करुणाकरु जीय सहि, भविय चित्त वहु विधि उल्लासणु।
अठ कम्मह खिउ करणु मुद्द धम्मु दह दिसि पयासणु।
पावापुरि श्री वीर जिणु, जव सुपहुत्तउ आइ।
तव देविहि मिलि सठयउ समोसरण वहु भाइ ॥३॥

इन्द्र का वृद्ध के वेष में गौतम गणधर के पास जाना—

जब सुदेखइ इंदु धरि ध्यानु,
नहु वाणी होइ जिण, तव सुक्र पटु मन महि उपायउ ।
हुइ वभणु डोकरउ मच्चलोइ सुरपति आयउ ।
गोतमु नोतमु जह वसै अवरु सरोतमु वीरु ।
तत्थ पहुतउ आइ करि मघवै गुणिहि गहीरु ।।४।।
थिवरु बोलइ सुणहु हो विप्प,
तुम्ह दीसइ विमलमति, इकु सन्देहु हम मनहि थक्कइ ।
नहु तै साके मिलइ जासुहु तयह गाठि चुक्कइ ।
वीरुहु ता मुज्झ गुरु मोनि रह्यालो सोइ ।
हउ सलोकु लीए फिरउ अत्थु न कहइ कोइ ।।५।।

गाथा

हो कहहु थिवर वभण, को अछै तुम्ह चित्ति सदेहो ।
खिण माहि सयल फेडउ, हउ अविरुल्लु बुद्धि पडित्तु ।।६।।

षट्पदु

तीन काल पटु दव्वि नवसुपद जीय षटुक्कहि ।
रस ल्हेस्या पचास्तिकाइ व्रत समिति सिगक्कहि ।।
ज्ञान अवरि चारित्त भेदु यहु मूलु सु मुत्तिहि ।
तिहुवण-महवै कहिउ वचनु यहु अरिहि न रुत्तिहि ।।
यहु मूलु भेदु निजु जाणियहु सुद्ध भाइ जे के गहहि ।
समक्कत्तदिट्ठि मतिमान ते सिव पद सुख वछित लहहि ।।७।।

गाथा

एय वयण सवणि संभलि, चमकिउ चित मज्झि पुरइ नहु अत्थो ।
उट्ठियउ झत्ति गोइमु चल्लिउ, पुणि तत्थ जथ जिणणाहु ।।८।।

रड्ड

तव सु गोइमु चल्लिउ गजतु,
जणु सिंधुरु मत्तमय तरक छंद व्याकरण अत्थह ।
षटु अगह वेयधुनि, जोत्तिक्कलकार सत्थह ।।
तुलइ सु विधा अतुल वलु चडिउ तेजि अति वमु ।
मानु गल्या तिसु मन तणा देखत मानथमु ।।९।।

गाथा

देखंत मान थभो, गलियउ तिमु मानु मनह मझम्मे ।
हूवउ सरल पणामो पुछ गोइमु चिति सदेहो ।।१०।।

दोहा

गौतम द्वारा प्रश्न—

गोइमु पुछइ जोडिकर स्वामी कहहु विचारि ।
लोभि वियापे जीय सहि, तरिहि केउ ससारि ।।११।।

रड

भगवान महावीर का उत्तर—

लोभ लग्गउ पाणवधु करइ,
अलि जपइ लोभिरतु, ले अदत्तु जव लोभि आवइ ।
यहु लोभु वभह हरइ, लोभि पसरि परगहु वधावइ ।।
पचइ वरतह खिउ करइ, देह सदा अनचारु ।
सुणि गोइम इसु लोभ का कहउ प्रयटु वियारु ।।१२।।

मूलह दुक्ख तणउ सनेहु,
सतु विसनह मूलु व कम्मह मूल आसउ भणिज्जइ ।
जिव इदिय मूलु मनु, नरय मूलु हिंस्या कहिज्जइ ।
जगु विस्वासे कपट मति परजिय वछइ दोहु ।
सुणि गोइम परमारथु यहु, पापह मूलु सुलोहु ।।१३।।

गाथा

भमयउ अनादि काले, चहु गति मझम्मि जीवु वहु जोनी ।
वसि करि न तेनि सक्कियउ, यह दारणु लोभ प्रचडु ।।१४।।

दोहडा

दारणु लोभ प्रचंडु यहु, फिरि फिरि वहु दुख दीय ।
व्यापि रह्या वलि अप्पइ, लख चउरासी जीय ।।१५।।

पद्धडी छद

यहु व्यापि रह्या सहि जीय जत, करि विकट बुद्धि परमय हडत ।
करि छलु पयसै धूरत जेंव, परपचु करिवि जगु मुसइ एव ।।१६।।

सकुडइ मुडइ वढलु कराइ, वगजेउ रहइ लिव ध्यान लाइ ।
ठग जेंव ठगौ लिय सीसि पाइ, परचित्त विस्वासै विविह भाइ ।।१७।।

मजार जेउ आसण वहुत्त, सो करइ जु करणउ नाहि जुत्त ।
जे वे सजेव करि विविह ताल, मति यावइ सुख दे वृद्धवाल ।।१८।।

लोभ का साम्राज्य—

आपणौं न औसरि जाइ चुविक, तम जेंउ रहइ तलि दीव लुक्कि ।
जव देखइ डिगतह जोति तासु, तव पसरि करइ अप्पणु प्रगासु ।।१९।।

जो करइ कुमति तव अण विचार, जिसु सागर जिउं लहरी अपार ।
इकि चडहि इक्कि उत्तरिवि जाहि, वहु घाट घडइ नित हीयै माहि ।।२०।।

परपचु करैंइ जहरैं जगत्तु, पर अप्पु न देखइ सत्तु मित्तु ।
खिण ही अयासि खिण ही पयालि, खिण ही म्रित मडलि रग तालि ।।२१।।

जिव तेल वु द जल माहि पडाइ, सा पसरि रहे भाजनह छाइ ।
तिव लोभु करइ राई सचारु, प्रगटावै जगि मे रह विथारु ।।२२।।

जो अघट घाट दुघट फिराइ, जो लगड जेव लग्गत धाइ ।
इकि सवणि लोभि लग्गिय कुरग, देहि जीउ आइ पारधि निसग ।।२३।।

पत्त ग नयण लोभिहि मुलाहि, कचण रसि दीपग महि पडाहि ।
इक घाणि लोभि मधुकर भमति, तनु केवइ कटइ वेधियति ।।२४।।

जिह लोभि मछ जल महि फिराहि, ते लग्गि पणव अप्पणु गमहि ।
रसि काम लोभि गयवर भमति, मद अंघसि वध वधन सहति ।।२५।।

इक इक्कइ इदिय तणे सुक्ख, तिन लोभि दिखाए विविह दुक्ख ।
पच इदिय लोभिहि तिन रखुत्त, करि जनम मरण ते नर विगुत्त ।।२६।।

जगमसि तपी जोगी प्रचड, ते लोभी भमाए भमहि खड ।
इद्राधिदेव वहु लोभ मत्ति, ते वछहि मन महि मणुवगत्ति ।।२७।।

चक्कवै महिय हुइ इक्क छत्ति, सुर पदइ वछहि सदा चित्ति ।
राइ राणो रावत मडलीय, इनि लोभि वसी के के न कीय ।।२८।।

वण मज्झि मुनीसर जे वसहि, सिव रयणी लोभु तिन हियइ माहि ।
इकि लोभि लग्गि पर भूमि जाहि, पर करहि सेव जीउ जीउ भणाहि ।।२९।।

सकुलीणो निकुलीणह दुवारि, लेहि लोभ डिगाए करु पसारि ।
वसि लोभि न सुणही धम्मु कानि, निसि दिवसि फिरहि आरत्त ध्यानि ।।३०।।

ए कीट पडे लोभिहि भमाहि, सचहि सु अन्नु ले धरणि माहि ।
ले वनरसु हुँहै लोभि रत्तु मखिकासु मधु सचइ वहुत्त ॥३१॥
ते क्रियन पडिय लोभह मझारि, धनु संचहि ले धरणी भडारि ।
जे दानि धम्मि नहु देहि खाहि, देखत न उठि हाथे छाडि जाहि ॥३२॥

गाथा

जहि हत्थ झाडिकि वणं, धनु सचहि सुलहि करिवि भंडारे ।
तरहि कँव ससारे, मनु वुद्धि ऐ रसी जाह ॥३३॥

रड

वसइ जिन्ह मनि इग्यि नित बुद्धि,
धनु विढवहि डहकि जगु, सुगुर वचन चितिहि न भावइ ।
मे मे में करइ सुणत धम्मु सिरि सूलु आवइ ॥
अप्पणु चित्तु न रंजही जणु रजावहि लोइ ।
लोभि वियापे जेइ नर तिन्ह मति अैसी होइ ॥३४॥

गाथा

तिन्ह होइ डसिय मंत्ते, चित्ते अय मलिन मुहुर मुहि वाणी ।
विदहि पुन्न न पावो, वसकियो लोभि ते पुरिष ॥३५॥

मडिल्ल

इसउ लोभु काया गढ अंतरि, रयणि दिवस सतवइ निरतरि ।
करइ ढीठु अप्पणु वलु मंडइ, लज्या न्यानु सीलु कुल खडइ ॥३६॥

रड

कोहु माया मानु परचड,
तिन्ह मज्झिहि राउ यहु इसु सहाइ तिन्निउ उपज्जहि ।
यहु तिव तिव विप्फुरइ, उइ तेय वलु अविकु सज्जहि ॥
यहु चहु महि कारणु करणु, अव घट घाट फिरतु ।
एक लोभ विणु वसि किए, चौगय जीउ भमंतु ॥३७॥

जासु तीवइ प्रीति अप्रीति,
ते जग माहि जाणि यह, जाणिउ रागु तिनि प्रीति नारि ।
अप्रीति हु दोष हव, दहू कलाप परगट पसारि ॥
अज्ञा फेरी आपणी, घटि घटि रहे समाइ ।
इन्ह दहु वसि करि ना सकै, ता जीउ नरकि हि जाइ ॥३८॥

दोहा

सप्प उरहु जैसे गरल, उपने विष सजुत्त ।
तैसे जाणहु लोभके, राग दोष दुइ पुत्त ।।३९।।

पद्धडो छंद

दुइ राग दोष तिसु लोभ पुत्त ।
जाणहि प्रगट ससारि घुत्त ।।
जह मित्त तणु तह राग रगु ।
जह सत्त तहा दोपह प्रसगु ।।४०।।
जह रागु तहा सरलउ सहाउ ।
जह दोपु तहा किछु वक्र भाउ ।।
जह रागु तह मनह प्रवाणि ।
जह दोषु तहा अपमानु जाणि ।।४१।।
जह रागु तहा तह गुणहि थुत्ति ।
जह दोपु तहा तह छिद्र चित्ति ।।
जह रागु तहा तह पतिपत्तिट्ठ ।
जह दोपु तहा तह काल दिट्ठ ।।४२।।
ए दोनउ रहिय वियापि लोइ ।
इन्ह वाझुन दीसइ महिय कोइ ।।
नित हियइ सिसलहि राग दोष ।
वट वाडे दारण मग्गह मोख ।।४३।।

रड

पुत्त ऐसिय लोभ धरि दोइ ।
चलु मडिउ अप्पणउ, नाद कालि जिन्ह दुक्ख दीयउ ।
इद जालु दिखाइ करि, वसी भूत्त सहु लोगु कीयउ ।।
जोगी जगम जतिय मुनि सभि रक्खे लिवलाइ ।
अटल न टाले जे टलहि फिरि फिरि लग्गहि धाइ ।।४४।।

लोभ का प्रभाव—

लोभु राजउ रहिउ जगु व्यापि ।
चउरासी लखमहि जथ जोउ पुणि तत्थ सोइय ।
जे देखउ सोचि करि तासु वाझु नहु अत्थि कोइय ।।

विकट बुद्धि जिनि सहि मुसिय घाले कम्मह फंध ।
लोभ लहरि जिन्ह कहु चडिय, दीसहि ते नर अंध ।।४५।।

दोहा

मणुव तिजचह नर सुरह, हीडावै गति चारि ।
वीरु भणइ गोइम निसुणि, लोमु बुरा ससारि ।।४६।।

रड

गौतम स्वामी का प्रश्न—

कहिउ स्वामी लोमु वलिवडु ।।
तव पुछिउ गोइमिहि इसु, समत्त गय जिउ गुजारहि ।
इसु तनिड तउ वलु, को समथु कहुइ सु विदारइ ।।
कवण बुद्धि मनि सोचियइ कीजइ कवण उपाउ ।
किसु पौरिषि यहु जीतियइ सरवनि कहहु सभाइ ।।४७।।

भगवान महावीर का उत्तर—

सुणहु गोइम कहइ जिणणाहु ।
यहु सासणु विम्मलइ, सुणत धम्मु भव वध तुट्टहि ।
अति सूखिम भेद सुणि, मनि सदेह खिण माहि मिट्टहि ।।
काल अनतिहि ज्ञान यहि, कहियउ आदि अनादि ।
लोमु दुसहु इव जित्तयइ, सतोषह परसादि ।।४८।।

कहहु उपजाइ कह सतोषु ।
कह वासइ थानि उहु, किस सहाइ वलु इसउ मडइ ।
क्या पौरिषु सैनु तिसु, कासु बुद्धि लोभह विहडइ ।।
जोरु सखाई भवियहुइ पयडावै यहु मोखु ।
गोइम पुछइ जिण कहहु किसउ सुभटु सतोषु ।।४९।।

संतोष के गुण—

सहजि उप्पजइ चिति सतोषु ।।
सो निमसइ सत्तपुरि, जिण सहाय वलु करइ इत्तउ ।
गुण पौरिषु सैनु धम्मु, ज्ञान बुद्धि लोभह जित्तइ ।।
होति सखाई भवियहुइ टालइ दुरगति दोषु ।
सुणि गोइम सरवनि कहउ, इसउ सूरु संतोषु ।।५०।।

रासा छंद

इसउ सूरु सतोपु जिनिहि घट महि कियउ ।
सक्रयत्थउ तिन पुरिसह, ससारिहि जियउ ।।
संतोषिहि जे तिपते ते चिरु नदियहि ।
देवह जिउ ते माणुस महियलि वंदियहि ।।५१।।

जगमहि तिन्ह की लीह जि सतोषिहि रम्मिय ।
पाप पटल अधारसि अतर गति दम्मिय ।।
राग दोष मन मज्झि न खिणु इकु आणियइ ।
सत्तु चित्तु चित्त तरि समकरि जाणियइ ।।५२।।

जिन्ह सतोषु सखाई तिन्ह नित चडइ कला ।
नाद कालि सतोष करइ जीयह कुसला ।।
दिनकरु यहु सतोषु विगासइ हिद कमला ।
सुरतरु यहु सतोपु कि वछित देइ फला ।।५३।।

चितामणि सतोपु कि चित चितत्तु फुरइ ।
कामधेनु संतोषु कि सव कज्जह सरइ ।।
पारसु यहु सतोषु कि परसिहि दुक्खु मिटइ ।
यहु कुठारु सतोपु कि पापह जड कटइ ।।५४।।

रयणायरु सतोषु कि रतनह रासि निधि ।
जिसु पसाइ सडहि मनोरथ सकल विधि ।।
जे सतोषि समाणे तिन्ह भउ सव्भु गयउ ।
ध्रूमरेह जिउ तिन्ह मनु नितु निश्चल भयउ ।।५५।।

जिन्हहि राउ सतोषु सुतुट्ठउ भाउ धरि ।
पर रवणी पर दव्वि न छीपहि तेइ हरि ।।
कूडु कपटु परपचु सु चिंत्ति न लेखिहहि ।
तिणु कंचणु मणि लुद्धसि समकरि देखिहहि ।।५६।।

पियउ अमिय सतोषु तिन्हहि नित महा सुखु ।
लहिउ अमरपद ठाणु गया परभमण दुखु ।।
राइहस जिउ नीर खीर गुण उद्धरइ ।
धम्म अधम्म परिख तेव हीयैं करइ ।।५७।।

आवै सुहमति ध्यानु सुवुद्धि हीयैं भज्जइ ।
कलहि कलेसु कुध्यानु कुधुधि हियैं तजइ ।।

लेइ न किसही दोसु कि गुण सव्वह गहइ ।
पडइ न आरति जीउ सदा चेतनु रहइ ॥५८॥
जाहन वक्क परणाम होहि तिसु मरल गति ।
दृप्पजिउ निम्मलउ न, लगहिं मलण चिति ॥
सीस जिव जिन्ह पर किति सदा सीयलु रहइ ।
धवल जिव धरि कंधु गरव भारह सहइ ॥५९॥
सूरधीर वरवीर जिन्हहि संतोषु बलु ।
पुडयणि पति सरीरि न लिपइ दोष जलु ॥
इमउ अहै संतोगु गुणिहि वंनियै जिवा ।
सो लोभह खिउ करइ कहिउ सरवन्नि इवा ॥६०॥

रड

कहिउ सरवन्नि इसउ संतोषु ।
सो किज्जइ चित्ति दिढु जिमु पसाइ सभि सुख उपज्जहि ।
नहु आरति जीउ पडइ, रोर घोर दुख लख भज्जहि ॥
जिमु ते कल वडिम चडइ, होइ सकल जगि प्रीय ।
जिन्ह घटि यहु अवट्टी पिय पुन्न प्रिकिति ते जीय ॥६१॥

मडिल्ल

पुन्न प्रिकिति जिय सवणिहि सुणियहि ।
जै जै जै लोवहि महि भणियहि ॥
गोडम सिउ परवीणु पयंपिउ ।
इसउ संतोषु भुवप्पति जंपिउ ॥६२॥

चदाइणु छंदु

जंपियै एहु संतोषु भूवपति जासु ।
नारीय समाधि अत्यड थिति ॥
जे ससा सुदरी चित्ति हे आवए ।
जीउ तत्तखिणे वछियं पावए ॥६३॥

संतोष का परिवार—

सवरो पुत्तु सु पयडु जाणिज्जए ।
जासु ओलंवि ससारु तारिज्जए ॥
छेदि सो आसरै दूरि नै वारए ।
मुक्ति मझम्मिले हेल सचारए ॥६४॥

खंतियं तासु को लंगणां वज्जियं ।
दुज्जणं तेउ भंजेई पासंनिय ॥
कोह अगोगाह दंभति ते नरा ।
ताह संतोसए सोम सीयंकरा ॥६५॥
एहु कोट्टु सतोष राजा तणो ।
जासु पसाइ वज्झति दती मणो ।
तासु नैरिहि को दुहुना आवए ।
सो भडो लोभह खो जुग वावए ॥६६॥

दोहा

खो जुग वावड लोभ, कउए गुणहहि जिसु पाहिं ।
सो सतोषु मनि सगहहु, कहियहु तिहुं वणणाहि ॥६७॥

गाथा

कहियहु तिहु वणणाहो, जाणहु सतोषु एहु परणामो ।
गोइम चिंति दिढु करु, जिउ जित्तहि लोभु यहु दुसहु ॥६८॥
सुणि वीरवयण गोइमि, आणिउ सतोषु सूरु घट मज्झे ।
पज्जलिउ लोहु तंखि खिणि, मेले चउरगु सयनु अप्पणु ॥६९॥

रड

लोभ द्वारा आक्रमण—

चिंत्ति चमकिउ हियइ थरहरिउ ।
रोसाइणु तमकियउ, लेइ लहरि विषु मनिहि घोलई ।
रोमावलि उद्धसिय कालरू इहुइ भुवहं तोलइ ॥
दावानल जिउ पज्जलिउ नयण नि लाडिय चाडि ।
आजु सतोषह खिउ करउ जउ मूलहु उप्पाडि ॥७०॥

दोहा

लोभहि कीयउ सोचणउ हूवउ आरति घ्यानु ।
आइ मिल्या सिरु नाइ करि झूठु सबलु परधानु ॥७१॥

षट्पदु

लोभ की सेना—

आयउ झूठु पघानु मंतु तत्त खिणि कीयउ ।
मनु कोहू गरु दोहु मोहु इक युद्धउ थीयउ ॥

माया कलहि कलेसु थापु सतापु छदम दुखु ।
कम्म मिथ्या आसरउ आइ अद्धम्मि कियउ पखु ।।
कुविसनु कुसीलु कुमतु जुडिउ रागि दोषि आइरु लहिउ ।
अप्पणउ सयनु वलु देखि करि लोहुराउ तव गहगहिउ ।।७२।।

मडिल्ल

गह गहियउ तव लोहु चितंतरि,
वज्जिय कपट निसाण गहिय सरि ।
विषय तुरंगिहिं दियउ पलाणउ,
सतोषह दिसि कियउ पयाणउ ।।७३।।

आवत सुणिउ संतोष ततक्षिणि,
मनि आनदु कीयउ सुविचक्षिणि ।
तह ठइ सयनह पति सतु आवउ,
तिनि दलु अप्पणु वेगि बुलायउ ।।७४।।

गाथा

वुल्लायउ दलु अप्पणु, हरषिउ संतोषु सुरु वहु भाए ।
जिसु ढार सहस अग, सो मिलियउ सीलु भडु प्राइ ।।७५।।

गीतिका छन्द

संतोष की सेना—

आईयो सीलु सुद्धम्मु समकतु न्यानु चारितु सँवरो ।
वैरागु तपु करुणा महाव्रत खिमा चिति संजमु थिरु ।।
अज्जउ सुमद्दउ मुत्ति उपसमु द्धम्मु सो आकिंचणो ।
इव मेलि दलु संतोष राजा लोभ सिउ मडइ रणो ।।७६।।

सासणिहि जय जयकारु हूवउ भग्गि मिथ्याति दडे ।
नीसाण सुत वज्जिय महाधुनि मनिहि कइर लडे खडे ।।
केसरिय जीव गज्जत वलु करि चित्ति जिसु सासण गुणो ।
इव मेलि दलु सतोषु राजा लोभ सिउ मडइ रणो ।।७७।।

गज ढल्ल जोग अचल गुडिय तत्त हयहीसारहै ।
वड फरमि पचिउ सुमति जुट्टहि विनि ध्यान पचारहे ।।
अति सवल सर आगम्म छुट्टहि असणि जणु पावस घणो ।
इव मेलि दलु सतोषु राजा लोभ सिउ मडइ रणो ।।७८।।

सा णाहु सीलु सुपहिरि अगिहि कु तु रतनत्रय किय।
झलहलइ हत्थि विवेक असिवरु, छत्त सिरि समकतु हियं।
इक पदम अरु तह सुकल लेस्या चवर ढाहि निसिदिणो।
इव मेलि दलु संतोषु राजा लोभ सिउ मडइ रणो ।।७९।।

षट्पदु

मडिउ रणु तिनि सुभटि सैनु समु अप्पणु सज्जिउ।
भाव खेतु तह रचिउ तुरु सुत आगमु वज्जिउ ।।
पच्चारचौ ध्यातमु पयड अप्पणु दल अतरि।
सूर हियै गह गहहि धसहि काइर चित्त तरि ।।
उतु दिसि सु लोभु छलु तक्क वैवलु पवरिषु णियतणि तुलइ।
सतोषु गरुव मेरह सरिसु इसुकि पवण भयणिणु खलइ ।।८०।।

गाथा

किं खलिहै भय पवण, गरुवउ सतोषु मेर सरि अटलं।
चवरगु सयनु गज्जिवि, रणि अगणि सूर वहु जुडिय ।।८१।।

तोटक छदु

रण अगणि जुट्टिय सूर नरा, तहि वज्जहि भेरि गहीर सर।
तह वोलिउ लोभु प्रचडु भडो, हुणि जाइ सतोष पयालि दडो ।।८२।।

फिदु लोभ न वोलहु गव्व करे, हुण कालु चडचा है तुम्ह सिरे।
तइ मूढ सतायउ सयल जणो, जह जाहिन छोडउ तथ खिणो ।।८३।।

युद्ध स्थल—

जह लोभु तहा थिरु लच्छिवहो, दरि सेवइ उब्भउ लोउ सहो।
जिव इट्ठिय चित्ति सातोषु करि, ते दीसहि भिष्य भयति परे ।।८४।।

जह लोभु तहा कहु कत्थ सुखो, निसि वासुरि जीउ सहंत दुखो।
सयतोषु जहा तह जोतिउसो, पय वदहि इद नरिंद तिसो ।।८५।।

सयतोष निवारहु गव्वु चित्ते, हउ व्यापि रह्या जगु मडि थिते।
हउ आदि अनादि जुगादि जुगे, सहि जीयसि जीयहि मुह्य लगे ।।८६।।

सुणु लोभ न कीजइ राडि घणी, सव थित्तिउ पाडउ तुम्ह तणी।
हउ तुज्झ विदारउ न्यानि खगे, सहि जीय पढावउ मुक्ति मगे ।।८७।।

हउ लोभु अचलु महा सुभटो, जगु मैं सहु जितिउ बंधि पटो ।
सभि सूर निवारउ तेजु मले, महु जित्तइ कौरगु समत्थु कले ।।८८।।

तइ अति सतायउ लोगु घणा, इव देक्खहु पौरिषु मुज्झ तणा ।
करि राडउ ग्वड विहड घडी, तर जेवउ पाडउ मूढ जडी ।।८९।।

मुणि इत्तउ कोपिउ लोभु मने, तव झूठु उठायउ वेगि तिने ।
सा आवउ सूरु उठाइ करो, सतिराइहि छेदिउ तासु सिरो ।।९०।।

तव वीडउ लीयउ मानि भडे, उठि चल्लिउ समुह गज्जि गुडे ।
वलु कीयउ मद्दवि अप्पु घणा, खुर खोजु गवायउ तामु तणा ।।९१।।

इव ढुक्कउ छोहु सुजोडि अणी, मनि सक न मानइ और तणी ।
तव उट्ठि महाव्रत लग्गु वले, खिण मज्झि सु घाल्यौ छोहु दले ।।९२।।
मडु उट्ठिउ मोहु प्रचंडु गजे, वलु पौरिष अप्पणु सैनु सजे ।
तव देखि विवेक चडया अटल, दह वट्ट किया सुइ भज्जि वलं ।।९३।।

वहु माय महाकरि रूप चली, महु अग्गइ सूरउ कवरगु वली ।
ढुक्कि पौरषु अज्जवि चोरि किया, तिसु जोति जयप्पतु वेगि लिया ।।९४।।

जव माय पडी रण मज्झि खले, तव आइय कक गजति वले ।
तव उट्ठि खिमा जव धाउ दिया, तिनि वेगिहि प्राणनि नासु किया ।।९५।।

अय जातु चल्या उठि घोर मते, तिसु सोचन आइया कपि चिते ।
उहु आवत हाक्या ज्ञानि जवं, गय प्राण पडया धर घूमि तवं ।।९६।।

मिथ्यातु सदा सहि जीय रिपो, रुद रूपि चडया सुडसज्जि अपो ।
समक्कतु उह्या उठि जोडि अणी, धरि धूलि मिल्या दिय चूर घणी ।।९७।।

कम्म अट्ठसि सज्जि चडे विषम, जरा छायउ अवरु रेणु भय ।
तपु भानु प्रगासिउ जाम दिसे, गय पाटि दिगंतरि मज्झि धुसे ।।९८।।

जगु व्यापि रह्या सवु आसरय, तिनि पौरिपु धीठिडता करय ।
जव संवरु गज्जिउ घोरि घट, उहु भाडि पिछोडि किया दवट ।।९९।।

रसि रागिहि वुत्तउ लोउ सहो, रण अगणि लग्गउ मडि गहो ।
वयरागु सुधायउ सज्जि करे, इव जुज्झि विताडचौ दुट्ठु अरे ।।१००।।

यहु दोषु जु छिद्द गहति पर, रण अगणि ढुक्क उडाहि सिरं ।
उठि ध्यानिय मुक्किय अग्गि घरा, खिण मज्झ जलायउ दोषु तिरा ।।१०१।।

कुमतिहि कुमारगि सयनु नडया, गय जेउ गजतउ आइ जुडया ।
खिरा मत्तु परकय सिप परे, तिसु हाकसु सांत पयट्टु धरे ।।१०२।।

परजीय कुसील जु कट्ठ करैं, रण मज्झि भिडतु न सक धरैं।
वभवत्त समीरणु धाइ लग, कुरविंद जि वागय पाटि दिग ॥१०३॥

दुखहु तजिट्ठ गय देण सलो, साइजु दिउ आइ निसक भलो।
परमा सुखु आयउ पूरि घट, उहु झाडि पिछोडि कियादवट ॥१०४॥

वहु जुज्झिय सूर पचारि घणे, उइ दीसहि लुटत मज्झि रणे।
किय दिनु रसातलि वीरवरा, किय तज्जि गए वलु मुक्कि धरा ॥१०५॥

राजा सतोष का आक्रमण—

अन दसण कद रहु तु जहा, इकि भज्जि पइट्ठिय जाइ तहा।
यहु पैतु सतोषह राइ चड्या, दलु दिट्ठ उ लोभिहि सैनु पड्या ॥१०६॥

रड

लोभि दिट्ठउ पडिउ दलु जाम,
तव धुणियउ सीसु कर, अध जेउ सुज्झिउ न अग्गउ।
जणु घेरिउ लहरि विषु, कच कचाइ उठि धाइ लग्गउ॥
करइ सु अकरणु आकतउ, किंपिन वुज्झइ पट्ठु।
जेरु चणउ अति उछलइ, तकि भड मनइ भट्ठु ॥१०७॥

गाथा

रोसा इणु थर हरिय, धरिय मन मझि रुद्द तिनि ध्यानो।
मुक्कइ चित्ति न मानो, अज्ञानो लोभु गज्जेइ ॥१०८॥

रगिक्का छदु

लोभु उठिउ अपणु गज्जि, मडिउ वलुनि लाजि।
चडिउ दुसहु साजि रोसिहि भरे, सिरि तणिड कपटु छतु॥
विषय खडगु कितु, छदमु फरियलितु।
समुह धरे गुण दसमैइ ठाणु लगु॥
जाइ रोक्यौ सूर मगु।
देइ वहुउ पसग्गु जगत अरे।
अैसे चडिउ लोभ विकटु, धूतइ धूरत नटु।
सतवइ प्राणह षटु पौरिपु करि ॥१०९॥

खिणु उठइ अणिय जुडि, खिणिहि चालइ मुडि।
खिणु गयजेव गुडि लागइ उठे, खिणु रहइ गगनु छाइ॥

खिणिह पयालि जाइ, खिणि मचलोइ आइ ।
चउइ हठे वाके चरत न जाणै कोड व्यापैइ सकल लोइ ।
अनेक रूपिहि होइ, जाइ सचरै ।।
अैसे चडिउ लोभ विकटु घूतइ धुरत नटु ।
सतवइ प्राणह षटु पौरिपु करै ।।११०।।

जिनि समि जिय लिवलाइ, घाले ततबुधि छाइ ।
राखे ए वडह काइ, देखत नडे ।
यह दीसइ ज परवथु, देसु सौनु राजु गथु ।
जाण्या करि आप तथु लालचि पडे ।।
जाकी लहरि अनत परि, घोरह सागर सरि ।
सकइ कवणु तरि ।
हियउध, अैसे चडिउ, लोभ विकटु, धूतउ धूरत नटु ।
सतवैइ प्राणह षटु पौरिपु करि ।।१११।।

जैसी कणिय पावक होइ, तिसहि न जाणइ कोइ ।
पडि तिण सगि होइ, कि कि न करै ।
तिसु तणिय विविहिरग, कौणु जाणै केते ढग ।
आगम लग विलंग खिणि हि फिरै ।
उहु अनतप सारै जाल, कर इक लोल पलाल ।
मूल पेड पत्त डाल, देइ उदरै ।
अैसे चडिउ लोभ विकटु, धूतइ धूरत नटु ।
सतवैइ प्राणह षटु पौरिपु करि ।।११२।।

षट्पदु

लोभ विकटु करि कपटु अमिटु, रोसाइणु चडियउ ।
लपटि दवटि नटि कुघटि झपटि झटि इव जगु नडियउ ।।
धरणि खंडि ब्रह्म डि गगनि पयालिहि धावइ ।
मीन कुरग पतग भ्रिग, मातंग सतावइ ।।
जो इंद मुणिंद फणिंद सुरचद सूर संमुह अडइ ।
उहु लडइ मुडइ खिणु गडवडइ, खिणु सुउट्ठि समुह जुडइ ।।११३।।

मडिल्ल

जब सुलोभि इत्तउ वलु कीयउ,
अधिकु कष्टु तिन्ह जीयह दीयउ ।

तव जिणउ नमतु लै चिति गज्जिउ,
राउ सतोपु इनह परि सज्जिउ ॥११४॥

रंगिका छंदु

इव साजिउ सतोष राउ, हुवउ धम्म सहाउ,
उठिउ मनिहि भाउ आनदु भय ।
गुण उत्तिम मिलिउ माणु, हूवउ जोग पहाणु,
आयउ सुकल भाणु, तिमरु गय ॥
जोति दिपइ केवल कल, मिटिय पटल मल,
हृदय कवल दल खिडियत दे ।
ऐसे गोइम विमलमति, जिण वच धारि चिति,
छदिय लोभह थिति चडिउ पदे ॥११५॥

तनिक पचु सजमु धारि, सतु दह परकारि.
तेरह विधि सहारि, चारितु लिय ।
तपु द्वादस भेदह जाणि, आपणु अगिहि आणि,
वैठउ गुणह ठाणि, उदोतु किय ॥
तम कुमतु गइउ यूसि, धौलिउ जगतु जसि,
जैसेउ पुन्निउ ससि, निसि सरदे ।
ऐसे गोइम विमल मति, जिणवच धारि चिति,
छेदिय लोभह थिति, चडिउ पदे ॥११६॥

जिन वधिय सकल दुट्ठ, परम पापनिघट्ठ,
करत जीयह कठ, रयणि दिणो ।
जगि हो तिय जिन्हहि आण, देतिय नमुति जाण,
नरय तणिय ठाण, भोगत घणे ॥
उइ आवत नरीहि जेइ, खडगु समुह लेइ,
सुपनिन दीसे तेइ अवरु के दे ।
ऐसे गोइम विमल मति, जिणवच धारि चिति,
छेदिय लोभहि थिति, चडिउ पदे ॥११७॥

लोभ पर विजय—

देव दुंदही वाजिय घण, सुर मुनि गहगण,
मिलिय भविकजण, हु वर लियं ।

अंग ग्यारह चौदह पुव्व, वियारे प्रगट सव्व,
मिथ्याती सुणत गव्व, मनि गलिय ।
जिसु वाणिय सकल पिय, चितिहि हरपु किय,
सतोषे उतिम जिय, धरमु वदे ।
ग्रैसे गोइम विमल मति, जिणवच धारि चिति ।
छेदिय लोभह थिति, चडिउ पदे ।।११८।।

षट्पदु

चडिउ सुपदि गोइमु लवधि तप वलि ग्रति गज्जिउ ।
उदउ हुवहु मासणि हि सयनु ग्रागमु मतु मज्जिउ ।।
हिसारहि हय वरतु सुभटु चारितु वलि जुट्टिउ ।
हाकि विमल मति वाणि कुमत दल दरडि दवट्टिउ ।।
वधिउ प्रचडु दुद्धरु सुमनु जिनि जगु सगलउ धुत्तियउ ।
जय तिलउ मिलिउ सतोप कहु, लोभहु सह इव जित्तियउ ।।११६।।

गाथा

जव जित्त दुसहु लोहु, कीयउ तव चित्त मझि ग्रानदे ।
हुव निकंट रज्जो गह गहियउ राउ सतोपु ।।१२०।।
सतोषुहु जय तिलउ जपिउ, हिसार नयर मंझ मे ।
जे सुणहि भविय इक्क मनि, ते पावहि वंछिय सुक्ख ।।१२१।।
सवति पनरइ इक्याण, भद्दवि सिय पक्खि पचमी दिवसे ।
सुक्कवारि स्वाति वृषे, जेउ तह जाणि बभ णामेण ।।१२२।।

रड

पढहि जे के सुद्ध भाएहि,
जे सिक्खहि सुद्ध लिखाव, सुद्ध ध्यानि जे सुणहि मनु धरि ।
ते उतिम नारि नर ग्रमर सुक्ख भोगवहि वहुप्परि ।।
यहु संतोषह जयतिलउ जंपिउ वल्हि सभाइ ।
मगलु चौविह संघ कहु, करइ वीरु जिणराइ ।।१२३।।

इति सतोष जयतिलकु समाप्ता ।।छ।।

□□□

३

नेमीस्वर का बारहमासा

राग वडहंसु

सावन मास—

ए रुति सावणे सावणि नेमि जिण गवणो न कीजै वे ।
सुणि सारेगा भाष दुसह तनु खिणु खिणु छीजैं वे ।
छीजति वाढी विरह व्यापित घुरइ घण मइ मतिया ।
सालूर मरि रड रडहि निसि भरि रयणि विज्जु खिवतिया ।
सुर गोपि यह सुह वसुह मडित मोर कुहकहि वणि वणि ।
विनवति राजुल सुणहु नेमि जिण गवउ ना करु सावणे ।।१।।

भाद्रपद मास—

ए भरि भाद्दवडै भादवि मारग जलहरे छाए वे ।
कोइ परभूंए परभुइ पथी हरि न जु लाये वे ।
नहु जु लाइ को पर भूमि पंथी किसु सनेहा जप वे ।
सरपच्च तनि मनमथ वीरूद्धिय कर लजिउ निसि कपवो ।
वग चडिय तर गिरि देख पावस मनि अनन्दु उपाइया ।
घरि आउ नेमि जिण चडिउ भाद्दउ मग्ग जलहर छाइया ।।२।।

आसोज मास—

ससि सोहाए सोहै ससिहरु आसूवा मासे वे ।
जल निरमल निरमल जलसरि कवल वेगासे वे ।
विगसति सरि सरि कवल कोमल भवर रुणु झुणकार हे ।
मयमतु मनमथु तनि वियापइ किवसु चित्त सहार हे ।
देखन्ति सेज अकेलि कामिणि मखहु नहु बोलै हसे ।
घरि आउ नेमि जिणद स्वामी आसूवै सोहै ससि ।।३।।

कार्तिक मास—

इनु कातेगे कातिग आगमु की ताडा पालै वे ।
चडि मडपे मडपि राजुल मग्गो नेहोलैं वे ।

मग्गो निहाले देवि राजुल नयण दह दिसि धावए ।
सर रसहि सारस रयणि भिन्नि दुसहु विरहु जगवए ।
कि वरहउ तुव विणु पेम लुद्धिय तरुणि जोवणि वालए ।
वाहुडहु नेमि जिण चडिउ कातिगु कियउ आगमु पालेए ।।४।।

मार्गशीर्ष मास—

ए इतु मवैरे मधिरियहु जीउ तरसए मेरा वे ।
तुझ कारणे कारणि यहु तनु तप ए घणेरा वे ।
तनु तपइ तिन्ह सुरि जनह कारणि जीउ जिसु गुणि लीणवो ।
जिसु आस अधिक उसास मेलउ रहइ चितु उडीणवो ।
सभलहि सभितिय के पियारे देखियह उग्गिम रित्तो ।
तरसति यहु मनु नेमि तुव विणु मगि मगिहरिहि रित्तो ।।५।।

पोस मास—

ए इतु पोहे हे पोहे सीउ सतावाए वाली वै ।
नव पल्लव पल्लव नववण सौ परजाली वै ।
परजालि नववण रच्यौ सकोडय,पडइ हिमु अति दारणो ।
वर खणि ते मनि किवसु धीरउ जिन्ह न सेज सहारणो ।
अथ दीह रयणि सतुछ वासुर कियर विरहु दक्खिणे ।
नेमिनाथ आउ सभालि को गुण सीउ पोहेहि अतिघणो ।।६।।

माघ मास—

ए इतु माघे हि माघिहि नेमि दया करे आऊ वे ।
तनि मैंगल मैंमल जेंउ घुरै अगे राऊ वे ।
अणरउ मइगल जेंव गज्जइ कुलह अक सिरक्खवो ।
अग्गाह दुसही विरह वेयण तोहि विणु किसु अक्खवो ।
क्या खवरि अवगुणु तइ विसारी लिखिन भूज पठावहो ।
कर दया नेमि जिणद स्वामी माधि इव घरि आवहो ।।७।।

फाल्गुण मास—

ए यहु फागुणो फागुणु निरगुणु माहो पियारे वै ।
जिनि तरवरे तरवर भाणि कीए खइ खारेवे ।
खइ खारढीखर किए तरवर पवणु महियलि भोलइ ।
उरि लाइ कर निसि गणउ तारे निंद नहु आवइ खिणो ।
घरि आउ नेमि जिणद स्वामी चडिउ फागुणु निरगुणो ।।८।।

चैत्र मास —

एइतु चैंतेहे चैतिहि नव मोरी वणराए वे ।
नव कलियहो कलियहि भवर मणक्किकयडे आए वे ।
अइ भवर नव कलियहि भणक्के नवइ पल्लव न तरे ।
नव चूव मजरि पिकय लुद्धिय करहि धुनि पचम सरे ।
झुल्लियउ मलय सुगध परमलु दक्खिणिहि पिय सवरिय ।
दरसाइ दरसणु नेमि स्वामी चैत्ति नव नर मौलिया ।।९।।

बशाख मास—

ए यहु आइयडा अव दुसहु सखी वइसाखो वे ।
जइवइ सेवा इसिजाइ सनेहडा आखोवे ।
आखो सनेहा जाइ वाइस अन्नु नीरु न भावए ।
दुइ नयण पावस करहि निसिदिनु चितु भरि भरि आव ए ।
फुट्टउ न ज बल्लम वियोनिहि हिया दुखि वज्जहि घडचा ।
वइसाखु तुव विणु सुणहु सखिए दुसहु अति दारणु चडचा ।।१०।।

जेठ मास—

एइतु जेठेहे जेठिहि लूव अनल झख वावेंवे ।
दिनि दिनकरो दिनकरु दिवसि रयणि ससेतावेंवे ।
ससि तवइ निसि परजलइ दिन रवि नीरु सरि सुकियघण ।
तडयडइ घर तडफडइ जलचर मिलिय अहि वदण वण ।
चच्चउ सिह डुक पूरहि मजलु अगु अधिकु दहावए ।
विललंति राजुलि फिरहु नेमि जिण लूव जेठिहि बावए ।।११।।

आषाढ मास—

एइतु षाढेहे षाढिहि नेमि न आईयडा प्यारा वे ।
मनु लागाडा लागा मनुवइ रोग हमारा वे ।
मनु लाइ इव वइरागि रजमति लियउ सजमु तखिये ।
अष्टौ भवतर नेहु निरजरि सहइ नव तेरह तणे ।
तिसु तरुणि काला गाउ माहा सिद्धि जिनिवर माइया ।
आषाढ चडिया भणइ बूचा नेमि मजउ न आईया ।।१२।।

।। इति बारहमासा समाप्ता ।।[1]



1 गुटका-दि० जैन मन्दिर नागदी बूंदी ।

४

चेतन पुद्गल धमाल

प्रस्तुत धमाल की पाण्डुलिपि दि० जैन मन्दिर नागदी, वू दी के उसी गुटके मे है जिसमे वूचराज के अन्य पाठो का सग्रह है। यह धमाल पत्र सख्या २२ से ४४ तक हैं। इसके लिपिकर्त्ता पाडे देवदासु हैं। लिपि सुन्दर एवं शुद्ध है। धमाल की पाण्डुलिपिया कामा एव अजमेर के भट्टारकीय भण्डार मे भी है लेकिन वे उपलब्ध नही हो सकी इसलिए वू दी वाली प्रति के आधार पर ही यहा पाठ दिया जा रहा है।

रागु दीपगु

मगलाचरण—

जिनि दीपगु घटि न्यानु करि, रज दीठी दश चारि।
कवि 'वल्ह पति' सुस्वामि के, णवउ चलण सिरु धारि ।।१।।

दीपगु इकु सरवन्नि जगि, जिनि दीपा ससारि।
जासु उदइ सहु भागिया, मिथ्या तिमरु अध्यारु ।।२।।

'जिण सासण' महि दीवडा, वल्ह पया नवकारु।
जासु पसाए तुम्हि तिरहु, सागरु यहु संसारु ।।३।।

भवियहु 'अरहतु' दीवडा, कै दीपगु सिद्धन्तु।
कै दीपगु 'निरग्रंथ' गुरु, जिस गुणि लहिउ न अतु ।।४।।

जैन धम्मु जिनि उद्धरचा, जुगला धम्मु निवारि।
सो रिसहेसरु पणवियइ, तारै भव संसारि ।।५।।

चेयन गुणवत जडस्यौ, संगु न कीजै।
जड गलइरु पूरइ, तिव तिव दूख सहीजै ।।६।।

जड सगु दुहेला, चिरु भमिया ससारो।
जिनि ममता छोडी, तिन पाया भवपारु ।।७।।

जित सत्तरायह तणा, मलिया मयण हतेउ ।
'अजितनाथ' पय पणमियहि आवइ कमह छेउ ।।८।।

चेयन सुणु निरगुण जड, सिउ सगति कीजइ ।
इसु जड परसादिहि, मोखह सुखु विलसीजै ।।९।।

जड सहइ परीसहु काटै करमह भारो ।
जिसु जड न सरवाई, तिसु उरवारु न पारो ।।१०।।

तनु साध्या मोखिहि गया, कीया करमह अंत ।
'संभव स्वामी' वंदियै, जिण सासणि जयवतु ।।
चेयण गुणवता जडायो सगु न कीजै ।।११।।

चौगति तरि सिउपुरि गया, तरि सायरु अथाहु ।
सोहउ ध्याऊं हियइ धरि, 'अभिनन्दनु' जिणणाहु ।।
चेयण सुणु निरगुण जड सिउ संगति कीजइ ।।१२।।

चहुसै धुणह पवाणु तनु, मेघरायह घरि चदु ।
नामु लित पातिग छडहि, वदहु 'सुमति' जिणद ।। चेयण गुण० ।।१३।।

चारितु चरि मोखिहि गया, माया मोहु निवारि ।
'पदमपह' जिण पद कवल, नवउ सदा सिरुधारि ।। चेयण सुणु० ।।१४।।

जिसु मुखु दीठे भवणा, तूटै करमह फासु ।
सो वंदहु तारण तरणु, स्वामी देउ 'सुपासु' ।। चेयण गुण० ।।१५।।

जिसु लछणि ससिहरु, 'अहइ राय' महसेणह तनु ।
चद्दप्पहु जिणु आठमा, सघ सयल सुपसन्नु ।। चेयण सुणु० ।।१६।।

चौदह रजु सहु लोउ, जिन दीठा घटि अवलोइ ।
"पुहपि जिणेसरु" पणमियइ, पुनरपि जनमु न होइ ।। चेयण गुण० ।।१७।।

राइ दिढह तनु कुलि कवलु, मुकति रिउरि हारु ।
"सियल जिणेसरु" ध्याईयै, वंछित सुख दातारु ।। चेयण सुणु० ।।१८।।

अस्सी धुणह पवाणु तनु, कचणु वन्नु सरीरु ।
हउ पणउ "श्रीयांस जिणु", स्वामी गुणिहि गहीरु ।। चेयण गुण० ।।१९।।

"वसुसेणह" घरि अवतारचा, छेद्या जिन भव कदु ।
"वासुपुइ" जिणु वंदियइ, जिसु वदइ सुर इंदु ।। चेयण सुणु० ।।२०।।

सहिय परीसह मोखिहि गया, मयण महाभड मोडि ।
"विमल जिणेसरु" 'विमलमति', हउ पणउ कर जोडि ।। चेयण गुण० ।।२१।।

आठ कंम्म जिनि निरजरे, चितुवइ रागि धरेइ ।
अन करण "श्री अनंत जिणु", भवियह वछित देइ ।। चेयण सुणु० ।।२२।।

संवरु करि जो गुण चडया, मलिया मयणह मानु ।
"धम्मनाथ" धम्मह निलउ, हो पणवउ धरि ध्यानु ।। चेयण गुण० ।।२३।।

गढि हथिनापुरि अवतरया, दिपई अगु कणकति ।
सो सघह मगलु करइ, "संति करणु जिणु" सति ।। चेयण सुणु० ।।२४।।

जासु धनुष पय तीस तनु, कुखि श्रीमति अवतारु ।
सो तुम्ह पापहि खिउ करइ, सवरहु "कुंथु" कुवारो ।। चेयण गुण० ।।२५।।

जो राता सिव रणिसिउं, सव्वइ कम्म निखेइ ।
आरति भंजणु "अरह जिणु", अजिय सु पदु हम देइ ।। चेयण सुणु० ।।२६।।

कुभ नरिंदह राइ तनु, मियलापुरि अवतारु ।
"मल्लि जिणेसरु" पणवियइ, आवागवणु निवारो ।। चेयण गुण० ।।२७।।

राजगिरिहि गढि अवतरया, सोहइ कज्जल वन्नु ।
"मुणि सुव्वउ जिणु" वीसमा, संघ सयल सुपसंनो ।। चेयण सुणु० ।।२८।।

जिसुका नाउ जपंति यहं, छीजइ कम्म कलेसु ।
विजयराइ घरि अवतरया, सवरहु "नमि सु जिणेसो" ।। चेयण गुण० ।।२९।।

चल्या सु नव भव नेहु, तजि पसु वचन सु विचारि ।
वदहु स्वामी "नेमि जिणु", जो सीझइ गिरनारि ।। चेयण सुणु० ।।३०।।

आव भोगि जिन सउ वरिस, कीया मुकति सिउ साथु ।
सकल मूरति हउ वंदिसिउ, स्वामी "पारसनाथ" ।। चेयण गुण० ।।३१।।

करि करुणा सुणु वीनती, तिभुवण तारण देव ।
"वीर जिणेसर" देहि मुझु, जनमि जनमि पद सेव ।। चेयण सुणु० ।।३२।।

अरहत सिद्धह चारजह. अरु अवझा पणमेहि ।
सव्वे साहु जे नमहि, ते ससार तरेहि ।। चेयण गुण० ।।३३।।

पच अमिष्ठी 'वल्ह कवि' ए पणमी धरि भाउ ।
चेतन पुद्गल दहूक, सादु विवादु सुणावो ।। चेयण सुणु० ।।३४।।

यह जड खिणिहि विघसिणी, ता सिउ संगु निवारु ।
चेतन सेती पिरति क्करु, जिउ पावहि भव पारो ।। चेयण गुण० ।।३५।।

वारु वारु तुम्ह सिउ कहउ, किता कु पूछहि ऊड ।
जिसु जड ते तूं गुणि चड्या, तामि पिरतिम तोडि ।। चेयण सुणु० ।।३६।।

वहुत्ती जूनिह ढाइ करि, ले नरकह महि देइ ।
यैसी जड यह मीत सूणि, मूढु विसासु करेइ ॥ चेयण गुण० ॥३७॥

सहीइ परीसह वीसदुइ, काटै करमह भारु ।
तिसु सिउ मूढ नविरचीयै, तारै भव ससारु ॥ चेयण सुणु० ॥३८॥

जिनि कारि जाणी आपणी, निश्चै वूडा सोइ ।
खीरु[1] पडचा विसहरि मुखे ताते क्या फलु होइ ॥ चेयण गुण० ॥३९॥

चेतनु चेतनि चालइ, कहुउत मानै रोसु ।
आपे वोलत सो फिरै, जडहि लगावइ दोसु ॥ चेयण सुणु० ॥४०॥

जेरूपतीना हेतु करि, सिडूवा गहि रे घाट ।
काजी पडिया दूध महि, हूवा सु वारह वाट ॥ चेयण गुण० ॥४१॥

छह रस भोयण विविहि परि, जो जड नित सीचेइ ।
इंदी होवहि पडबडी, तउ पर धम्मु चलेइ ॥ चेयण सुणु० ॥४२॥

सुणहु पियारे वीनती, देखहु चिति अवलोइ ।
वीजु जु कलिरि वीजीयै, ताते क्या फलु होइ ॥ चेयण गुण० ॥४३॥

चौवीस परिग्रहु पर तजै, पन्नह जोग धरेइ ।
जड परसादिहि गुणि चडै, सिव पुरि सुख भूचए ॥ चेयण सुणु० ॥४४॥

इसु जड तणा विसासु करि, जो मन भया निसंकु ।
काले[2] पासि वइट्ठियह, निश्चै चडइ कलंकु ॥ चेयण गुण० ॥४५॥

खाजै पीजै विलसियइ, फुरइत दीजै दानु ।
यहु लाहा ससार का, भावै जाणु न जाणो ॥ चेयण सुणु० ॥४६॥

मूरखु मूलु न चेतई, लाहै रह्या लुभाइ ।
अधा वाटै जेवडी, पाछइ वाछा खाइ ॥ चेयण गुण० ॥४७॥

पडवन्ना पालै सदा, उत्तिम यहु परवाणु ।
अकरि जा विसु सग्रही, तौ वन छूटै जाणु ॥ चेयण सुणु० ॥४८॥

इसै भरोसै जे रहे, चेते नाही जागि ।
डूवे तारु वापुडे, भेडह पूछडि लागि ॥ चेयण गुण० ॥४९॥

१. दूध ।
२ कोयला ।

पचै इंदी दडि करि, आपा आप्पुणु जोइ।
जिउ पावहि निरवाण पदु, चौगइ जनमुन होइ ।। चेयण सुणु० ।।५०।।
क्या जे इदी वसि कीई, क्या साध्या अप्पाणु।
इकु परमथु न जाणिया, किउ पावै निरवाणु ।। चेयण गुण० ।।५१।।
विणु करमह काटे आपणे जो नरु को सीभेइ।
ता कि सेणकु नरक महि, अजहु दुख भूचेए ।। चेयण सुणु० ।।५२।।
क्या जें सेणकु नरक महि, वहु वहु दुख भूचतु।
भव्व जीयहमहि सो गण्या, निश्चै इव सीझतो ।। चेयण गुण० ।।५३।।
काया राखहु जतनु करि, चडहु जेंव गुण ठाणि।
विणु मणुव जम्मिहो भवियणहु, गया न को निरवाणि ।। चेयण सुणु० ।।५४।।
हरतु परतु दोनउ गया, नाउर वारु न पारु।
जिनकरि जाणी आपणी, से डूबे काली धार ।। चेयण गुण० ।।५५।।
जिउ वैसदरु कट्ठ महि, तिल महि तेलु भिजेंउ।
आदि अनादि हि जाणियै, चेतन पुद्गल एव ।। चेयण सुणु० ।।५६।।
लेहि वैसदरु कट्ठ तजि, लेहि तेल खलि राडि।
चेतहि चेतनु मेलियै, पुदगलु परहर वालि ।।चेयण गुण० ।।५७।।
वालत्तण की वालही, गुणहि न पूजै कोई।
सा काया किव निंदियै, जिसहु परम पदु होइ ।। चेयण सुणु० ।।५८।।
काया कर जलु अजुली, जतनु करतिहि जाइ।
उत्तिमु विरता नित रहै, मूरिखु इमु पतियाए ।। चेयण गुण० ।।५९।।
मनका हठु सवु कोइ करइ, चितु वसि करइ न कोइ।
चडि सिखर हु जव खडहडै, तवरु विगुचणि होइ ।। चेयण सुणु० ।।६०।।
सिखर हु मूलि न खडहडै, जिण सासण आधारु।
सूलि ऊपरि सीझिया, चोरि जप्पा नवकारु ।। चेयण गुण० ।।६१।।
उइ साधण परिणाम उइ, कालमि उइ थावोर।
इव साध फिरहि सहि डोलते, तदि सीझै थे चोर ।। चेयण सुणु० ।।६२।।
साधु न डोलइ मूलि हरि, जिसु महि ज्ञानु रतन्नु।
तेरह विधि चारितु धरै, पुद्गल जाणइ अन्नु ।। चेयण गुण० ।।६३।।
पुद्गलु अन्नु न जाणियहु, देखहु मनि विवपाइ।
किरिया सजमु ता चलै, जा पुद्गल होइ सखाए ।। चेयण सुणु० ।।६४।।

जिण पूजा सम्मत्त गुरु, साहामी सिउ नेहु ।
इन्ह सेवतिहि सीजीयैं, नाही अचिरजु एहु ॥ चेयण गुण० ॥६५॥

जिसु सगि रूलतह जम्मु गया, एको सुखु नहु लाधु ।
लोभी जीउ पतग जिउ, फिर फिर मूरख दाधो ॥ चेयण सुणु० ॥६६॥

डाइणि मतु अफीम रसु, सिखिन छोडणु जाइ ।
को को कवणु न मोहिया, काया ढवली लाइ ॥ चेयण गुण० ॥६७॥

जो जो ढवली लाइया, सोडविया गवारु ।
सापु पिटारै पालिया, तिनिक्या कीया उपगारो ॥ चेयण सुणु० ॥६८॥

जोखिणु काया वसि करहि, इदी रहणु न जाइ ।
तजि तपु ससारिहि रूलहि, पाछै लोक हसाए ॥ चेयण गुण० ॥६९॥

ते तप तिहि कहु किव खलहि. जिन्हि जीत्या ससारु ।
सत्तु मित्तु सम करि जाणिया, साध्या सजम भारो ॥ चेयण सुणु० ॥७०॥

पहिला आपणु देख कसि, लेहि सजमु भारु ।
जे ता देखहि ओढणा, तेता पाव पसारो ॥ चेयण गुण० ॥७१॥

भला करतिहि मीत सुणि, जे हुइ वुरहा जाणि ।
तौ भी भला न छोडियैं, उत्तमु यहु परवाणु ॥ चेयण सुणु० ॥७२॥

भला भला सहु को कहै, मरमु न जाणै कोइ ।
काया खोई मीतरे, भला न किसही होए ॥ चेयण गुण० ॥७३॥

हाडह केरा पजरी, धरिया चम्मिहि छाइ ।
वहु नरकिहि सो पूरिया, मूरिख रहिउ लुभाए ॥ चेयण सुणु० ॥७४॥

जिम तरु आपणु धूप सहि, अवरह छाह कराइ ।
तिउ इसु काया सगते, जीयडा मोखिहि जाए ॥ चेयण गुण० ॥७५॥

काया नीचु कुसगडा, वैसदर सरि जोइ ।
ताता पकडै जलिमरै, सीलइ काला होइ ॥ चेयण सुणु० ॥७६॥

जिसु विणु खिणु इकु ना सरै, भाव लियैं जिसु लागि ।
जे घर पुर पट्टण दहै, ता धरि कीजइ आगि ॥ चेयण गुण० ॥७७॥

काइ सराहहि चेनहि, पुद्गलु घालहि राडि ।
खेतु विसो अविणा सरु, जिसुकी सगती वाडी ॥ चेयण सुणु० ॥७८॥

वेस्वानेहु कसु भरगु, अर जल उप्परि कार ।
इसासु पुद्गल मीत सुणि, विहडत होइ न वार ॥ चेयण गुण० ॥७९॥

जिउ ससि मडणु रयणिका, दिनका मडणु भाणु ।
तिम चेतन का मंडणा, यहु पुदगलु तूं जणि ॥ चेयण सुणु० ॥८०॥

इसु काया कै सगते, यहु जीउ पडइ जजालि ।
हुई कचोला नीर कहु, कूटी जै घडियालि ॥ चेयण गुण० ॥८१॥

जल कहु निदइ जीयडा, पुदगलु घालइ राडि ।
खेतु भिसो अविणा सरु, जिसुकी सगती वाडि ॥ चेयण सुणु० ॥८२॥

काय कलेवरु वीस सुहु, जतनु करतिहि जाइ ।
जिव जिव पाचै तु वडी, तिव तिव अति कडवाइ ॥ चेयण गुण० ॥८३॥

जो परमलु हुई कुसम महि, सो किव कीजै अगि ।
पुदगल जीउ सलगनु तिव, इव भास्या…………… ॥ चेयण सुणु० ॥८४॥

फूलु मरइ परमलु जीवइ, तिसु जाणै सहु कोई ।
हंसु चलइ काया रहइ, किवरु वरावरि होइ ॥ चेयण गुण० ॥८५॥
कहा सकति सिव वाहरी, सकति विनसिउ काइं ।
पुद्गलु जीउ सलगनु तिव, वासु दुहु इकठाए ॥ चेयण सुणु० ॥८६॥
काया सगिहि जीयडा, राख्या करमिहि वधि ।
पडचा कपुरु जुल्ह सणमहि, गयवर वत्तणु गधि ॥ चेयण गुण० ॥८७॥
इस काया कै सगते, जाण्या उत्तिम धम्मु ।
मूरख सा किव निंदियै, किया सफलु जिनि जम्मु ॥ चेयण सुणु० ॥८८॥
कुजर कुथू आदि दे, असे पुद्गलि लीय ।
सगति तै नहु वधिए, जहा सुखी होइ जीय ॥ चेवण गुण० ॥८९॥
काया तारइ जीय कहु, सतु सजमु व्रत धार ।
जिउ वेडी सगि उत्तरै, सउमण लोहा पारि ॥ चेयण सुणु० ॥९०॥
जड वेणी पोहण तणी, इसा जाणि जिय चेतु ।
कोन तिरंता दीठु मइ, करि काया सु हेतु ॥ चेयण गुण० ॥९१॥
काया की निंदा करहि, आपुन देखहि जोइ ।
जिउ जिउ भीजइ कावली, तिउ तिउ भारी होइ ॥ चेयण सुणु० ॥९२॥
इसै भरोसै जे रहे, चेते नाही जागि ।
झूठें तारु वापुडे, भेडह पूछड लागि[1] ॥ चेयण गुण० ॥९३॥

१ यह पद्य पहिले ४९ संख्या पर भी आ गया है ।

तेतीस सागर वरष सुर, जिसु पसाइ सुख दीठ ।
तिसु जड सिउ इव राचियइ, जिउ कापडइ मजीठ ।। चेयण सुणु० ।।६४।।

तेतीस सागर दुख नरक महि, ते भी चित्ति चितारि ।
इसु काया के एह गुण, रे जीय देखु सुहियइ विचारि ।। चेयण गुण० ।।६५।।

तेतीस कोडा कोडि क्रम, पोतैं मोह निहाणु ।
ते सहि काटैं तपु सहै, काया यहु परवाणु ।। चेयण सुणु० ।।६६।।

काया कहु मुकलाइ करि, रह्या निचिंता सोइ ।
ते तपु डूवे लेइ करि, अजहू फिरहि निगोए ।। चेयण गुण० ।।६७।।

जिय विणु पुद्गल ना रहै, कहिया आदि अनादि ।
छह खड भोगे चक्कवै, काया कै परसादि ।। चेयण सुणु० ।।६८।।

देव नरय तियजच महि, अरु माणस गति चारि ।
जिसुका घाल्या तूं फिर्‌या, तिस सिउ हौस निवारि ।। चेयण गुण० ।।६६।।

तुझ कारणि वहु दुख सहै, इनि काया गुणवति ।
चेतन ए उपगार तुझ, छोडि चला इसु अति ।। चेयण सुणु० ।।१००।।

कासु पुकारउ किसु कहउ, हीयडे भीतरि डाहु ।
जे गुण होवहि गोरडी, तउव न छाडै ताहु ।। चेयण गुण० ।।१०१।।

मानु महतु लोगी कुजसु, अरु वडि माकलि माहि ।
पच रतन जिसु सगते, चेतन तू रुलहाहि ।। चेयण सुणु० ।।१०२।।

भला कहावै जगु मुसे सै, भगलु करे नट जेउ ।
जड कै सगिहि दिठु मै, घणा वुडता एव ।। चेयण गुण० ।।१०३।।

माणिकु भीता अति चडा, जा कचणु तुम्ह पाहि ।
ता लगु सोभा चेतनहि, जा लगु पुदगल माहि ।। चेयण सुणु० ।।१०४।।

यहुनि कलमलु जीवडा, मुकति सरूपी आथि ।
आपा आपु विटविया, इसु काया कै साथि ।। चेयण गुण० ।।१०५।।

मोती उपना सीप महि, विडिमा पावै लोइ ।
तिउ जिउ काया सगते, सिउपरि वासा होइ ।। चेयण सुणु० ।।१०६।।

जव लगु मोती सीप महि, तव लगु सभु गुण जाइ ।
जव लगु जीयडा सगि जड, तव लगु दुख सहाय ।। चेयण गुण० ।।१०७।।

रे चेतन तू तावला जा जड तुम्ह सगि होइ ।
जे मदु भाजनि गूजरी, खीरु कहै सबु कोए ।। चेयण सुणु० ।।१०८।।

चेतन तू नित ज्ञान मइ यहु नित अशुचि सरीरु ।
घालि गवाया कुंभ महि, गंगा केरा नीरु ।। चेयण गुण० ।।१०९।।

उतु जमि न्यानु अराधिया, कीया वरतु अभंगु ।
तिसु पुंनिहि तै पाईया, इसु काया मिउ सगु ।। चेयण सुणु० ११०।।

सा जड मूढ न सीचियै, जिसु फलु फूलु न पानु ।
सो सोना क्या फूकियै, जोरु कटावै कानु ।। चेयण गुण० ।।१११।।

जोवनु लछि सरीरु सुख, अरु कुलवती नारि ।
सुरगु इच्छाई पाईया, जिन्ह कै एसो चारो ।। चेयण सुणु० ।।११२।।

तू सात धातु नीदहि सदा, चितमहि करहि विसेपु ।
तिन्ह साथि हिय नित मरी, रे जिय सभलि देखु ।। चेयण गुण० ।।११३।।

आहारु मैथुना नीद जड, ए चारिउ जीय साथि ।
तेसठि सलाका आदि दे, इन्ह विणु कोइ न आथि ।। चेयण सुणु० ।।११४।।

ए चारिउ सगि ताम लगु, जा जीउ करमह माहि ।
छोडि करम जीउ मोखि गया, इनहु नेडा जाहि ।। चेयण गुण० ।।११५।।

कालु पच मारुद्द, यहु, चित्त न किसही ठाइ ।
इदी सुखु न मोखु हुइ, दोनउ खोवहि काए ।। चेयण सुणु० ।।११६।।

कालु पचमा क्या करै, जिन्ह समकतु आधारु ।
जदि कदि बोइ पुन्यात्मा, निश्चै पावहि पारु ।। चेयण गुण० ।।११७।।

राजु करता जे मुवा, ते भी राजु कराहि ।
भीख भमता जे मुवा, ते भीखडीय भमाहि ।। चेयण सुणु० ।।११८।।

तपु करि पावइ राज पदु, राजहु नरकुभि होइ ।
जिनि सुहु असुह निवारिया, सो वद्या तिहु लोए ।। चेयण गुण० ।।११९।।

काइ पिछोडहि थोथि कहु, जिकु कणु ए कुन होइ ।
जो रयणायरु सहु मथहि, मसका चडइ न तोए ।। चेयण सुणु० ।।१२०।।

कणुंता इकु सरवन्नि जगि, अवरु सभै रुपरालु ।
जिसु सेवत चौगय तणा, तूटै माया जालु ।। चेयण गुण० ।।१२१।।

चेतन काइ तडप्फडहि, कूडा करहि पसारु ।
जितु फलि सकहि न पहुचि करि, तिसुकी हवस निवारो ।। चेयण सुगु० ।।१२२ ।
काया किसियन आपणी, देखहु चिति अवलोइ ।
कूकरि वकी पूछडी, गा किम सीधी होइ ।। चेयण गुण० ।।१२३।।
भोगहि भोग जि इदपरि, भूपति सेवहि वारि ।
काया भीतरि आइकरि, सुख पाया संसारि ।। चेयण सुगु० ।।१२४।।
यहु सुखु जिय अविणासरु, दिनु दिनु छीजतु जाइ ।
जो जल सिखरहु खडहडै, सो किउ सिखरि चडाए ।। चेयण गुण० ।।१२५।।
यहु सजमु असिवर अणी, तिसु ऊपरि पगु देहि ।
रे जीय मूढ न जाणही, इव कहु किउ सीझेइ ।। चेयण सुगु० ।।१२६।।
असिवरु लागै तिन्हु कहु, जे विषया सुखि रत्तु ।
साधि संजमु हुव वज्ज मै, ते सुर लोइ पहुतो ।। चेयण गुण० ।।१२७।।
इसु काया परसादते, चेतन सोभा होइ ।
पचहु महि वाडिमा चडै, भला कहै सबु कोइ ।। चेयण सुगु० ।।१२८।।
भला कहावै जगु मुसै, भगलु करै नट जेउ ।
जड कै सगिहि दीठु मइ, घणा वूडता एव ।। चेयण गुण० ।।१२९।।
बहुता जूनि भमति यह, लही मुनिष की देह ।
तिस सिउ ऐसी पिरति करु, जिउ सिल ऊपरि रेह ।। चेयण सुगु० ।।१३०।।
सिलभि विणसै रेहसिउ, देहमि खिण महि जाइ ।
तिसु सिउ निश्चल पिरति करु, जोले दुख छोडाइ ।। चेयण गुण० ।।१३१।।
दुक्खहु मूलिन छूटइ, पडिया आरति भाणि ।
काया खोवइ आपणी, किउ पहुचे निरवाणि ।। चेयण सुगु० ।।१३२।।
उद्दिमु साहसु धीरु वलु, बुद्धि पराकमु जाणि ।
ए छह जिनि मनि दिढु किया, ते पहु चा निरवाणि ।।१३३।।
चेयन गुणवते जडसिउ सगु न कीजै ।
जड गलइरु पूरै, तिव तिव दूख सही जै ।
जड सगु दुहेला चिरु भमिया ससारो ।।

जिनि ममता छोडी तिनि पाया भव पारो ।
पाया सुतिनि भव पारु निश्चै सगु जड मक्काजिणो ।।
तेरह प्रकारि हि सुद्ध चारितु, धर्चा दिढु अप्पण मुणे ।
चहु गति तणा सहि दुख भाजहि, मुकति पथ लमंतिया ।।
तिसु साथि जड नहु सगु कीजै, सुणु चेतन गुण वंतिया ।।१३४।।

चेतन सुणु निरगुण जड सिउ सगति कीजै ।
इसु जड परसादिहि मोखह सुखु विलसीजै ।।
जड सहइ परीसह काटै करमह भारो ।
जिसु जड न सखाई तिसु उरवारु न पारो ।।
उरवारु पारु न होइ किछुहू रिदुइय कांइ गवावहे ।
इदिया सुखु न मोखु होवइ फिरि सुमनि पछितावहो ।।
सुरलोइ चकवति उच्च पदवी भोगतइ भोग्या घणा ।
तिसु साथि जड नित सगु कीजै सुण चेतन निरगुणा ।।१३५।।

दुख नरकि जि दीठे ते इव हीयइ सभाले ।
इसु जडकै सगते चेतन आपनु गाले ।।
परताषि विष वेली सीच्यह वया फलु होए ।
मधु विंद कए सुख तिन्ह लगि आपुन खोए ।।
ननु खोइ आपणु राखि दिढु करि नीर समकतु निश्चलो ।
जव लगै मदिरि कालु पावकु धम्मु का लाभे जलो ।।
धनु पुत्त मित्तु कलत्तु काया, अति नहु कोइ सखा ।
सभलहु इव चेतन पियारे, नरकि जे दीठे दुखा ।।१३६।।

जह पुहपु तह मधु जह गोरसु तह घीउ ।
जह काठ अगनि तह जह पुदगल तह जीउ ।।
मति मुगध सि भूली हढहि घरु घरु वारो ।
पाखडी जगु डहकहै, सकहि न आप उतारे ।।
ते सकहि आपुन तारि मूरिख, सकति काया खोवहे ।
चारितु लेकरि विषय पोषहि पक उरि मल धोवेहे ।।
सिव सकति सदा सलगनु जुगि जुगि मरमु नहु कि नही लघो ।
सभलहु इव चेतन पियारे पुहपु जह तह होइ मघो ।।१३७।।

५

नेमिनाथ बसंतु

अमृत अमुल उमउरै निमि जिण गढ गिरनारे ।
म्हारै मनि मधुकर तुह वसै सजम कुसुम मझारे ।
सखीय वसत सुहावौ दीसइ सौरठ देसो कोइल कुहकै मधुरसरे ।
सावणह प्रवेसो विवलसिरी महमसै भवरा रुणु झुणकारे ।।
गावहि गीत सुरासुर गंधप गढ गिरनारो ।
विजय पढहु जसु वाजइ आगम अविचल तालो ।
निमि जिण कीरति विलासिणि नचइ सुछन्द छदवालो ।
अभय भडार उघाडय पडइ संजम सिगारो ।
अट्ठारह सहि असील सहिलडा सरिसउ नेमि कवारो ।
न्यान कुसुम मह महकइ चारित चदन अगे ।
मुकति रमणि रगि रातउ निमि जिणु खेलइ फागो ।
सरस तवोल समाणाइ रालइ रग उगालो ।
समदविजय राइ लाडिलउ अपुर टस विसालो ।
नव रस रसियउ निमि जिणु नव रसु रहितु रसालो ।
सिद्धि विलासिणि भोल यो समदविजय रइ वालो ।
नेमि छयल त्रिभुवण छलिउ मलियो मालणि माणो ।
राजल देखत दिन्नरमे सजम सिरिय सुजाणो ।
जणु जागै तव्व सोवइ जागय सूतै लोग ।
मोह किवाड प्रजलै अनमखु नयण सजोग ।
सरस वडे गुण माडइ चुरि चुरि करइ अहारो ।
जाणु पराइ जगु झगडइ सिवदेको अलियारो ।
कुड ठाइन्द्र मै न्हाइजै पहिरिजइ निरमल चीरो ।
नेमि गधोदकु वदिजै निर्मल होइ सरीरो ।
चदन कपूर कुकु घसि चरचिजै सावल धीरो ।
अमल कमल सालि पूजि जै भव भव भजण वीरो ।
दवणउ मरवड सेवती सहदल पाडल मालो ।
मनह मनोरथ पूरवइ प्रभु पूज जइ त्रिकालो ।

नव नेवज रस गोरस पुज्जि जै त्रिभुवण माही ।
जनम जीवन फलु लाभइ रे निति तन होइ उछाहो ।
आरत्यो प्रभु कीजइ विमल कपूर प्रजाले ।
अमर मुकति मगु दीसई मोह महातमु जाले ।
कृस्नागुरु धूप धूपिजइ जिन तनु सहजि सुवासो ।
अमर रमणि रगि रमिजइ पाइजइ शिवपुर वासो ।
नव नारिंग कदली फल पुज्जि जै त्रिभुवण देवो ।
जनम जीवन फलु लाभइ होइ ससारह छेवो ।
काचीय कलीन विहसइ चोरा वाउ ।
भूलउ भवरा रुण भुण चचल छपल सहाउ ।
भमरु कमल रस रसियउ केतुकि कुसुम लुभाइ ।
वषण वेदु मूरिख सहइ राइ वधै न सुहाइ ।
साजन छयल तिस लहि जाहि नित नवल वसतु ।
सवम नवल परि विहसइ जाह नित रमणि हसन्तु ।
रामाइण रगि रातउ भार घरहि तु अयाणु ।
परमाहथि पथि भूलउ किउ पावहि गुण ठासो ।
अडली डाल डलामल अण खाधा फल खाये ।
वाल्हवि यरवण सूवडउ सखीयण वघणा जाइ ।
मूलसघ मुखमडण पदम नन्दि सुपसाइ ।
वील्ह वसतु जि गावइ से सुषि रलीय कराइ ।।

।। इति नेमिनाथ वसतु समाप्तो ।।



६

टंडाणा गीत

टंडाणा टंडाणा मेरे जीवडा, टंडाणा टंडाणावे ।
इहि ससारे दुख भडारे, क्या गुण देखि लुभाणावे ।।

जिनि ठगि ठगिया अनादि कालहि, भी तिन्ह जोगु पत्याणावे ।
पडचा कुमारगि मिथ्या सेवहि, मेटहि जिणि की आणावे ।।

पाप करहि पर जीव सताणे, होसी नरका ठाणावे वारा ।
केती वारह रकु कहाया, किती वारह राणावे ।।

समइ समइ सुह असुह जो वाघें, लागो होइ सताणावे ।
वज्र लेप वह खोली नाही, लवहि अवर अयाणावे ।।

ए वह भवि भवि चहुगति भीतरि, वाध्या करमह घाणावे ।
तेरह विधि तैं पालि न सकिया, चारितु धरि कृपाणावे ।।

केवल भाषित धरम अनुपमु, सो तुम चिति न सुहाणावे ।
ले सजम तैं जीति न सक्या, तीखे मनमथ वाणावे ।।

राग दोष दोइ वइरी तेरैं, देहि न सिवपुरि जाणावे ।
आठ महामद गज जिम गरजैं, तिन मिलि किया निताणावे ।।

मात पिता सुत सजन सरीरी, यहु सबु लोगि विडाणावे ।
रयणि पखि जिम तरवर वासैं, दस दिस दिवसि उडाणावे ।।

जम्मण मरण सहे दुख अनता, तौ नहुवउ सयाणावे ।
केते पुरिस निपु सिक लिंगिहि, के ते नाम धराणावे ।।

नट जिम भेष कीये वहुतेरे, तिन्हको कहइ प्रवाणावे ।
आपणु परु कारणि करि आरमु, तू पीडहि षट प्राणावे ।।

कोह मान माया लोभ सगहि, नितिहि रहै भरमाणावे ।
चेतनु राव निवल तइ कीयो, मनु मत्री सिउ लाणावे ।।

विषयह स्वारथ पर जिय वचहि, करि करि बुधि विनाणावे ।
छोडि समाधि महारस (अ)नूपम, मधुर बिंदु लपटाणावे ।।

आइ जरा जब गढ मैं पैसे जोवन करइ पयाणावे ।
औसर गुण तूटहि जिव धाणुष धण पीछै पछिताणावे ॥

करि उद्दिमु अप्पणु वलु मडै, भोगहु अमर विमाणावे ।
आश्रव छेदि गहौ निज संवरु, काटहु करम पुराणावे ॥

पाखिहि मासि नीरसु भोयणु, ले करि सेवउ जाणावे ।
समकति प्रोहणि दस विधि पूरहु निम्मलु धम्म किराणावे ॥

सुद्ध सरूप सहजि लिव निसिदिन, झावउ अंतरि झाणावे ।
जपति 'वूचा' जिम तुम्हि पावहु, वंछित सुख निखाणावे ॥

सुख निर्वाण निर्भय ढाण, सिव रमणी मस्तकि तिलय ।
आत्मप्रतिवुद्ध जमि कवि सुद्ध, वत्तीसो गुण पद निलय ॥

॥ इति टडाणा गीत समाप्ता[1] ॥



१. गुटका दि० जैन मन्दिर नागदी बूंदी ।

७

भुवनकीर्ति गीत

आजि वद्धाउ सुणहु सहेली, यहु मनु पदुमनु विघसइ जिमकलीए ।
गोट्ठि अनद नित कोटिहि सारिहि, सुहु गुरु सुहु गुरु वेदहि सुकरि रलीए ।।
करि रली वन्दह सखी सुहु गुरु लवधि गोइम सम सरै ।
जसु देखि दरसणु टलहि भवदुख, होइ नित नवनिधि घरै ।।
कर्पूर चन्दन अगर केसरि आणि भावन भावए ।
श्रीभुवनकीर्ति चरण प्रणमोहू, सखी आज वद्धावहो ।।१।।

तेरह विधि चारित प्रतिपालइ, दिनकर दिनकर जिम तपि सोहइए ।
सर्वज्ञि भासिउ धर्म सुणावै वाणी हो वाणी भव मनु मोहइए ।
मोहन्ति वाणी सदा भवि सुनु ग्रन्थ आगम भासए ।
षट् द्रव्य अरु पञ्चास्तिकाया सप्ततत्व पयासए ।।
वावीस परिसह सहइ अगिहु गरुव मति नित गुणनिधो ।
श्रीभुवनकीर्ति चरण पणमि सु चारितु तनु तेरह विधो ।।२।।

मूलगुणाह अठाइसइ धारइए मोहए मोहु महाभडु ताडियो ए ।
रतिपति तिणु दतिहि महिइउ पुणु कोवडुए कोवडुकरि तिहि रालीयो ए ।।
रालियो जिमि कोवड करिहि वनउ करि इम वोलइ ।
गुरु सियलि मेरह जिउ अजंगमु पवण भइ किम डोलए ।
जो पच विषय विरतु चित्तिहि कियउ खिउ कम्मह तणु ।
श्रीभुवनकीर्ति चरण प्रणमइ धरइ अठाइस मूलगुणु ।।३।।

दस लाक्षण धर्म निजु धारि कु सजमु भूसणु जिसु वनिए ।
सत्रु मित्रु जो सम किरि देखई गुरनिरगथु महामुनीए ।।
निरगथु गुरु मद अट्ठ परिहरि सवय जिय प्रतिपालए ।
मिथ्यात तम निर्द्धण दिन म जैणधर्म उजालए ।।
तेरेन्नव्रतह अखल चित्तहं कियउ सकयो जम्मु ।
श्रीभुवनकीर्ति चरण पणमउ धरइ दशलक्षिण धम्मु ।।४।।

सुर तरु सघ णलिउ चिंतामणि दुहिए दुहि ।
महोद्धा घरि घरि ए पच सवद वाजहि उछरगि हिए ।।
गावहि ए कामणि मधुर सरे अति मधुर सरि गावति कामणि ।
जिणह मन्दिर अवही अष्ट प्रकार हि करहि पूजा कुसममाल चढावहि ।।
बूचराज भणि श्री रत्नकीर्ति पाटिउ दयोसह गुणे ।
श्री भुवनकीर्ति आसीरवादहि सघु कलियो सुरतरो ।।

।। इति आचार्य श्रीभुवनकीर्ति गीत ।।



८

पार्श्वनाथ गीत

जाग सलौनडी ए सुरण एक वाता।
पार्श्व जिरणंद सिवा एहु मन राता।
राता यहु मन चरण जिरणवर वामादेवी नंदनो।
एक जगतगुरु जगनाथ वंदो, पुण्य का फल पावए।
जिन कमठ वल तप तेज हारचो, मन धर्यासि धरवणीए।
कवि वल्ह परस जिरणंद वदौ, जाग रयण सलौनीए ॥१॥
कुंकम चदन सवल करीजै, चउसर माल गले कुसम ठवीजे।
कुसमैं ठवीजै हार गुथित, न्हाण पूज करावइए।
एक जगत गुरु जगनाथ वदौ, पुण्य का फल पावए।
जिन अष्ट कर्म्म विदार क्षय करि, मन धरयासि धरवणीए।
कवि वल्ह परस जिरणेंद्र वंदौ, सवलि चदन कीजिए ॥२॥
त्रिभुवरणं तारण मुक्त नरेसो, सत फणतो णिकरे रहीया सेसौं।
रहीया सेसो सात फणि, अंत किवही न पाइया।
ध्याणिवइ कोडी फिरइ, निफकरि पुरुष डिढ चित लाइया।
घरि पुत्त सपइ लेइ लक्ष्मी, दुरति निकंदना।
कवि वल्ह परस जिरणद वंदइ, स्याम त्रिभुवन वंदना ॥३॥
जन्म वनारसे उतपते जासो, अलिवर विपम गढोन्यि निवासो।
लिया निवास थान अलवर, सघ आवइ वहु पुरे।
एक अग मंडित कनक कुडल, श्रवन मुख हीरे जडे।
दह पंच सहसउ वद तरेसठ, माघ सुदि तिथि वारसी।
कवि वल्ह परस जिरणंद वदौ जन्म लिया वनारसी ॥४॥[1]

॥ इति पार्श्वनाथ गीत समाप्तो ॥

□□□

---

१ प्रस्तुत पार्श्वनाथ गीत अभी एक गुटके में उपलब्ध हुआ है। गुटका आमेर शास्त्र भण्डार में २६२ संख्या वाला है। इसमे पार्श्वनाथ की स्तुति की गयी है। यह गीत संवत् १५६३ माघ सुदी १२ को लिखा गया था। कवि की अब तक उपलब्ध कृतियो मे यह प्राचीनतम कृति है।

६

राग वडहंसु

ए सखी मेरा मनु चपलु दसै दिसे ध्यावै वेहा ।
ए वहु पडियडा लोभ रसे खिणु सुभ ध्याने ना आवै वेहा ।।
आणै न खिणु सुभ ध्यानि लोभी पच सगिहि रात वो ।
मोहिया इनि ठगि मोहि धूरति विषु अमी करि जातवो ।
निगोद नर यह सहे वहु दुख कियो भ्रमणु घणेर वो ।
दस दिसिहि ध्यावै हरि न रहई सखी मनु मेरवो ।।१।।

एहउ वरजे रही हरि न सुणै अचरु चरै दिन रयणे वेहा ।
ए यहु मातडा आठमदे ततु न चाहीयडा नयणे वेहा ।
चाहीया तत्तु न न्यान नयणि हि सुमति चिति न धारिया ।
मिथ्याति पडिया नाद कालि हु जनमु एवइ हारिया ।
भुल्लिया तितु भव मझि सागरि घून ते जाण्या सही ।
सो अचरु चर इन सुणइ कहिया वरजिहउ तिसुकौ रही ।।२।।

एति तु निगुण सिवा चेतनो क्या घुलि रहिउ लुभाए वेहा ।
ए निरजनो पटल अजनि राख्या धूरतै छाए वेहा ।
छाइया धूरति पटल अंजनि राउ त्रिभुवन केरउ ।
दुख रोग सोग विजोग पजरि किया आइ वसेरउ ।
अप्पणउ वस्तु तजि हुवउ परवसि लछि धरि कायर जिव ।
घुल रह्या निसि दिनु सगुण चेतनु निगुण तिसुनारी सिवा ।।३।।

ए रयणत्तउ वर तो भजो सुण सुण जीय हमारै वेहा ।
ए सरवनि धम्मो पालिनि जो औगुण मिटहि तुम्हारे वेवा ।
तुम मेटहि अवगुण जीय सभलि धम्मो जो सरवनि कह्या ।
मनि वचनि काया जिन्हिहि पाल्या सासुता सुख तिन्ही लह्या ।
दुख जरा जम्मण मरण केरे अव भागा भवो ।
बूचराज कवि मजु जाय म्हारे वरतु यहु रयणत्तउ ।।४।।

× × ×

१०

राग घनाक्षरी

सुणिय पधानु मेरे जीयवे, की सुभ ध्यानि न आवहि ।
साचा धम्मु न पालिया फिरि फिरिता गति धावहि ।।
फिरि फिरि गति ध्याया सुख न पाया हुंढयाए उतपदा ।
इन्ह विखया सगिहि पया कु ढ गिहि काता आपुरि चदा ।।
सुह असुह कमह किसुह समइ तू जाणहि आपु कमावही ।
सुणिय पधानु मेरे जीयवे की सुभ ध्यानि न आवहि ।।१।। टेर

खुभिया पकज मोहनी सत्तरि कोडा कोडिवे ।
नलका सुक जिउ भासिया सक्या न वण छोडिवे ।।
नहु बंधण छोड उडिया लोडै करै कलाप रे ।
रसु रसणिहि चाख्या मूलू न राख्या कीए गते हि वसेरे ।।
ठगि ठगिया लोभे नडि मोहे जडिया घाल्या आपणु वोडिवे ।
खुभिया पकज मोहनी सत्तिरि कोडाकोडिवे ।।२।।

संपति सजन सरीरि सुत पेखि न मुल्ला समायवे ।
खेवट केरी ना वजिउ मिले सजोगिहि आइवे ।।
मिलिया संजोगिहिं इन्हही लोगिहि पुव्वहि पुन्न कमाणे ।
यहु रत्नु चिंतामणि कवडी कारणि खोउ न मूढ अयाणे ।।
पउरणु सनेह यहु सुखु एह मधुविंदु रस सायवे ।
सपति सजन सरीरि सुत पेखि न मुल्ला सभाइवे ।।३।।

अरहंत देउ निरगंथ गुरु केवल भाषित धम्मजी ।
जिनि यहु निजु करि जाणीया कीया सफलु तिन्ह जम्मुजी ।।
तिन्ह जमणु सहला गयान अहला जिनही समकतु जाता ।
दुरगति दुखु टाल्या सीयलु पाल्या मिथ्या जालि न फात्या ।।
जपति 'बूचा' कहइ सरवनि जीति सुमति मानहु भरमु जी ।
अरहतु देउ निरगथ गुरु केवल भाषित धम्मजी ।।४।।

× × ×

११

राग घनाक्षरी

पट मेरी का चोलरणा लालो लौग ग मोती का हारुवे लालो ।
पहिरि पटवर कामिनी लालो, नौ सती किया सिंगारु वे लालो ।।
सिगारु करि जिरण भवरिण आई, रहसु वहु मन महि घरणा ।
सभ ईछ पूनी भया आनदु देखि दरसनु तुम्ह तणा ।।
कप्पूर चदनि अगरि केसरि अगि चरची मेलया ।
सिरि संति जिरणवर करहु पूजा पहिर पाटम चोलया ।।१।।

राइ चवा अरु केवडा लालो मालवी मारुवा जाइवे लालो ।
कुद मचकु द अरु केवडा लालो, सेवती वहु महकाइ वे लालो ।।
महकाइ वहु सेवती पाडल राइवेलि सुहावरणी ।
सुनल सोवन कवल कवियरु नव निवली अति घरणी ।।
ले आउ मालणि गुथि नवसरू देखि विगसै हीयडा ।
माला चहोडै सीसि जिणवर राइ चवा केवडा ।।२।।

पच कलस भरि निरमल लालो, स्वामी न्हवरणु करेहि वे लालो ।
भावहो कामिनी भावना लालो, पुन्न तणा फलु लेहि वे लालो ।।
फलु लेहि भवियण पुन्न केरा, करि महोछा आवहो ।
नारिग तुरी जु जभीर नेवजु आणि सीसि चडावहो ।।
आरती लेकरि फिरहु आगै गहिर शब्द वजावहो ।
सिरि सत जिरणवर न्हवरण कीजै पच कलस भराव हो ।।३।।

गढु हथिनापुरु वदियै लालो, जिन्न स्वामी अवतारु वे लालो ।
सफलु जनमु यहु जारिणयै लालो, तेय मुकत्ति दातारु वे लालो ।।
मुकति दाता नयरिण दीठा रोगु सोगु निकदरणो ।
अवतारु अचला देवि कुक्षिहि राइ विससेण नदरणो ।।
जगदीस तू सुण भणइ वूचा' जनम दुखु दालिद हरो ।
सिरि सति जिणवरु देउ तूंठा थानु गढि हथिनापुरो ।।४।।

× × ×

१२

पद रागु गौडी

रग हो रंग हो रंगु करि जिणवरु ध्याईयै ।
रग हो ग्ग होइ सुरगसिउ मनु लाईयै ।।
लाईयै यहु मनुरग इस सिउ अवरु रगु पतगिया ।
घुलि रहइ जिउ मजीठ कपडे तेव जिण चतुरगिया ।।
जिव लगनु वस्तरु रगु तिवलगु इसहि कानर गाव हो ।
कवि 'वल्ह' लालचु छोडु झूठा रगि जिवरु ध्याव हो ।।१।।

रग हो रग हो पच महाव्रत पालियै ।
रग हो रग हो सुख अनत निहालियै ।।
निहालियहि सुख अनत जीयडे आठ मद जिनि खिउ करे ।
पचिंदिया दिढु लिया समकतु करम वधण निरजरे ।।
इय विषय विषयर नारि परधनु देखि व चित्त न टाल हो ।
'कवि वल्ह' लालचु छोडि झूठा रगि पच व्रत पाल हो ।।२।।

रग हो रग हो दिढु करि सीयलु राखीयै ।
रग हो रग हो रान वचन मनि भाखीयै ।।
भाखियै निज गुर ज्ञान वाणि रागु रोसु निवार हो ।
परहरहु मिथ्या करहु सवरु हीयइ समकतु धार हो ।।
वाईस प्रीसह सहहु अनुदिनु देहसिउ मडहु वलो ।
'कवि वल्ह' लालचु छोडि झूठा रंगु दिढु करि सीयलो ।।३।।

रग हो रग हो मुकति रवणी मनु लाईयै ।
रग हो रग हो भव ससारि न आइयै ।।
आइयै नहु ससारि सागरि जीय वहु दुखु पाइयै ।
जिसु वाझु चहुगति फिरया लोड सोइ मारगु ध्याइयैं ।।
तिमुवणह तारणु देउ अरहुंत तासु गुण निजु गाइयै ।
'कवि वल्ह' लालचु छोडि झूठा मुकति सिउ रगु लाइयै ।।४।।

× × ×

१३

रागु दीपु

न जाणौ तिसु वेल कौ वे चेतनु रह्या लुभाई वे लाल ।
चित हमारी राजे परहरी वे सुद्ध तरि लिवलाइ वे लाल ।।
अतरि लिवलागी आरति भागी जाण्या थूलु निराला ।
लोका अवलोक सभे जिनि दीपे हूवा सहजि उजाला ।।
निरमलु रसु पीवै जुगि जुगि जीवै जोतिहि जोति समाइवे ।
न जाण्यो तिसु वेल कौ वे चेतन रह्या लुभाइ वे लाल ।।१।।

जिथी रूपन गधरसो वै पयासु तिथि जाइ वे लाल ।
सरगुण विधानि गुण सिवावे किती हेति सभाइ वे लाल ।।
कित्ती सज्झाए चित्ति चाए आपनडै सुखि थीए ।
रग महि नित अछै कहि न गछइ अमिय महारस पीए ।।
जगु जाणइ सोवै उहु सभु जोवै उनमनि रच्यौ मनु लाइवे ।
जिथी रूपुन गधर सोवे पया मुतिथी तू जाइवे लाल ।।२।।

वालत्तण की वालहीवे ही रत्ती तै नालि वे लाल ।
दुख सुख कित्ती भोगवे वे सगि अनादी कालि वे लाल ।।
सगि नादी काले विधी वाले जोवन दैगै वारे ।
जे जे सुखभाणे आपी भाणे तेइ वचित्ति चितारे ।।
हम साथि विरच्या अवरे रच्या साकि न वाचा पालिवे ।
वालत्तण की वालही वे हौ रत्ती तै नालि वे लाल ।।३।।

जोथा सोई सोहु वावे क्या अखातै नालिवे लाल ।
पाली दरि जे वस रोवे जिवसर अदरि पालिवे लाल ।।
सर अदरि पाले देखु निहाले आगमि ध्यातमि कहिया ।
जो परम निरजणु सव दुख भजणु इव जोगी सरि लहिया ।।
जपति 'बूचा' गरु तरियै सागरु अैसी बुद्धि सभालिवे ।
जोथा सोई सो हुवावे क्या अखातै नालि वे लाल ।।४।।

× × ×

१४

रागु सूहड

वाले वलिवेहुं मावे मनु माया धुलि रात्तावे ।
वाले वलिवेहु मावे रहइ आठ मदि मात्तावे ।।
मदि हुढै माता धरमु न जाता जो सरवनि हि भास्या ।
धन पुत्त कलत्ता मित्ता हित्ता देखत हियै विगस्या ।।
सा विसरीके व नरकि जा भोगी वेदन दुसहु असाता ।
करुणा करुतारि कहै जन 'वूचा'.....................।
वाले वलिवेहु मावे मनु माया धुलि रातावे ।।१।।

वाले वलिवेहुं मावे सवल मिथ्यातिहि मोह्यावे ।
वाले वलिवेहु मावे पंच ठगिहि मिलि दोह्यावे ।।
ठगि पचिहिं दोह्या तै नहु जोह्या साचा समकतु सारो ।
चौगति हीडतह कष्ट सहतह मूलि न लद्धा पारो ।।
आगम सिद्ध तह वचन सुणतह तै नहु चितु पउ वोह्या ।
करुणा करुतारु कहै जन 'वूचा' ।
वाले वलिवेहुं मावे सवल मिथ्यातहि मोह्या वे ।।२।।

वाले वलिवेहुं मावे जी लोहा पारसु पर सैवे ।
वाले वलि हुं मावे ताहु कचणु दरसैवे ।।
हुइ कचणु दरसै सगति सरसै सुद्ध सरुउ पिछाणै ।
सहु अंदरु भीतरु एको हावै ता परमारथु सहु जाणै ।।
आनन्द रूपी नित रहइ निरतरि कवलु हियै महि हरसै ।
करुणा करुतारुक कहइ जन 'वूचा' ।
वाले वलिवेहु मावे जी लोहा पारसु परसैवे ।।३।।

वाले वलिवेहुं मावे सेवहु तिहुवण राया वे ।
वाले वलिवेहुं मावे जिनि साचा मग्गु दिखाया वे ।।
जिनि मग्गु दिखाया लिव मनु लाया तिसु अन्यामहि रहियै ।
अविहडु अविनासी जोति प्रकाशी थानु मुकनि जिय लहियै ।।
भौउ भाग्गउ ससारह अति घोरह पुनरपि जनमनु पाया ।
करुणा करुतारु कहइ जनु 'वूचा' ।
वाले वलिवेहुं मावे सेवहु तिहुवण रायावे ।।४।।

× × ×

१५

रागु विहागडा

ए मेरै अंगणे वाचवा वासो चवे कोवल कलियावा।
ए मइ गु थि पड्या वा नवसर सो नव सरकरि मने रलिया वा ।।
मनि रलिय करि गु थ्यासि नवसर जिणह पूज रचावहे।
सा सुता सुख सिउ मिलहि वछित जमु न चौगय पावहे ।।
जिसु देखि दरसणु टरहि भव दुख भाउ उपजै खिणु खिणो।
जि अदिजिण कारणि नि पाया राइचवा अगणो ।।१।।

ए तेरे चरणे वा चरणे वा चरणि मेरा मनो मोह्यावा।
ए दुइ लोयणे वा अनदोसो अनदोसो जम्मो जोह्यावा ।।
जोह्यासु जा मुख देव केरा अवरु नहु सेवउ किसो।
जिनि आठ मद निरजरे वलु करि हीयइ गुण वसिया तिसो ।।
व धिया तू इन करमि कटिनिहि भविउ जनम घणेरिया।
मोह्या सु इन चितु आदि जिणवर चलणि इन दुहु तेरिया ।।२।।

पिरतिइ नेहडी कीजै वेसा कीजै जिणवर भाषीवा।
ए पटु कायहा वा जाणी वा सो वाणी तिन्ह दिणे राखीवा ।।
तिन्ह राखि दिढु दे अभइन्हा परि करि नहि सैइकु खिणु।
जिम जाणि वेयण किया निय तण तिम सुवयण पर तिणु ।।
इकु रहहु समकति सदा निश्चलु जिम सुमूलु न छीजए।
हम कहउ आदि जिणद स्वामी पिरतिन्हा परि कीजए ।।३।।

ए चद निरमली वा वाणी वा सो वाणी भवियह पारो वा।
ए व्रत वारहा वा धारो वा सो धरि तरहुसए सारोवा ।।
मइसारु सागरु तरहु जिम जय पचमह वय दिढु रहो।
वाईस प्रीसह सहहु दुग्गम तेइ अहि निसि सहो ।।
सव्वु ईछ पुनीय भणइ 'बूचा' जनमु सफला जाणिया।
उलस्यात मनु सुणि आदि जिणवर चद निरमली वाणीया ।।४।।

× × ×

१६

१७

रागु आसावरी

दोहा :—सजमि प्रोहणि ना चडे भए अनत संसारि ।
स्वामी पारे उत्तरे हमि थके उरवारे ।। छंदु ।।

हम थाके उरवारि स्वामी पारेगए ।
समकतु सवलो नाहते नरदीन भये ।।
ते भये दीन जहीन समकति मग्गि जिणवर ते खडे ।
गति चारि चउरासिय लख महि जनमु करि ते रूले ।।
वहु वारि दरसनु भया स्वामी धम्मु पालि न सकिया ।
तुम्हि पारि पहुते वीर जिणवर असे पतणि थकिया ।।१।।

इक्क लडेन्नरु माहि देखे कष्ट वहो ।
आसत वेदन घोर सहारै कवण कहो ।।
कहु को सहारइ घोर वेदन ताइ तावा पावहे ।
करि लोह थंभसि अग्गिवंने आणि अगि लगावहे ।।
छेयणत भेयण डड मुद्गर तनु पहारे सल्लिया ।
दुख कष्ट देखे सुणहु स्वामी नर माहि इकलिया ।।२।।

सेव्या कुगुरु कुदेउ पडियाक धम्म मते ।
पुदगल प्रवतिन काल कीती वहुत थुते ।।
थुति वहल कीती सुणहु जीयडे आठ कम्मिहि तू नच्चा ।
वलु करि डिगाया पच धुत्तिहि एव मिथ्यातिहि पड्या ।।
नित चड्यो मान गयदि मय मति तत्तु चित्ति न वेहिया ।
पडिया कुद्धम्मिहि सुणहु जीयडे कुगुरु हेते सेविया ।।३।।

हम चातिगह पियास दरिसन नीर विणा ।
अवतनि ताप वुह्याउ सरवनि सरस घणा ।।
घण सरस सरवनि करुणा भवह पारु लघाव हो ।
दुख जरा जम्मण मरण केरे तिन्हह वेगि छुडाव हो ।।
कर जोडि 'वूचा' भणइ सेवगु मेटि जिण अतरि तम ।
तुम्ह नीर दरसण वाभु स्वामी त्रिसावहु चातिग हम ।।४।।

× × ×

गुटका सख्या

१७

गीत

निक्त निक्त नवली देहडी निक्त निक्त अवइ कम्मु ।
निक्त निक्त आवइ कुल अमल, निक्त निक्त माणसु जम्म ।
निक्त निक्त न माणसु जम्मु लाभइ, निक्त निक्त न वांछित पावइ ।
निक्त निक्त न अरि जु खेतु लभैं, निक्त न सुभ मति आवये ।
निक्त निक्त न सुभ गुरु होइ दसणु, धम्मु जो जप्पइ इहि ।
तो चेतना करि चेतन सभालउ, मणुव जम्म न निक्त निक्तो ।।१।।

जा लगु खिसियन जोवना. जा लगु जरा न जणावै ।
जा लगु तनु न सकोचिये, जा लगु रोग न आवै ।
आवइ न जा लगु रोगु अगइ, तेजु नहु जब लगु खलइ ।
जव्व लग न मति श्रुति भइ भिभल, जाम वल इन्द्री मिल्यो ।
जव लग न बिछुडे प्राण प्राकम ताम तन पसरी गुणो ।
जव्व लग न चेतनु चढिउ आसणु, जाम खिलियन जोवणो ।।२।।

राजु दुवारह झल्लरी, अहि निसि सबद सुणावै ।
सुभ असुभ दिनु जो घटइ, वहुडि न सो फिरि आवइ ।
आवइ न सो फिरि घटइ जो दिनु आउ इणि परि छीज्जइ ।
पौरसहु सम्माइक्कु व्रत सजमु खिणु विलम्ब न कीजिए ।
पच परमेष्ठी सदा प्रणमउ, हियइ निज्ज समिकितु धरहु ।
खिण खिण चितावइ, चेत चेतन राजद्वारह झल्लरी ।।३।।

जो सरवनि निज्ज भाखियो यो उत्तिम्म धम्मु पालहु ।
थावर जगमु जे जिया ते सम्मदिष्टि निहालउ ।
निहालि ते समदिष्टि जीवा, नत न्यानि ये कह्या ।
षट् द्रव्य अरु पचस्तिकाया, घृत घटवत भरि रह्या ।
इम भणइ बूचा व्रत्त उत्तिम तीनि रतन प्रकासिया ।
सुख लहउ वंछित सदा पालहु धरमु सरवनि भासिया ।।४।।

× × ×

गुटका सख्या मन्दिर वधीचन्द जी शास्त्र भण्डार—वेष्टन सख्या ६७१ ।

१८

गीत

ए मनुषि लियडा कवल विगस्सेवा ।
ए जिणु देखीयडा पापा पणस्सेवा ।।

सहि पाप पणासे जनम केरे देव दरसनु जोइया ।
सयल वछित इछ पुन्निय भावहा पति गोइया ।।
गह गहिय अगि नमाइ सु दरि रोरु कसमलु पिल्लिया ।
श्री वीर जिणवर भवणि आई सखी तनु मनु खिल्लिया ।।१।।

आजु दिनु घनो रयणि सुहाइवा ।
आई तउछरगि जिणह मदरि देव गुणवहु गाइया ।
ससारि सफला नमु किया धम्मसि मनु लाइया ।।
सद्धथराइ नरिंद नदनु दिपइ अति उज्जल तनी ।
श्री महावीरु जिणदु स्वामी दिवसु आजु जाण्या घनो ।।२।।

ए गु थि मालणे माल लिवाईया ।
एमइ भाव सिवा जिण चडाईया ।।
चडाइ जिणसिरि माल कुसमह, महमनिहि भावन भाईया ।
कप्पूरि चदनि अगरि केसरि जिणह पूज रचाईया ।।
त्रिभुवनाह नाथु अनाथु स्वामी मुकति पथ उजालणे ।
श्री वीर जिणवर भवण लाई माल गुथी मालणे ।।३।।

ए सिव अनत सुखादेण दातारावे ।
एनु म्ह चलणि मनो रचिउ हमारावे ।।
हम रचिउ मनु तुम्ह पवह पकज जरा मरणु निवारहो ।
दयाल इव किछु करहु करुणा भवह सागरु तारहो ।।
बूचराज कवि चहुगति निवारणु, सिद्धरवणी रातवो ।
श्री महावीरु जिणदु पणविउ अनत सिव सुख दातवो ।।४।।

× × ×

१९

गीत

धम्मो दुग्गय हरणो, करणो सह धम्म मगल मूल ।
जे भास्यो जिण वीरो, सो धम्मो नरह् पालोहु ॥१॥

जिसो सुकुल विनु सीलु भणिज्जै, रुपु तिसो विणु गुणह् थुणिजै ।
जिसो सु दीखै विणु पत्तह तरु, तिसो सु जिण धम्मह् विणु जगि नरु ।
हेमु तिसो वली विनु जाणहु, अत्थ हीणु जिउ कावु बखाणह ।
अर्क विना जैसे दीसै दिनु, जती जोगु जिसी चारित विनु ॥२॥

चारित विनु जती तपी विन मतवै, जोई विनु जो घ्यान अहै ।
पढ्या विनु सिद्धि वुद्धि विन पडिय, विनु सिद्धह जोवावहे ।
मन विनु जिउ भूह भूह विनु भोगी, कतपीसु विनु खिमा थुणा ।
जिण सासण वचन इव भास्यो, इसोसु नरु जिणधम्म विना ॥३॥

ससीयरु विनु रैणि दिवस विनु दिनीयरु, विन परिमल जे कुसम भणे ।
विनु तेय सुरग जलह विनु सरवर, विनु चातिक रुष वाधु घणा ।
पिक विणु तरु सूंड विणु गयवरु, जिउ दल विणपैं सतरणा ।
जिण सासण वचन इव भास्यो, इसोसु नरु जिण धम्म विना ॥४॥

छत्तह विणु इक गुण विणु जिउ घण, कठह् विणु जे घुणहि गीय ।
कर विणु जिउ ताल वेस विणु लावण, विणु लज्जु जे कुलतीय ।
लछी विणु लोल सुरह विणु वीरहि जिउ दल विणु पैस तिरण ।
वण विणु जिउ सिंघ मोर विणु गिरवर, हस विणु जिउ मानसर ॥५॥

विस विनु जिउ उरग, लूण विणु भोयणु, जिसो सु विणु केवै भवर ।
मती विणु नृपति सोम विणु पटणि सुक वल्हइ वसचुभण ।
जिसी रैणि विनु जोति, तिसो चकवी विणु दिनीयरु ।
जिसी दीप विणु रैणि तिसी विहुणि ने वरि ॥६॥

२

छीहल

१६ वी शताब्दी के अन्तिम चरण के जैन कवियो मे छीहल सबसे अधिक चर्चित कवि रहे हैं। रामचन्द्र शुक्ल के हिन्दी साहित्य के इतिहास से लेकर सभी इतिहासकारो ने किसी न किसी रूप छीहल का नामोल्लेख अवश्य किया है। छीहल राजस्थानी कवि होने के कारण राजस्थानी विद्वानो ने भी अपने अपने इतिहास मे उनकी रचनाओ का परिचय दिया है।

सर्वप्रथम रामचन्द्र शुक्ल ने छीहल का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "ये राजपुताने के ओर के थे। सवत् १५७५ मे उन्होने पञ्च सहेली नाम की एक छोटी सी पुस्तक दोहो मे राजस्थानी मिली भाषा मे बनाई जो कविता की दृष्टि से अच्छी नही कही जा सकती। इसमे पाच सखियो की विरह वेदना का वर्णन है। इनकी लिखी बावनी भी है जिसमे ५२ दोहे हैं। उदाहरण के रूप मे उन्होने पञ्च सहेली के प्रथम दो एव अन्तिम एक पद्य भी उद्धृत किया है।[1] डा० रामकुमार वर्मा ने अपने "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" मे कवि की पञ्च सहेली गीत के परिचय के साथ ही उनके सम्बन्ध मे अपना अभिमत लिखा है कि "इनका कविता काल सवत् १५७५ माना जाता है। इनकी पञ्च सहेली नामक रचना प्रसिद्ध है। भाषा पर राजस्थानी प्रभाव यथेष्ट है क्योकि ते स्वय राजपुताने के निवासी थे। रचना मे वियोग शृ गार का वर्णन ही प्रधान है।[2]

मिश्रबन्धु विनोद मे छीहल का वर्णन रामचन्द्र शुक्ल एव रामकुमार वर्मा के परिचय के आधार पर किया गया है। क्योकि उद्धरण भी शुक्ल वाला ही दिया गया है। वे लिखते हैं कि इन्होने सवत् १५७५ मे पञ्च सहेली नामक पुस्तक वनाई जिसमे पाच अवलाओ की विरह वेदना का वर्णन है और फिर उनके सयोग का भी कथन है। इनकी भाषा राजपुताने ढर्रे की है और इनकी कविता मे

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृष्ठ १९८।

२ रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ ५४४।

छन्दोभग भी है। इनकी रचना से जान पडता है कि ये मारवाड की तरफ के रहने वाले थे क्योकि उन्होने तालाबो आदि का वर्णन बडे प्रेम से किया है।[1]

डा० शिवप्रसाद सिंह ने अपनी पुस्तक "सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य" मे छीहल का सबसे अच्छा मूल्याकन प्रस्तुत किया है।[2] यही नही उन्होने रामचन्द्र शुक्ल एवं डा० रामकुमार वर्मा के मत का उल्लेख करते हुए कवि के सम्बन्ध मे निम्न प्रकार अपने विचार लिखे हैं—"आचार्य शुक्ल ने छीहल के बारे मे बडी निर्ममता के साथ लिखा, सवत् १५७५ मे इन्होने पञ्च सहेली नाम की एक छोटी सी पुस्तक दोहो मे राजस्थानी मिली भाषा मे बनाई जो कविता की दृष्टि से अच्छी नही कही जा सकती। इनकी लिखी एक बावनी भी है जिसमे ५२ दोहे हैं। पञ्च सहेली को बुरी रचना कहने की बात समझ मे आ सकती है क्योकि इसे रुचि भिन्नता मान सकते हैं। किन्तु बावनी के बारे मे इतने नि सदिग्ध भाव मे विचार किया यह ठीक नही है। बावनी ५२ दोहो की एक छोटी रचना नहीं है बल्कि इसमे अत्यन्त उच्चकोटि के ५३ छप्पय छन्द हैं। डा० रामकुमार वर्मा ने छीहल की पञ्च सहेली का ही जिक्र किया है। वर्मा जी ने छीहल की कविता की श्रेष्ठता-निकृष्टता पर कोई विचार नही दिया किन्तु उन्होने पञ्च सहेली की वास्तविकता का सही विवरण दिया है।"

इसके पश्चात् 'राजस्थानी साहित्य का इतिहास' पुस्तक मे डा० हीरालाल महेश्वरी ने छीहल कवि का राजस्थानी कवियो मे उल्लेखनीय स्थान स्वीकार करते हुए उनकी पञ्च सहेली और बावनी को काव्यत्व से भरपूर एवं बोलचाल की राजस्थानी मे बहुत ही अनूठी रचनाएँ मानी हैं।[3] इसके पश्चात् और भी विद्वानो ने छीहल के बारे मे विवेचन किया है। डा० प्रेमसागर जैन ने छीहल को सामर्थ्यवान कवि माना है। तथा उनकी चार रचनाओ का परिचय एव बावनी का नामोल्लेख किया है।[4] लेकिन जैन विद्वानो मे डा० कामता प्रसाद, डा० नेमीचन्द शास्त्री आदि ने छीहल जैसे उच्च कवि का कही उल्लेख नही किया है।

जन्म परिचय

छीहल राजस्थानी कवि थे। वे राजस्थान के किस प्रदेश के रहने वाले थे

१ मिश्रबन्धु विनोद—पृ० १४३।
२ सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, पृ० १६८।
३ राजस्थानी भाषा और साहित्य – पृ० २५५–५८।
४ हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० १०१–१०६।

इसके वारे मे उन्होने स्वय ने कोई परिचय नही दिया है। लेकिन पञ्च सहेली गीत मे कवि ने जिस प्रकार कुए पर पानी भरने के लिए आने वाली पाच विरहिणी स्त्रियो का चित्र प्रस्तुत किया है। उनके परस्पर की वार्तालाप को काव्यबद्ध किया है। उससे ऐसा लगता है कि कवि शेखावाटी प्रदेश के किसी भाग के थे जो ढूढांड प्रदेश की सीमा को भी छूता था। बावनी मे दिये गए परिचय के अनुसार वे अग्रवाल जैन थे तथा दिगम्बर जैन सम्प्रदाय मे उत्पन्न हुए थे। कवि ने 'लघुवेलि' मे जिस प्रकार जिन धर्म की महत्ता का वर्णन किया है उससे स्पष्ट है कि ये दिगम्बर अनुयायी श्रावक थे।[1] डा० शिवप्रसाद सिह ने लिखा है कि कवि के जैन होने का कही उल्लेख नही मिलता।[2] इससे प्रतीत होता है कि उन्होने कवि का लघु गीत नही देखा। पथी गीत का भाव नही समझा। पिता का नाम नाथू जी नल्हिग वश के थे।[3] इससे अधिक परिचय अभी तक नही मिल सका है। खोज जारी है और हो सकता है किसी अन्य सामग्री के उपलब्ध होने पर कवि के सम्बन्ध मे पूरा परिचय ही प्राप्त हो जावे।

छीहल रसिक कवि थे। जब उन्होने पञ्च सहेली गीत की रचना की थी तो लगता है वे युवावस्था मे थे। और किसी के विरह मे डवे हुए थे। कवि पानी भरने के लिए कुए पर जाते होगे और उन्होने वहाँ जो कुछ सुना अथवा देखा उसे छन्दोबद्ध कर दिया। मालिन, छीपन, सोनारिन, तम्बोलिन, आदि जाति की युवतिया वहाँ पानी भरने आती होगी। जब उसने उनसे अपने अपने विरह की बात सुनायी तो कवि ने उसे छन्दोबद्ध कर दिया। कवि की अब तक ७ रचनाए उपलब्ध हो चुकी हैं। यद्यपि वावनी को छोडकर सभी लघु रचनाएं हैं। किन्तु छोटी होने पर भी ये काव्यमय हैं तथा कवि की काव्य-शक्ति को प्रस्तुत करने वाली हैं। सात रचनाओ के नाम मिम्न प्रकार हैं—

१ पञ्च सहेली गीत
२ वावनी
३ पथी गीत
४ लघु वेली
५ आत्म प्रतिवोध जयमाल

१ श्री जिनवर की सेवा कीधी रे मन मूरख आपणा ॥१॥
२ सूर पूर्व व्रज भाषा और उसका साहित्य—पृ० १६८।
३ नाल्हिग वंसि नाथू सुतनु अगरवाल कुल प्रगट रवि।
वावनी वसुधा विस्तरी कवि कंकण छीहल कवि ॥५३॥

६. उदर गीत
७. वैराग्य गीत

१ पञ्च सहेली गीत

यह राजस्थानी भाषा की कृति है। डा० रामकुमार वर्मा ने इसके सम्बन्ध मे लिखा है कि इसमे पाच तरुणी स्त्रियो ने मालिन, छीपन, सोनारिन, तम्बोलिन, प्रोषित पतिका नायिका के रूप मे अपने प्रियतमो के विरह मे, अपने करुण आवेगो का वर्णन अपने पति के व्यवसाय से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओ का उल्लेख और तत्सम्बन्धी उपमाओ और रूपको के सहारे किया है।[1] डा० शिवप्रसाद सिंह ने पञ्च सहेली को १६ वी शती का अनुपम शृगार काव्य माना है। साथ मे यह भी लिखा है कि इस प्रकार का विरह वर्णन उपमानो की इतनी स्वाभाविकता और ताजगी अन्यत्र मिला दुर्लभ है।"[2]

पञ्च सहेली मे पाच विभिन्न जाति की स्त्रियो के विरह की कहानी कही गई है। ये स्त्रिया किसी उच्च जाति की न होकर मालिन, तम्बोलिन, छीपन, कलालिन एवं सुनारिन हैं जिनके पति विदेश गये हुए हैं। उनके विरह मे वे सभी स्त्रियाँ समान रूप से व्यथित हैं। कवि ने यह वतलाने का प्रयास किया है कि पति वियोग मे प्रोषित पतिका कितनी क्षीणकाय म्लान मुख हो जाती हैं। उनके आखो मे कज्जल, मुख मे पान नही होता। गले मे हार भी नही पहना जाता और केश भी सूखे-सूखे लगते हैं। वह हमेशा अनमनी रहती है। तथा लम्बे श्वास लेती है। उनके अधरोष्ठ सूख जाते हैं तथा मुख कुम्हला जाता है।

छीहल कवि जिस किसी नगर के रहने वाले थे, वह सुन्दर था तथा स्वर्ग-लोक के समान था। वहा विशाल महल थे। स्थान-स्थान पर सरोवर थे तथा कुए और बावडियो से युक्त था। नगर मे सभी ३६ जातिया रहती थी। लोगो मे बहुत चतुरता थी। वे अनेक विद्याओ को जानते थे। तथा वे एक-दूसरे का सम्मान करते थे। नगर की स्त्रिया रूपवती एवं रभा के समान लावण्यवती थी। नये नये वस्त्रा-भूषण पहिन कर वे सरोवर पर पानी भरने जाती थी। एक दिन इसी प्रकार नगर की कुछ नवयौवना स्त्रिया वस्त्राभूषणो से अलकृत होकर सरोवर के पास आईं। उस समय वसन्त था। इसलिए उनमे और भी मादकता थी। उनमे से कुछ गीत गा रही थीं। कुछ भूलना भूल रही थी तथा एक-दूसरे से हास परिहास कर रही

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास– पृ० ४४८।
२ सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य—पृ० १७०।

थी। लेकिन उनमे पाच सहेलिया ऐसी भी थी जो न नाचती थी, न गाती थी और न हसती थी। कवि के शब्दो मे उनकी दशा निम्न प्रकार थी—

तिन महि पंच सहेलिया नाचइ गावइ न हसइ।
ना मुख बोलई बोल........ ....॥६॥

नयनह काजल ना दीउ, ना गलि पहिन्दो हार।
मुख तम्वोल न खाईया, ना कछु किया सिंगार ॥१०॥

रूखे केस ना न्हाईया, मइले कप्पड तास।
विलखी वइसी उनमनी, लावे लेहि उसास ॥११

सुन्दरियो ने जव उन्हे उदास देखा तो उसका कारण जानना चाहा क्योकि साथ की सहेलियो ने कहा कि वे यौवनवती है उनकी देह भी रूप वाली है। फिर इतनी उदासी का क्या कारण है। यह सुनकर उन्होने मधुर स्वर से अपना-अपना सच्चा दुख निम्न प्रकार कहा—

उन्होने कहा कि वे एक ही घर की अथवा जाति की नही अपितु मालिन, तम्वोलिन, छीपन, कलालिन एव सुनारिन जाति की हैं। लेकिन विरह का कारण सब का समान है। इसलिए एक-एक ने अपने दुख का कारण कहना प्रारम्भ किया— सर्वप्रथम मालिन जाति की यौवना स्त्री ने कहा कि उसका पति उसे छोडकर परदेश चला गया है। जिसके विरह से वह अत्यधिक दुःखी है। उसका एक दिन एक वर्ष के वरावर व्यतीत होता है। यौवनावस्था मे पतिदेव परदेश चले गये हैं। रात्रि दिन आंखो मे से आसू बहते रहते है। कमल के समान मुख कुम्हला गया है। सारा वाग सूख गया है। शरीर रूपी वृक्ष पर फूल लगने लगे है तथा दोनो नारगिया रस से ओतप्रोत हैं लेकिन अब वे विरह से सूखने लगी है क्योकि वन को सीचने वाला माली परदेश गया हुआ है।

पहिली बोली मालनी मुझको दुख अनन्त।
वालइ यौवन छांडि कइ, चल्यु दिसाउरि कत ॥१७॥

निस दिन वहवई पवाल ज्यु, नयनह नीर अपार।
विरहउ माली दुक्ख का सूभर भरया किवार ॥१८॥

कमल वदन कुमलाईया, सूकी सुख वनरइ।
वाझू पीयारइ एक खिन, वरस वरावरि जाइ ॥१६॥

तन तरवर फल लागिया दुइ नारिग रसपूरि।
सूखन लगा विरह झल, सींचन हारा दूरि ॥२०॥

दूसरी विरहिणी तम्बोलिन थी। वह पति के विरह मे इतनी दुर्बल हो गयी थी कि चोली मात्र से ही पूरा शरीर ढक जाता था। वह हाथ मरोड़ती, सिर धुनती और पुकारती। उसका कोमल शरीर जलता। मन मे चिन्ता छाये रहती और आखो से अश्रु धारा कभी रुकती ही नही। जब से उसके पिया बिछुड़े तब से ही उसके सुख का सरोवर सूख गया—

हाथ मरोरउ सिर धुनउं, किस सउ करूं पुकार।
तन दाझई मन कलमलइ, नयन न खडइ धार ।।२५।।
पान झडे सब रूंख के, वेल गई तनि सुक्कि।
दूभरि रति वसंत की, गया पियारा मुक्कि ।।२६।।
हीयरा भीतरि पइसि करि, विरह लगाइ आगि।
प्रीय पानी विनि ना वुझवइ, बलीसि सबली लागि ।।२७।।

छीपन आखो मे आसू भर कर कहने लगी कि उसके विरह का दु.ख वही जानती है, दूसरा कोई नही जानता। तन रूपी कपडे को दु ख रूपी कतरनी से वह दर्जी (प्रियतम) एक साथ तो काटता नही है और प्रतिदिन देह को काटता रहता है। विरह ने उसके शरीर को जला कर रख दिया है। उसका सारा रस जला कर उसको नीरस कर दिया है।

तन कपडा दुक्ख कतरनी दरजी विरहा एह।
पूरा व्योत न व्योतई, दिन दिन काटइ देह ।।३२।।
दु ख का तागा वीटीया सार सुई कर लेइ।
चीनजि बवइ अविश्राम करि, नान्हा बरवीया देई ।।३३।।
विरहइ गोरी अति दही, देह मजीठ सुरग।
रस लिया अवटाइ कइ, बाकस कीया अग ।।३४।।

चौथी कलालिन थी। वह कहने लगी कि उसका शरीर तो भट्टी की तरह जल रहा है। आखो मे से आसू बरस रहे हैं जो मानो अर्क बन रहा है। उसका भरतार विना अवगुन के ही उसको कस रहा है। एक तो फागुन का महिना फिर यौवनावस्था, लेकिन उसका प्रियतम इस समय बाहर गया हुआ है इसलिए उसकी याद कर करके वह मर रही है।

मो तन भाटी ज्यूं तपइ, नयन चुवइ मद धारि।
विन ही अवगुन मुझ सू, कसकरि रहा भरतार ।।३६।।
माता योवन फाग रिति, परम पियारा दूरि।
रली न पूजै जीव की, मरउ विसूरि विसूरि ।।४२।।

पांचवी विरहिणी सुनारिन थी। वह तो विरह रूपी समुद्र मे इतनी डूब गई थी कि उसका थाह पाना ही कठिन था। उसके अंगो को मदन रूपी सुनार ने हृदय रूपी अगीठी पर जला जलाकर कोयला कर दिया था। उसके विरह ने तो उसका रूप ही चुरा लिया जिससे उसका सारा शरीर सूना हो गया।

हू तउ वूडी विरह मइ, पाउं नाही थाह ॥४५॥

हीया अगीठी मसि जिय, मदन सुनार अभग।
कोयला कीया देह का मिल्या सवेइ सुहाग ॥४६॥

इस प्रकार पाचो विरहिणी स्त्रियो से छीहल कवि ने जब उनके विरह दुख का वर्णन सुना तो सभवत वे भी दुखी हो गये। अन्त मे कवि को भी कहना पडा कि विरहावस्था ही दुखावस्था है। जिसमे पल भर को सुख नही मिलता।

छीहल वयरी विरह की घडी न पाया सुख।
हम पचइ तुम्हसउं कह्या, अपना अपना दुख ॥५१॥

कुछ दिनो पश्चात् फिर वे पाचो मिली। वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने के साथ-साथ उनके पति भी परदेस से वापिस आ गये थे। इसलिए वे हसने लगी, गाने लगी। उस दिन वे पूरे शृगार मे थी। छीहल ने जब उन्हे हसते हुए देखा तो उन्होने फिर उन स्त्रियो से पूछा--

विहसी गावइहि रहिससू कीया सइ सिंगार।
तव उन पच सहेलिया, पूछी दूजी वार ॥५४॥

मइ तुम्ह आमन दूमनी देखी थी उतवार।
अब हूं देखू विहसती, मोसउ कहउ विचार ॥५५॥

उनका साई आ गया था। वियोगिन बसन्त ऋतु जा चुकी थी। मिलन की वर्षा ऋतु आ गई थी। मालिन के सुख रूपी पुष्प को पति ने मधुकर बनकर खूब पी लिया था। तम्बोलिन ने चोली खोल कर अपार यौवन, भरी देह को निकाला और अपने पति के साथ वहुत प्रकार ये रग किया। आखो से आख मिली और अपूर्व सुख का अनुभव किया।

मालिन का मुख फूल ज्यउ वहुत विगास करेइ।
प्रेम सहित गुन्जार करि, पीय मधुकर सलेइ ॥५८॥

चोली खोल तम्वोलनी काढचा गात्र अपार।
रग कीया वहु प्रीयसु, नयन मिलाई तार ॥५९॥

रचना काल

पञ्च सहेली गीत का रचना काल सवत् १५७५ फागुण सुदि पूर्णिमा है। उस दिन होली थी और कवि भी होली के उन्मुक्त आनन्द मे ऐसी सरस रचना लिखने मे सफल हुए थे। इसलिए स्वय ने लिखा है कि उसने अपने मन के मधुर भावो से इस रचना को निवद्ध किया है।

मीठे मन के भावते, कीया सरस बखाण।
अरा जाण्या गूरिख हंसइ, रीझइ चतुर सुजाण ।।६७।।

भाषा

छीहल राजस्थानी कवि हैं। उनकी कृतियो की भाषा के सम्वन्ध मे डा० शिवप्रसाद सिंह ने लिखा है कि कवि की कुछ पाण्डुलिपियाँ व्रजभाषा के निकट है जबकि कुछ पर राजस्थानी प्रभाव ज्यादा है। आमेर शास्त्र भण्डार वाली पाण्डुलिपि को उन्होने राजस्थानी प्रभावित कहा है। लेकिन अन्त मे वे यही निष्कर्ष निकालते हैं कि पञ्च सहेली गीत की भाषा राजस्थानी मिश्रित व्रजभाषा है।[1] अनूप सस्कृत लाइब्रेरी मे इसकी चार प्रतिया हैं जिनमे तीन का नाम तो 'पञ्च सहेली री बात" दिया हुआ है।[2] इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रतिलिपिकार उसे राजस्थानी भाषा की कृति मान कर चलते थे। वैसे कृति की अधिकांश शब्दावली राजस्थानी भाषा की है। न्हाईया (११) प्रवालीयां (१२) बालीया (१३) चल्यु (१७) कुमलाईया (१९) चपाकेरी (२२) वीछुडचा (२९) आदि शब्द एव क्रिया पद सभी राजस्थानी भाषा के हैं।

पञ्च सहेली गीत एक लोकप्रिय कृति रही है। राजस्थान के कितने ही शास्त्र भण्डारो मे इसकी प्रतिया सग्रहीत है।

१ दि० जैन शास्त्र भण्डार मन्दिर ठोलियान — गुटका सख्या ९७।
२. भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर — गुटका सख्या १३८।
३ शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर चौधरियो का मालपुरा (टोक) — गुटका सख्या ११।
४ अनूप सस्कृत लाइब्रेरी केटलाग राजस्थानी सेक्सन न० ७८ छद स० ६६ पत्र १९-२२ लिपि काल स० १७१८।
५ ,, ,, ,, न० १४२ पृ० ७६–७७।

---

१ सूर पूर्व व्रजभाषा और उसका साहित्य—पृ० १७०–७१।
२. वही।

६. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी केटलाग राजस्थानी सेक्सन न० २१७—अन्त मे संस्कृत श्लोक भी दिये हुए हैं।

७ „ „ „ न० ७७ पत्र स० ६८–१०२ लिपिकाल सवत् १७४६।

मूल्यांकन

पञ्च सहेली गीत राजस्थानी भाषा की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें शृंगार रस का बहुत ही सूक्ष्म तथा मार्मिक वर्णन हुआ है। वियोग शृंगार मे विरहिणी नायिकाओं के अनुभावो का चित्रण उन्ही के शब्दो मे इतना सवेद्य और अनुभूतिपरक है कि कोई भी सहृदय विरह की इस दशकारी वेदना से व्याकुल हुए विना नही रहता।[1] कवि ने उसमे वियोग तथा सयोग दोनो का ही चित्रण कर के साहित्य मे एक नयी परम्परा को जन्म दिया है। उन्ही पाचो स्त्रियो की सयोग मे मनोभावो की दशा एकदम वदल जाती है। एक तम्बोलिन की मनोदशा वर्णन मे तो कवि ने सव सीमाओं को लाघ दिया है। वास्तव मे विरह मे और मिलन मे यौवना स्त्री की क्या दशा रहती है कवि ने इसका वहुत ही सूक्ष्म हृदय ग्राही वर्णन करके पाठको को आश्चर्य चकित कर दिया है। भाषा एव शैली दोनो दृष्टियो से भी पञ्च सहेली गीत एक उत्कृष्ट रचना है। राजस्थानी भाषा साहित्य मे इस लघु काव्य को एक महत्त्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिये।

२ वावनी

छीहल कवि की यह दूसरी वडी रचना है जिसमे कवि ने कितने ही विषयो को छुआ है। प्रो० कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' के शब्दो मे वावनी मे वर्णित नीति और उपदेश के विषय हैं तो प्राचीन पर प्रस्तुतीकरण की मौलिकता, प्रतिपादन की विशदता एव दृष्टान्त चयन की सूक्ष्मता सर्वत्र विद्यमान है। कवि सस्कृत के सुभाषितो एव नीतियो का ऋणी हैं। पर उनके अनुवादन अनुधावन मात्र नही है।[2] प्रस्तुत कृति भाषा एव भाव दोनो के परिपाक का उत्तम उदाहरण है। यद्यपि नीति और उपदेशात्मक विपयो का वर्णन वावनी का मुख्य विषय है फिर भी कवि कभी भी काव्य से दूर नही हुआ। उसने अपने विषय को नये ढग एवं नये भावो के साथ अभिव्यक्त किया है।

१ सूर पूर्व व्रजभाषा और उसका साहित्य—पृ० ३०७।

२ मरुभारती—वर्ष १५ अंक २—पृ० ६।

जैन विद्वानो ने वावनी सज्ञक काव्य लिखने मे आरम्भ से ही रुचि दिखाई है। ये वावनिया किसी एक विषय पर आधारित न होकर विविध विषयो का वर्णन करती हैं। बावनी लिखने वाले कवियो मे डूगरसी, बनारसीदास, जिनहर्ष, दयासागर, ब्र० माणक, मतिशेखर, हेमराज आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। जैन कवि न तो अपने पौराणिक कथानको मे ही वधे रहे और न उन्होने सामन्ती के चित्रण मे जन सामान्य को भुलाया। जैन काव्य मे विराग और कष्ट सहिष्णुता पर वहुत वल दिया गया है। यह भी सत्य है कि इस प्रकार सदाचरण के नीरस उपदेश काव्य को उचित महत्त्व नही देते किन्तु यह केवल एक पक्ष है। अपने अध्यात्म जीवन को महत्त्व देते हुए तथा पारलौकिक सुखो के लिए अति सचेष्टा दिखाते हुए भी जैन कवि उन लोगो को नही भुला सका जिनके बीच वह जन्म लेता है। उसके मन मे अपने आस-पास के लोगो के सुखी जीवन के लिए अपूर्व सदिच्छा भरी हुई है। वह सृष्टि की सारी सम्पत्ति जनता के द्वार पर जुटा देना चाहता है।[1]

वावनी का एक-एक छप्पय नीति के रत्न हैं जो अपनी प्रभा से उद्भासित और प्रकाशित हैं। कवि ने वडी सम्यता से मर्यादा, नीति और न्याय के पक्ष का समर्थन करते हुए पाखडियो और स्वार्थियो की खवर ली हैं। जगत का स्वभाव प्रस्तुत किया है तथा उसमे मानव को अच्छे कार्य करने की प्रेरणा दी है।

प्रस्तुत बावनी का हिन्दी की वावनियो मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। आचार्य शुक्ल ने यद्यपि इसमे ५२ दोहे होना लिखा है पर इसमे ५३ छप्पय छन्द है जो ओम से प्रारम्भ होकर नगराक्षर क्रम से निवद्ध हैं। क्रम निर्वाह के लिये ओ, औ, क्ष, त्र वर्ण छोड दिये गये है तथा ड, एव ञ के स्थान पर न का तथा ऋ, ॠ, लृ, लॄ, य, व, श, के स्थान पर क्रमश. रि, री, लि, ली, ज, ओ, म, का प्रयोग किया गया है। कई अन्य कवियो द्वारा रचित वावनियो मे भी वर्णमाला का यह परिवर्तित रूप पद्य क्रम के लिये प्रयुक्त हुआ है।[2] वावनी के आरम्भिक पाच पदो मे आदि अक्षरो के द्वारा ॐ नम सिद्ध वनता है जो कवि के जैन होने का द्योतक है।

वावनी का प्रथम पद्य मगलाचरण के रूप मे तथा अन्तिम पद्य मे कवि ने वावनी का रचना काल एव स्वय का परिचय दिया है। इसके शेष छन्द नीति एवं उपदेश परक हैं। कवि ने वावनी मे विषय का अथवा नीति एवं उपदेशो का कोई क्रम नही रखा है किन्तु जैसा भी उसे रुचिकर प्रतीत हुआ उसी का वर्णन कर दिया।

१　सूर पूर्व व्रज भाषा और साहित्य—पृ० २८१।
२　मरु भारती वर्ष १५ अंक—२ पृ० ६।

विषय प्रतिपादन

प्रारम्भ मे पांच इन्द्रियो के विषयो मे यह जीव किस प्रकार उलझा रहता है और अपने मन को अस्थिर कर लेता है। हाथी स्पर्शन इन्द्री के वशीभूत होकर, हरिण श्रवण इन्द्री के कारण अपनी जान गवा देता है। यही नही रसना इन्द्री के कारण मछलिया जाल मे फस जाती हैं। भवरा एव पतग भी इसी तरह जाल मे फसकर अपने जीवन का अन्त कर लेते हैं—

नाद श्रवण धावन्त तजइ मृग प्राण ततष्षिण।
इन्द्री परस गयन्द वास अलि मरइ विचष्षण।
रसना स्वाद विलग्गि मीन वज्झइ देखन्ता।
लोयण लुवुध पतग पडइ पावक पेषन्ता।
मृग मीन भवर कुजर पतग, ए सब विणासइ इक्क रसि।
छीहल कहइ रे लोइया, इन्दी राखउ अप्प वसि।।२।।

कवि ने समस्त जगत को स्वार्थमय वतलाया है। मनुष्य जगत् मे आता है और कुछ जीवन के पश्चात् वापिस चला जाता है। यह सब उसी तरह है जैसे फलो से लदे वृक्ष पर पक्षी आकर बैठ जाते हैं और फल समाप्त होने तथा पत्ते झडने पर सब उड जाते हैं। उसी तरह मनुष्य जगत् से स्वार्थ के लिए अथवा धन के लिए मित्रता बाधता है और वे मिल जाने के पश्चात् उसे वह भुला बैठता है।

छाया तरुवर पिष्षि आइ, वहु वसै विहंगम।
जब लगि फल सम्पन्न रहै, तव लगि इक सगम।
विहवसि परि अवथ्थ, पत्त फल झरै निरन्तर।
खिण इक तथ्थ न रहइ, जाहि उडि दूर दिसतर।
छीहल कहै द्रुम पखि जिम महि मित्र तणु दव्व लगि।
पर कज्ज न कोऊ वल्लहो, अप्प सुवारथ सयल जगि।।२६।।

मनुष्य को थोडे-थोडे ही सही लेकिन कुछ अच्छे कार्य करने चाहिए। दूसरो के हित के लिए विनयपूर्वक धन दिन भर देते रहना चाहिए अर्थात् भलाई एव दान के लिए कोई समय निश्चित नही होता। कवि कहता है कि जब तक शरीर मे श्वास है तब तक अपने ही हाथो से अपनी सम्पत्ति का उपयोग कर लेना चाहिए क्योकि मरने के पश्चात् वह उसके लिए बेकार है। कवि ने वीसल राजा की उपमा दी है जो १९ करोड का धन जोड कर छोड गया और उसका जीवन पर्यन्त भोग और दान किसी मे भी उपयोग नही किया।

थौरो थौरो माहि, समय कछु सुकृति कीजइ।
विनय सहित करि हित्त, वित्त सारै दिन दीजइ।
जब लगि सास सरीर मूढ विलसहु निज हत्यहि।
मुवा पछै लपटी, लच्छी लग्गै नहि सत्यहि।
छीहल कहइ वीसल नृपति सचि कोडि उगणीस दव्व।
लाहौ न लियौ भोगव्वि, करि अतकाल गौ छाडि सव्व ।।३६।।

मनुष्य जीवन भर भविष्य की कल्पना करता रहता है और मृत्यु की ओर जरा भी सचेत नही रहता लेकिन जब मृत्यु आती है तो उसकी सब आशाएँ धरी की धरी रह जाती हैं और वह कुछ भी नही कर सकता। जिस प्रकार मधुकर कमल पुष्प मे बन्द होने के पश्चात् सुखद प्रात काल की कल्पना करता है लेकिन उसे यह पता नही कि उसके पूर्व ही कोई हाथी आकर उसकी जीवन लीला समाप्त कर सकता है इसलिए भविष्य की आशाओ की कल्पना छोडकर वर्तमान मे अच्छे कार्य कर लेना चाहिए—

भ्रमर इक्क निसि भ्रमै, परौ पकज के सपुटि।
मन महि मडै आस, रयणि खिण माहि जाइ घटि।
करि हैं जलज विकास, सूर परभाति उदय जब।
मधुकर मन चितवै, मुक्त ह्वैव हैं बन्धन तव।
छीहल द्विरद ताही समय, सर सपत्तउ दइव वसि।
अलि कमल पत्र पुडइणि सहित, निमिय माहि सौ गयो ग्रसि ।।४३।।

इस प्रकार पूरी बावनी सुभाषितो एव उपदेशात्मक पद्यो से भरी पडी है। उसका प्रत्येक पद्य स्मरणीय है तथा मानव को विपत्ति से बचा कर सुकृत की ओर लगाने वाला है। सभी सुभाषित सम्प्रदाय भावनाओ से दूर किन्तु मानवता तथा विश्व सेवा का पाठ पढ़ाने वाले हैं। मानव को राग, द्वेष, काम, क्रोध, मान एवं माया के चक्कर से बचाने वाले हैं। यही नही जगत का वास्तविक स्वरूप को भी प्रस्तुत करने वाले हैं। कवि ने इन पद्यो मे अधिक से अधिक भावो को भरने का प्रयास किया है। इसलिए कवि की प्रस्तुत बावनी हिन्दी एव राजस्थानी भाषा की सुन्दरतम कृतियो मे से है।

भाषा

भाषा की दृष्टि से बावनी राजस्थानी भाषा की कृति है। इसमे अपभ्र श शब्दो की जो भरमार है वे इसके राजस्थानी रूप को ही व्यक्त करने वाले हैं। डा० शिवप्रसाद सिंह ने बावनी को व्रजभाषा के विकास की कड़ी के रूप मे माना है

जो सूरदास के व्रजभाषा का परिवर्त्ती रूप है लेकिन वावनी मे व्रज का ही नही अपभ्रंश एव राजस्थानी का भी परिस्कृत रूप देखा जा सकता है।

छीहल कहइ गल गज्जि करि, जो जल उल्हरि देइ घन।
चातक्क नीर ते परि पियै, ना तो पियासो तजै तन ।।३४।।

रचना काल

वावनी की रचना सवत् १५८४ कार्तिक सुदी अष्टमी गुरुवार के दिन सम्पन्न हुई थी। कवि ने अपने श्री गुरु का नाम लेकर रचना प्रारम्भ की थी और सरस्वती की कृपा से उसकी यह रचना सानन्द समाप्त हुई थी।

चउरासी अग्गला सइ जु पनरह सवच्छर।
सुकुल पष्ष अष्टमी मास कातिग गुरुवासर।
हृदय उपनी बुद्धि नाम श्री गुरु को लीन्हो।
सारद तणइ पसाइ कवित सपूरण कीन्हो।

कवि का परिचय

वावनी के अन्तिम पद्य मे कवि ने अपना परिचय दिया है। वह नाथू का पुत्र था। अग्रवाल जैन जाति मे उत्पन्न हुआ था तथा उसका वश नाल्हिग कहलाता था।

नाल्हिग वससि नाथू सुतनु अगरवाल कुल प्रगट रवि।
वावन्नी वसुधा विस्तरी, कवि ककण छीहल्ल कवि ।।५३।।

बावनी अपने समय मे लोकप्रिय कृति रही है तथा उसका सग्रह गुटको मे मिलता है जिससे पता चलता है कि पाठक इसे चाव से पढा करते थे। अब तक राजस्थान के जैन ग्र थागारो मे बावनी की निम्न पाण्डुलिपिया उपलब्ध हो चुकी है—

१	शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर लूणकरणजी पाडे, जयपुर	गुटका सख्या १४० लेखन काल स० १७१६ (इसमे २२ से ५३ तक के पद्य है)
२	शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर ठोलियान	गुटका सख्या १२५ (इसमे ५० पद्य हैं)
३	भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर	गुटका संख्या ३५ (इसमे ५३ पद्य हैं)

४ उक्त कृतियो के अतिरिक्त, अनूप सस्कृत लायब्रेरी बीकानेर तथा अभय जैन ग्रथालय बीकानेर मे भी वावनियो की पाण्डुलिपिया मिलती हैं।[1]

१ सूर पूर्व व्रज भाषा और उसका साहित्य पृ० ३७७।

इस प्रकार बावनी राजस्थानी भाषा की एक उत्कृष्ट रचना है जिसकी पाण्डुलिपिया राजस्थान के और भी भण्डारो मे उपलब्ध हो सकती हैं।

वैराग्य गीत मानव को जीवन मे अच्छे कार्य करने के लिए प्रेरणा स्वरूप है। बचपन, यौवन एव वृद्धावस्था तीनो ही ऐसे ही निकल जाते हैं और जब मृत्यु आती है तो यह मनुष्य हाथ मलने लगता है इसलिए अच्छे कार्य तो जितना जल्दी हो कर लेना चाहिए। यही गीत का सार है जिसको कहने के लिए कवि ने प्रस्तुत गीत निबद्ध किया है।

उदर गीत मे कवि कहता है कि सारा जीवन यदि उदर पूर्ति मे ही व्यतीत कर दिया और अगले जन्म के लिए कुछ नही किया तो यह मनुष्य जीवन धारण करना ही व्यर्थ जावेगा। कवि की भावना है कि प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन मे ऐसा कोई सुकृत कार्य अवश्य करले जिससे उसका भावी जीवन भी सुधर जावे।

इस प्रकार छीहल कवि की कृतियां राजस्थानी काव्यो मे उल्लेखनीय कृतिया हैं। सभी कृतियां जन कल्याण की भावना से लिखी हुई है। इनमे शिक्षा है, उपदेश है, नीति और धर्म का पुट है तथा लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनो की कहानी प्रस्तुत की गयी है।

□□□

१. पंच सहेली गीत

नगर वर्णन—

देखा नगर सुहायणा, अधिक सुचगा थान ।
नाउं चगेरी परगट, जन सुर लोक सुजान ।।१।।

ठाइ मिदिर सत खिने, सो नइ लिहिया लेहु ।
छीहल तन की उपमा कहत न आवइ छेहउ ।।२।।

ठाइ ठाइ सरवर पेखीया, सू सर भरे निवाण ।
ठाइ कूवा बावरी, सोहइ फटक समान ।।३।।

पवन छतीसी तिहा वसइ, अति चतुराई लोक ।
गुम विद्या रस आगला, जानइ परिमल लोग ।।४।।

तिहा ठइ नारी पेखीयइ, रभा केउ निहारि ।
रूप कत ते आगली, अवर नही ससार ।।५।।

पहरि सभाया आभरण, अर दख्यण के चीर ।
वहुत सहेली साथि मिलि, आई सरवर तीर ।।६।।

चोवा चदन थाल भरि, परिमल पहुप अनत ।
खडहु बीडी पान की, खेलहु सखी बसत ।।७।।

केइ गावइ मघुर धुनि, केइ देवहि रास ।
केइ हीडोलइ हीडती, इह विधि करइ विलास ।।८।।

तिन माहि पच सहेलिया, नाचइ गावहि ना हसइ ।
ना मुखि बोलइ बोल···· ·· ····   ···· ········।।९।।

नयनह काजल ना दीउ, ना गलि पहिन्दो हार ।
मुख तवोल न खाईया, ना कछु कीया सिगार ।।१०।।

रूखे केस ना न्हाईया, मइले कप्पड तास ।
विलखी बइसी उनमनी, लावे लेहि उसास ।।११।।

सूके अहर प्रवालीया, अति कुमलाणा मुख ।
तउ मइ बूझी जाइ कह, तुम्ह कहउ केतउ दुख ।।१२।।

दीसय योवन बालिया, रूप दीपती देह ।
मोसउ कहउ विचार, जाति तुम्हरी केह ।।१३।।

तउ ऊनि सच आखीया, मीठा बोल अपार ।
ना वह मारी जाति की, छीहल्ल सुनहु विचार ।।१४।।

मालन अर तंबोलनी, त्रीजी छीपनि नारि ।
चउथी जाति कलालनी, पचमी सुनारि ।।१५।।

जाति कही हम तम्ह सउ, अब सुनि दुख हमार ।
तुम्ह तउ सुगना आदमी, लहउ विराणी सार ।।१६।।

मालिन की विरह व्यथा—

पहिली बोली मालनी, मुझ्क कूं दुख अनत ।
बालइ योवन छडि कइ, चल्यु दिसाउरि कत ।।१७।।

छीपन का

निस दिन वहइ पवालज्यु, नयनह नीर अपार ।
विरहउ माली दुक्ख का, सूभर भरया किनार ।।१८।।

कमल वदन कुमलाईया, सूकी सूख वनराइ ।
वाभू पीया रइ एक षिन, वरस बरावरि जाइ ।।१९।।

तन तरवर फल लग्गीया, दुइ नारिंग रस पूरि ।
सूकन लागा विरह फल, सींचन हारा दूरि ।।२०।।

मन वाडी गुण फूलडा, प्रीय नित लेता बास ।
अब इह थानकि रात दिन, पीडइ विरह उदास ।।२१।।

चपा केरी पखडी, गूंथ्या नव सर हार ।
जइ इहु पहिरउ पीव विन, लागइ अग अगार ।।२२।।

मालनि अपना दु ख का, विवरा कह्या विचार ।
अब तू वेदन आपनी, आखि तबोलन नार ।।२३।।

तम्बोलिन की विरह व्यथा—

कलालिन

दूजी कहइ तबोलनी, सुनि चतुराई वात ।
विरहइ मार्‌या पीव विन, चोली भीतरि गात ।।२४।।

हाथ मरोरउ सिर धन्यु, किस सउ कहु पोकार ।
जउती राता वालहा, करइ न हम दिस भार ।।२५।।

पान झडे सब रूंख के, वेल गई तनि सुक्कि ।
दूभरि रति बसत की, गया पीयरा मुक्कि ॥२६॥

हीयरा भीतरि पइसि करि, विरह लगाई आगि ।
प्रीय पानी विनि ना बूझवइ, वलीसि सबली लागी ॥२७॥

तन बाली विरहउ दहइ, परीया दुक्ख असेसि ।
ए दिन दुभरि कउं भरइ, छाया प्रीय परदेसि ॥२८॥

जब थी बालम वीछुड्या, नाठा सरिवरि सुख ।
छीहल मो तन विरह का, नित्त नवेला दुख ॥२९॥

कहउ तंबोलनि आप दुक्ख, अब कहि छीपन एह ।
पीव चलतइ तुझसउं, विरहइ कीया छेह ॥३०॥

छीपन का विरह वर्णन—

त्रीजी छीपनि आखीया, भरि दुइ लोचन नीर ।
दूजा कोइ न जानही, मेरइ जीय की पीर ॥३१॥

तन कपडा दुक्ख कतरनी, दरजी विरहा एह ।
पूरा व्योत न व्योतइ, दिन दिन काटइ देह ॥३१॥

दुक्ख का तागा वाटीया, सार सुई कर लेइ ।
चीनजि बघइ अवि काम करि, नान्हा वखीया देइ ॥३३॥

विडहइ गोरी अतिदही, देह मजीठ सुरग ।
रस लीया अवटाइ कइ, बाकस कीया अग ॥३४॥

माड मरोरी निचोरि कइ, खार दिया दुख अति ।
इहु हमारे जीव कहु, मइ न करी इहु भ्रति ॥३५॥

सुख नाठा दुख सचरया, देही करि दहि छार ।
विरहइ कीया कत वनि, इम अम्ह सु उपगार ॥३६॥

कलालिन का विरह—

छीपनि कहया विचार करि, अपना सुख दुख रोइ ।
अवहि कलालनि आखि तुं, विरहइ याई सोइ ॥३७॥

चउथी दुख सरीर का, लागी कहन कलालि ।
हीयरह प्रीयका प्रेम की, नित्त खटूकइ भालि ॥३८॥

मोतन भाठी ज्यु तपइ, नयन चुवइ मद धारि ।
विनही अवगुन मुझ सु , कस कर रह्या भरतार ।।३६।।

देखिइ केली तइ दई, विरह लगाई धाइ ।
वालभ उलटा हुइ रह्या, परउप छारी खाइ ।।४०।।

इस विहरइ के कारणइ, धन बहु दारू कीय ।
चित्त का चेतन ट्राहस्या, गया पीयरा लेय जीय ।।४१।।

माता योवन फाग रिति, परम पीयारा दूरि ।
रली न पूरी जीयकी, मरउ विसूरि विसूरि ।।४२।।

हीयरा भीतरि झूर रहु ं, करू ं घणेरा सोस ।
वइरी हुआ वालहा, विहरइ किसका दोस ।।४३।।

मोसउं व्युरा विरह का, कह्या कलालन नारि ।
इहु कुछु दुख सरीर महि, सो तु आखि सुनारि ।।४४।।

सुनारिन की व्यथा—

कहइ सुनारी पचमी, अंग उपना दाह ।
हू तउ बूडी विरह मइ, पाउं नाही थाह ।।४५।।

हीया अगीठी मूसि जिय, मदन सुनार अभग ।
कोयला कीया देह का, मिल्या सवेइ सुहाग ।।४६।।

टका कलिया दुख का, रेती न देइ धीर ।
मासा मासा न मूकीया, सोध्या सव सरीर ।।४७।।

विहरह रूप वुराइया, सूना हुआ मुझ जीव ।
किस हइ पुकारूं जाइ कइ, अब घरि नाही पीव ।।४८।।

तन तोले कंटउ घरी, देखी किस किस जाइ ।
विरहा कु ड सुनार ज्युउं, घडी फिराय पिराइ ।।४९।।

खोटी वेदन विरह की, मेरो हीयरो माहि ।
निसि दिन काया कलमलइ, ना सुख धूपनि छाह ।।५०।।

छीहल वयरी विरह की, घडी न पाया सुख ।
हम पंचइ तुम्ह सउं कह्या, अपना अपना दुख ।।५१।।

छीहल ५

कहि करि पंचुउ चलीया, अपने दुख का छेह ।
वाहुरि वइ दूजी मिली, जवह धडूक्या मेह ॥५२॥

भुइं नीली घन पूंवरि, गुनिहि चमकी वीज ।
वहुत सखी के झूड मई, खेलन आइ तीज ॥५३॥

विहसी गावइ हि रहिससुं, कीया सह सगार ।
तव उन पच सहेलीया, पूछी दूजी वार ॥५४॥

छीहल का पांचो स्त्रियो से पुर्नमिलन—

मइं तुम्ह आमन दूमनी, देखी थी उतवार ।
अव हु देखुं विहसती, मोसउं कहउ विचार ॥५५॥

छीहल हम तउ तुम्ह सउं, कहती हइ सतभाइ ।
साई आया रहससुं, ए दिन सुख माहि जाइ ॥५६॥

गया वसत वियोग मइ, अर धुप काला मास ।
पावस रिति पीय आवीया, पूगी मन की आस ॥५७॥

मालनि का मुख फूल ज्यउ, वहुत विगास करेइ ।
प्रेम सहित गुजार करि, पीय मधुकर सलेइ ॥५८॥

चोली खोल तबोलनी, काढ्या गात्र अपार ।
रग कीया वहु प्रीयसुं, नयन मिलाई तार ॥५९॥

छीपनि करइ वधाईयां, जउ सब आए दिट्ठ ।
अति रगिराती प्रीयसु, ज्यउ कापडइ मजीठ ॥६०॥

योवन वालइ लटकती, रसि कसि भरी कलालि ।
हसि हसि लागइ प्रीय गलि, करि करि वहुती आलि ॥६१॥

मालनि तिलक दीपाईया, कीया सिंगार अनूप ।
आया पीय सुनारि का, चढ्या चवगणा रूप ॥६२॥

पी आया सुख सपज्या, पूगी सवइ जगीस ।
तब वह पचइ कामिनी, लागी दयन असीस ॥६३॥

हु उ वारी तेरे बोलकुं, जहि वरणवी सुट्ठाइ ।
छीहल हम जग माहि रही, रह्या हमारा नाव ॥६४॥

धनिस मंदिर धन्न दिन, धनस पावस एह ।
धन्न वल्लभ घरि आईया, धनस चुट्ठा मेह ।।६५।।

निस दिन जाइ आनद मइ, विलसइ बहु विध भोग ।
छीहल्ल पंचइ कामिनी, आई पीय सजोग ।।६६।।

मीठे मन के भावते, कीया सरस वखारण ।
अरण जाण्या मूरिख हसइ, रीझइ चतुर सुजांरण ।।६७।।

संवत् पनर पचहुत्तरइ, पू निम फागुरण मास ।
पच सहेली वरणवी, कवि छीहल्ल परगास ।।६८।।

।। इति पंच सहेली गीत सम्पूर्ण ।।

लिख्यतं परोपकाराय ।। श्री रस्तु ।।

□ □ □

गुटका संख्या ६६ । पत्र संख्या ११–१२ । शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर लूणकरणजी पांडे, जयपुर ।

२. बावनी

अोंकार आकार, रहित अविगति अपरम्पर ।
अलख अजोनी सभ, सृष्टिकरता विश्वम्भर ।
घट घट अन्तर वसइ, तासु चीन्हइ नहि कोई ।
जल थलि सुरगि पयालि, जिहा देखो तिहँ सोई ।
जोगिन्द सिद्ध मुनिवर जिके, प्रबल महातप सद्धयौ ।
छीहल्ल कहइ अस पुरुष कौ, किण ही अन्त न लद्धयौ ।।१।।

नाद श्रवण ध्यावन्त, तजइ मृग प्राण ततष्षिण ।
इन्द्री परस गयन्द, वास अलि मरइ विचष्षण ।
रसना स्वाद विलग्गि, मीन वज्झइ देषन्ता ।
लोयण लुब्रुध पतग, पडइ पावक पेषन्ता ।
मृग मीन भंवर कुंजर पतग, ए सब विणसइ इक्क रसि ।
छीहल कहइ रे लोइया, इन्दी राषउ अप्प वसि ।।२।।

मृग वन मज्झि चरति, डरिउ पारधी पिक्खि तिहि ।
जब पाछिउ पुनि चल्यो, वधिक रोपियउ फद तिहि ।
दिसि दाहिणी सु स्वान, सिंह ज्यु सनमुष धावै ।
वाम अगिनि परजलिय, तासु भय जाण न पावै ।
छीहल्ल गमण चहु दिसि नही, चित चिता चितउ हरण ।
हा हा देव सकट परयौ, तुझ बिन अवर न को सरण ।।३।।

सबल पवन उतपन्न, अगिनि उडि फद दहे सब ।
ततषिण धन वरसत, तेज दावानल गौ तब ।
दिसि दाहिणी जु स्वान, पेषि जबुक कौ धायउ ।
जब जान्यौ मृत जात, चित्त पारधी रिसायउ ।
ताणत[1] धनुष[2] गुण तुट्टिगौ, दिसि च्यारउ मुगती भई ।
छीहल न को मारवि सकै, जिहि रष्षण हारा दई ।।४।।

---

१. अनचिन्त
२. वाण

धन्य ति नर सलहिजै, जे हि परकज्जु सवारण ।
भीर सहै तन आपु, सामि सकट्ट उत्तारण ।
कंधो धर कुल मज्झि, सभा सिंगार सुलक्खण ।
विनयवत वड॰चित्त, अवनि उपगार विचष्पण ।
आचार[1] सहित अति हित्त सौ, धरम नेम पालै घणो ।
पर तरुणि पेष्खि छीहल कहै, सील न पडइ आपणो ।।५।।

अवनि अमर नहि कोई, सिद्ध साधक अरु मुनिवर ।
गण गधर्व मनुष्य, जिष्य किन्नर असुरासुर ।
पन्नग पावक उदधि, भार तरुवर अष्टादस ।
ध्रुव[2] नषित्र ससि सुर, अन्त सव षपै काल वस ।
प्रस्ताव पिष्खि रे नर चतुर, ता लगि कीजइ ऊंच कर ।
तिहुं भुवन मज्झि छीहल कहइ, सदा एक कीरति अमर ।।६।।

आवति जाचक[3] पेखि, द्वार सम देहु मूढ नर ।
मिष्ट वयण बुल्लियइ, विनय कीजइ वहु आदर ।
दिन दस अवसर पेखि, वित्त विलसियै सुजस लगि ।
षिण रीती षिण भरी, रहिटी घटी सारिस लगि ।
चिरकाल दसा निहचल नही, जिमि ऊगई तिमि आथमण ।
पलटियै दसा छीहल कहइ, वहुरी वात पुच्छै[4] कवण ।।७।।

इन्दी पचिय अथिय, सकति जब लगि घट निर्मल ।
जरा जजीरी दूरि, षीण न हुवै आयुबल ।
तव लगि भल पण, दान-पुण्य करि लेहु विचष्षण ।
जब जम पहुचइ आइ, सवै भूलिहइ ततष्खिण ।
छीहल कहइ पावक प्रवल, जिमि घर पुर पट्टण दहइ ।
तिणि काल कूप जो सुद्दियइ, सो उद्यम किमि निरवहइ ।।८।।

ईस ललाटह मज्झि, गेह कीयौ सु निरन्तर ।
चहु दिसि सुरसरि सहित, वास तसु कीजइ अन्तर ।

---

१. आधार
२ ध्रू नव ग्रह
३. संपति वार वार
४. बूझइ

पावक प्रवल समीपि, रहइ रखवाल रयणि दिन ।
प्रतिहार विसहर बलिष्ट, सोवइ नहि इकु छिन ।
अति जतन्न छीहल कहै, हर मस्तक हिमकर रहइ ।
पूर्व लेख चूकै नही, तऊ राहु ससि कौ ग्रहइ ।।६।।

उदरि मज्झि दस मासु, पिंड पाइयै[1] वहुत दुख ।
उर्ध होइ दुइ चरण, रयणि दिन रहइ अधोमुख ।
गरभ अवस्था अधिक जाणि चिंता चितै चित्त ।
जो छूटो इहि बार, वहुरि करहौ निज सुकृत ।
वोलइ जु बोल संकट पडइ, बहुरि जन्म जग महि भयौ ।
लागी जु वाउ छीहल कहइ, सर्वं मूढ वीसरि गयौ ।।१०।।

ऊसरि फागुण मास, मेह बरसइ घोरकरि ।
विधवा पतिव्रत तणौ, रूप जोवण आनन परि ।
कवियण गुण विस्तार, नृपति अविवेकी आगे ।
सुपनन्तर की लच्छि, हाथ आवइ नहि जागे ।
करवाल कृपण कायर करह, सुन्न[2] गेह दीपक्क ज्युं ।
कवि छीहल अकारण एह सव, विनय जु कीज्यै नीच स्युं ।।११।।

रितु ग्रीषम रवि किरण, प्रबल आगइ निरन्तर ।
पावक सलिल समूह, अधर झिल्लउ धारा धर ।
सीतकाल सीतल तुषार, दूरन्तर टाल्यउ ।
पत्त सही दुखत्थ, अधिक मित्तप्पण पाल्यउ ।
रे रे पलास छीहल कहै, धिक धिक जीवन तुझ तणौ ।
फुल्लयौ पत्त अब मूढ तजि, ए अजुत्त कीधौ घणौ ।।१२।।

रीति होइ सो भरै, भरी खिण इक वै ढालै ।
राई मेर समाणि, मेर जड सहित उषाले ।
उदधि सोषि थल करै, थलहि जल पूरि रहै अति ।
नृपति मगावइ भीख, रंक कूं थपै छत्रपति ।
सब विधि समर्थ भजन घडन, कवि छीहल इमि उच्चरै ।
इक निमिष माहि करता, पुरुष करण चहै सोई करै ।।१३।।

१ देखियै
२ सुनि मेह दीपक ज्युं

लिषा तणइ परमाणि, राम लष्षण वनवासी ।
सीय निसाचर हरी, भई द्रोपदि पुनि दासी ।
कुंती सुन वैराट गेह, सेवक होइ रहिया ।
नीर भर्यो हरिचंद, नीच घर बहु दुख सहिया ।
आपदा पडी परिग्रह तजि, भ्रमे[1] इकेलउ नृपति नल ।
छीहल कहइ सुर नर असुर, कर्म रेष व्यापइ सकल ।।१४।।

लीन्ह कुदाली हत्थ प्रथम, षोदियउ रोस करि ।
करि रासभ आरूढ, घालि आणियउ गूण भरि ।
देकरि लत्त प्रहार, मूढ गहि चक्क चढायौ ।
पुनरपि हत्थहि कूटि, धूप धरि अधिक सुकायौ ।
दीन्ही जु अगिनि छीहल कहइ, कुंभ कहइ हउं सहिउ सब ।
पर तरुणि आइ टकराहणी, ए दुख सालइ मोहि अब ।।१५।।

ए जु पयोहर जुगल, अबल उरि मज्झि उपन्ना ।
अति उन्नत अति कठिन, कनक घट जेम रवन्ना ।
कहि छीहल पिण इक्क, दृष्टि देषता चतुर नर ।
धरणि पडइ मुरझाइ, पीर उपजत चित अन्तर ।
विधना विचित्र विधि चित्त करि, ता लगि कीन्हउ कृष्णमुख ।
होय श्याम वदन तिह नर तणौ, जो पर हृदय देइ दुख ।।१६।।

ए ए तूं द्रुमराइ, न्याइ गरुवत्तण तेरो ।
प्रथम विहंगम लच्छ, आइ तह लीयो बसेरो ।
फल भुंजै रस पिये, अन्नर संतोषइ काया ।
दुष्प सहै तन अप्प, करइ अवरन कूं छाया ।
उपकार लगै छीहल कहइ, धनि धनि तू तरुवर सुयण ।
सचइ जिमि सपइ उदधि पर, कज्जि न आवै ते कृपण ।।१७।।

अमृत जिमि सुरसाल, चवति धुनि वदन सुहाई ।
पषिन महि परसिद्ध, लहैं सो अधिक वडाई ।
अब वृक्ष महि वसइ, ग्रसइ निर्मल फल सोई ।
ये गुण कोकिल अग, पेषि वदहि नहि कोई ।

---

१. भग्यो

१. तेहि

पापिष्ठ नीच षजन सुतौ, करम सदा क्रमि मल भुगति ।
छीहल्ल ताहि पूजइ जगत, करम तणी विपरीत गति ।।१८।।

अहनिस मज्जै मच्छ, कच्छ जल मज्झि रहै नित ।
मौन सहित बक ध्यान, रहै लवलीन इक्क चित ।
ऊदर गुफा निवास, भसम गादहो चढावइ ।
पवन अहारी सर्प, अग गाडरी मुडावइ ।
इनि माहि कहउ किण पद लह्यौ, कहा जोग साँचै जुगति ।
छीहल कहै निष्फल सबै, भाव बिना न हुवै मुगति ।।१९।।

कबहू सिर धरि छत्र, चढवि सुष्षासन धावइ ।
कवहू इकेलौ भ्रमै, पाइ पाणही न पावइ ।
कबहि अठारह भष्ष, करइ भोजन मन वछित ।
कबहि न षलु सपजइ, षुधा पीड़ित कलपै चित्त ।
लभै न कवहू तृण सथ्थरौ, कबहि रमइ तिय भाव रसि ।
वहु भाइ छद छीहल कहइ, नर चित नच्चइ देव बसी ।।२०।।

खत्तिय रणि भज्जनो, विप्प आचार विहीणौ ।
तपीयै जीति कइ अगि, रहै चित्त लालच क्षीणौ ।
तीय जु अति निर्लज्ज, लज्ज तजि घरि घरि डोलइ ।
सभा माहि मुषि देखि, साषि जउ कूडी वोलइ ।
सेवक स्वामी द्रोह करि, सग रहइ न इक्क षिण ।
छीहल कहइ सो परिहरि, नृपति होइ विवेक बिण ।।२१।।

गरब न कर गुणहीन, अरे कचन के गिरवर ।
तो समीपि पाषाण, अथ्थि तरुवर ते तरुवर ।
किये न अप्प अमान, वृथा गुरुवत्तण तेरउ ।
मलयाचल सलहिजै, सुजस तस सगति केरउ ।
कटु तिक्त कुटिल परिमल रहित, तरू अनत जे वन थया ।
श्री षड सगि छीहल कहइ, ते समस्त चदन भया ।।२२।।

घरी घरी नृप द्वार[1], एह घडियालउ वज्जै ।
कहै पुकारि पुकारि, आउ षिणही षिण छीज्जै ।

१. गेहि

सपति सास सरीर, सदा नर नाही निसचल ।
पुरइणि पत्र पतत बूंद जल लव जिमि चंचल ।
इमि जानि जगत जातौ, सकल चित चेतौ रे मूढ नर ।
ऊवरै जु तौ छीहल कहइ, दीजिइ दाहिण उच्चकर ॥२३॥

ग्यान बत सुकुलीण, पुरुष जो हो धनहीना ।
विषम अवस्था पडइ, वयण नही भाषै दीनां ।
नीच करम नहिं करइ, रोरु जो अधिक सतावइ ।
वरि मरिवौ अग वै, निमिष सो नाक न नावइ ।
छीहल कहै मृगपति सदा, मृग आमिष भष्यन करै ।
जो वहुत दिवस लघण पगै, तऊ न केहरि तृण चरै ॥२४॥

चैत मास वनराइ, फलहि फुल्लहि तरुवर सहि ।
तो[1] क्यो दोस वसन्त, पत्त होवइ करीर नहु ।
दिवस उलूक ज्यु अंध, ततौ रवि को नहिं अवगुण ।
चातक नीर न लहइ, नत्थि दूषण वरसत घण ।
दुष सुष दईव जो निर्मयौ, लिषि ललाटा सोइ लहइ ।
विषमाद न करि रे मूढ नर, कर्म दोष छीहल कहइ ॥२५॥

छाया तरुवर पिष्षि, आइ वहु वसै विहगम ।
जव लगि फल सम्पन्न, रहैं तव लगि इक सगम ।
विहवसि परि अवथ्य, पत्त फल झरै निरन्तर ।
पिण इक तथ्य न रहइ, जाहि उडि दूर दिसंतर ।
छीहल कहै द्रुम पषि जिम, महि मित्त तणु दव्व लगि ।
पर कज्ज न कोऊ वल्ल हौ, अप्प सुवारथ सयल जगि ॥२६॥

जलज बीज जल मज्झि, तरुणि[2] रूप्पसि किहि कारण ।
मो मन इच्छा एह, अमरवल्ली विस्तारण ।
सुदरि इहि ससार, किया कोइ किरत न जाणइ ।
जे गुण लपउ करोरि, सुतौ अवगुण करि मानइ ।
अवला अयानि इक सिष्प सुनि, जौ फुल्लै उल्लास भरी ।
छीहल कहै एइ कमल, तव करि हैं तूअ वदन सरि ॥२७॥

१ ता किम
२ वरणतरपिसि

झीण लक पदमिणी, सेजि नही रमी सुरति रस ।
अरियण असिवर धार, त्रास कीन्हैं न अप्प बस ।
सुज्जस कज्ज ससार, दब्ब दीनौ न सुपत्तह ।
बोरे अपणइ चहुत, चाव पिष्यिौ न चित्तह ।
कर्‌यौ न सुकृत के करम मन, कलि अवतरि छीहल्ल भनि ।
उद्यान मज्झि जिमि मालती, तिमि नर जनम अकियथि गिनि ।।२८।।

निरमल चित्त पवित्त, सदा अच्छै उत्तम मति ।
जो उह बसइ कुठाइ, तासु नहि भिदै कुसगति ।
तिह समीपि सठ वहुत, मिलिब जौ करइ कुलच्छण ।
सुभ सुभाव आपणौ, तऊ मुक्कइ न विचच्छण ।
श्रीषड सग जिम रयणि दिन, अहि असपि बेठ्यौ रहै ।
तद्वपि सुबास सीतल मलय, विष न होय छीहल कहै ।।२६।।

टलै न पुव्व निवद्ध, मित्त मत दीनौ भाषे ।
जब आयुर्बल घटै, षिनक तब कोइ न राषै ।
विनय न करि अनकाज, मूढ जन जन के आगै ।
गुरूवत्तन मम हारि, लोभ लिषमी कै लागै ।
आवै अवसर अनपार थी, जेम मीचु तिम जानि धन ।
छीहल्ल कहै द्रिढ सग्रहौ, मान न मुक्कौ निज रतन ।।३०।।

ठाकुर मित्त जु जाणि, मूढ हरषइ जे चित्तह ।
निज तिय तणउ विसास, करइ जिय महि जे मित्तह ।
सरप सुनार रू पारस रस, जे प्रीति लगावहि ।
वेस्या अपणी जाणि, छयल जे छन्द उछावहि ।
विरचत वार इन कछु नही, मूरिख नर जे रूचिया ।
छीहल्ल कहइ ससार महि, ते नर अति विगूचिया ।।३१।।

डरपइ दादुर सद्द, वाह घालै केहरि गलि ।
वूडइ कूंडइ नीर, तिरै नद जाइ अथगि जल ।
मरइ फूल कै भार, सीस धरि पर्वत टालइ ।
कपई ऊदरि देखि, पकरि धरि कुंजर रालइ ।
सीदरी देखि सकै सदा, विषहर कौ वल वट ग्रहइ ।
छीहल सुकवि जपइ वयण, तिरिय चरित्र को नवि लहइ ।।३२।।

ढोलि कुंभ जे अमी, सोइ पूरति सुरा जलि।
कसतूरी परिहरइ, नीच सग्रहइ कथू पलि।
कचरण पीतलि तणौ, जहाँ कोइ भेद न जाणै।
तरूवर अब उपारि, अरड रोपे तिहि थाणै।
गुण छाडि निगुण जड मानियै, जस तजि अपजस संचियै।
सो थान सुकवि छीहल कहै, दूरन्तर ही बंचियै ।।३३।।

णिसि वासर जिय आस, बसै उन वूंदन केरी।
चचु न वोरइ अवर, ठाउ नदि तिथ्थ घनेरी।
आदर विण घर सलिल, पिष्षि परिहरइ ततच्छण।
सरवर निर्झर कूअ, सीस नावइ न विचच्छण।
छीहल्ल कहइ गल गज्जि करि, जो जल उल्हरि देइ घन।
चातक्क नीर ते परि पियै, न तो पियासौ तजै तन ।।३४।।

तरू कदली कुहकत, कीर ऊंचौ द्रुम दिठ्ठौ।
कोमल फल तजि मूढ, जाइ नालेर बइठ्ठौ।
छुधा प्रबल तनि भइ, ग्रसन कंह ठुकज दिन्नी।
आसा भइ निरास, चचु विधना हर लिन्नी।
मति हीण पषि छीहल कहइ, सिर धुनि रोवइ भरि नयण।
सुक जेम सु नर पछिताइ हैं, जे होईहि संतोष विण ।।३५।।

थौरो थौरो माहि, समय कछु सुकृति कीजइ।
विनय सहित करि हित्त, वित्त सारै दिन दीजइ।
जब लगि सास सरीर, मूढ विलसहु निज हत्थहि।
मुवा पछै लपटी, लच्छि लग्गै नहिं सत्थहि।
छीहल कहइ बीसल नृपति, सचि कोडि उगणीस दव्वु।
लाहो न लियौ भोगव्वि करि, अतकाल गो छाडि सव्वु ।।३६।।

दरबु गाडि जिन धरहि, धरो किछु काम न आवइ।
विलसि न लाहो लेइ, सु तो पाछै पछतावइ।
नर नरिंद नर मुवनि, सचि सपइ जे मूवा।
तै वसुधा मैं बहुरि, जनमि सूकर कै हूवा।
धनकाज अधोमुष दसन सिउं, धरणि विदारहि रयणि दिन।
छीहल्ल कहइ सोचत फिरै, कहू न पावहि पुण्य बिण ।।३७।।

घन ज्यु ललाटहिं लिष्यौ, तुच्छ बहुतौ विधि अच्छर।
सो न मिटै सुनि मूढ झंप दीजइ रयणायर।
रचि करि कोडि उपाय, सकल संसारहिं धावइ।
पौरुष जाणि विनाणि कियै कछु अधिक न पावइ।
छीहल्ल कहै जह जहं फिरइ कर्म बध तह तह लहै।
पिष्षौ यह कूश्र समुद्र मह घट प्रमाणि जल सग्रहै ॥३८॥

नीच सरिस नही प्रीति, वैर कीजइ न अवस करि।
मध्य भाइ आछियै, सग छाडिय दूरतरि।
हित अथवा अनहित, चित चितवै बुरि मति।
निसचय सुख की हानि, दुष्ष उपजै दहू गति।
छीहल कहै पिष्षहु प्रगट, कर अंगारहिं कोउ धरै।
दाझै निवद्ध तातौ लियै, सीरौ कारौ कर करै ॥३९॥

पत्त सुतौ अति तुच्छ काज नहिं आवै कत्थह।
फल वाकस रसहीण, छाह निंदीअ कियथ्थह।
साषा कटक कोटि, लेइ पषी न वसेरउ।
छीहल गुणियन कहइ, कौन गुण वरणौ तेरउ।
र रे ववुलनि लच्छण निलज, पापी परहु न उपगरै।
जो देहि फूल फल अवर तरू, तिनहु की रष्षा करै ॥४०॥

फिर चउरासी लष्ष, जोणि लद्धौ मानुष जम।
सो निसफल न गंवाइ, मूढ कीजइ सुकृत क्रम।
कनक कचोली मज्झि मूढ भरि छारिन नाखिसि।
कल्पवृक्ष उष्षेलि, मूढ एण्डम रष्षिसि।
वायस्सि उडावण कारणौ, चिंतामणि क्यो रालियै।
छीहल कहै पीयूष सौं, नाऊ पाव पषालियै ॥४१॥

वसुधा विश्वामित्र, सरिस जे तपिय गरिट्ठा।
सपति ते भोगवै, रहै वनपडहि वैठा।
लोभ मोह परिहरै, किया इन्द्री पचे वस।
तरुणि वदन निरषत, तेइ पुनि परइ काम रस।
आहार करहिं पटरस सहित, पचामृत जुगति सिम।
छीहल्ल कहै तिहि पुरुष कौ, इन्द्री निग्रह होइ किम ॥४२॥

भ्रमर इक्क निसि भ्रमै, परी पकज के सपुटि ।
मन महि मडै श्रास, रयणि पिण माहि जाइ घटि ।
करि हैं जलज विकास, सूर परभाति उदय जव ।
मधुकर मन चितवै, मुक्त ह्वै हैं वन्धन तव ।
छीहल द्विरद ताही समय, सर सपत्तउ दइव वसि ।
अलि कमल पत्र पुडडणि सहित, निमिष माहि सौ गयौ ग्रसि ।।४३।।

मग्गि चलहु कुलवहि, जेणि विकसै मुख[1] सज्जन ।
होइ न जस की हाणि, पिष्पि करि हसइ न दुज्जन ।
जप तप सजम नेम, धर्म आचार न मुक्कइ ।
परमष्षर निज एह, क्रिया आपनी न चुक्कइ ।
पर तरुणि पाप अपवाद परि दूरन्तर ही परिहरउ ।
मन वचन काय छीहल कहैं, पर उपकारहि चित धरउ ।।४४।।

जव लगि तरुवर राइ, फुल्लि करि फलिय विवह परि ।
तव लगि कंटक कोटि, रहै चहुं दिसा वेढि करि ।
पपी आसा लुद्ध, त्रिष्य तक्कवि जो आवइ ।
फल पुनि हथ्थ न चढै, छाह विश्राम न पावइ ।
छीहल्ल कहै हो अव सुणि, यह अवगुण सपति थियै ।
तो सदा काल निरफल फलौ, जिहि सुख छांह विलवियै ।।४५।।

रे रे दीपक नीच, लष्प अवगुण तुअ अंगह ।
पत्तहि करइ कुपत्त, प्रकृति सुभाव मलिन रगह ।
वत्तिय गुण निरदहण, तैल सनेह घटावन ।
जिहि थानक तूं होइ, तिहा कालिमा लगावन ।
छीहल्ल कहै वासर समय, मान न लम्भै इक्क चुष ।
जो सहस किरण रवि अथ्थवइ, तौ जग जोवै तुज्झ मुष ।।४६।।

लच्छण ससि कह दीन्ह, कीन्ह अति पार उदधि जल ।
सफल एरण्ड धतूर नागवल्ली सो नीफल ।
परिमल विणु सोवन्न, वास कस्तूरी विविध परि ।
गुणियन सपत्ति हीण, वहुत लच्छीय कृपण वरि ।

१ मन

तिय तरुण वयस[1] विधवा पणउ, सज्जन सरिस वियोग दुष ।
इत्तनै ठाम छीहल्ल कहइ, किया विवेक न विधि पुरुष ।।४७।।

ओछो सज्जन प्रीति, अवर पुनि छाया बद्दल ।
दासी सरिष सनेह, अवर वरषइ जु ओस जल ।
सरवरि छीलरि पानि, अगिनि तृण केरउ तप्पन ।
विडह सरिस भड वाउ, पिष्षि[2] गब्बहु जिनि अप्पन ।
का पुरुष बोल वेस्याविसन, एता अत न निरवहै ।
विस्वास करइ ते हीण मति, साचि वयण छीहल कहै ।।४८।।

ससि उगवनि जो कवल मज्झि मकरंद पियो जिहि ।
विकसित चित्त उल्हास, वास केतकी लई तिहि ।
कुंभस्थल गय मय प्रवाह, ग्रस्यो कदली वन ।
सरस सुगन्ध जु पुहुप, विहसि[3] पुञ्जइय रली मन ।
छीहल्ल विविह वणराइ, जिहि रितु मानी अप्पन समै ।
सो भ्रमर अबहि विधि पुरुष बसि, अक्क करीरहि दिन गमै ।।४९।।

षल दुज्जन मुष विवर, मज्झि निवसहि जे कुवचन ।
तेई सरप समान, होइ लागहिं घटि सज्जन ।
सोषइ सकल सरीर, लहरि आवइ जोवतह ।
मूली गद गारूडी, गिनै नहिं तत न मतह ।
उपचार इक्क छीहल कहै, सुणिय विचष्षण उत्तमा ।
विष दोष निवारण कारणै, निज औषध साधउ पिमा ।।५०।।

समय जु सीत वितीत, वृथा वस्तर बहु पाए ।
षीण पुधा घटि गई, वृथा पचामृत षाए ।
वृथा सुरति समोग, रयणि के अत जु कीजइ ।
वृथा सलिल सीतल सु तासु, विण तृषा जु पीजइ ।
चातक कपोत जलचर मुए, वृथा मेघ बहु जल दए ।
सो दान वृथा छीहल कहै, जो दीजइ अवसर गए ।।५१।।

---

१ वेस
२ जन जे ज्ञापन
३ विलसि

हइ धनवत आलसी, ताहि उद्यमी पयम्पइ ।
क्रोधवत अति चपल, तऊ थिरता जग जम्पइ ।
पत्त कुपत्त न लखइ, कहइ तसु इच्छाचारी ।
होइ बोलण असमथ्थ, ताहि गुरु वत्तन भारी ।
श्रीवन्त लच्छ अवगुण सहित, ताहि लोग करि गुण ठवइ ।
छीहल्ल कहै ससार महि, सपति को सहु को नवइ ।।५२।।

चउरासी अग्गला, सइ जु पनरह सवच्छर ।
सुकुल पष्य अष्टमी, मास कातिग गुरुवासर ।
हृदय उपन्नी बुद्धि, नाम श्री गुरु को लीन्हो ।
सारद तणइ पसाइ, कवित सपूरण कीन्हो ।
नाल्हिग वस सिनाथू सुतन, अगरवाल कुल प्रगट रवि ।
बावन्नी वसुधा विस्तरी, कवि ककण छीहल्ल कवि ।।५३।।

इति छीहल कृत बावनी सपूर्ण समाप्त । सवत १७१६ लिखित पाडे वीरू लिख्यापित व्यास हरिराम महला मध्ये । राज श्री स्योवसिंघ जी राज्ये सवत १७१६ का वर्षे मिती वैसाख सुदी ५ शनिसरवार ।। शुभ भवतु ।।[1]

□□□

१ शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर लूणकरण जी पाडे जयपुर गुटका सख्या १४० ।

३. पंथी गीत

इक पथी पथ चलतौ, वन सिहनि माहि पहुतौ ।
भूलौ ऊबट दह दिसि धावै, वह मारग कहियन पावै ।
पावै न मारग विषम वन मै, फिरै भ्रमि भटकत ह्वो ।
देखियौ तहा सामहौ आवत, गरुव गज मयमत हो ।
सौ रौद्र रूप प्रचड सु डा, दड फेरै रिस भर्यौ ।
भयभीत होइ कंपिया लागो, पथिक चित्त अतरि डर्यौ ॥१॥

ता देखि सु पथी भागौ, वाकी पूठिहि कुंजर लागौ ।
जीव कै डरि आतुर धायौ, आगै कूप हुतौ त्रिण छायौ ।
त्रिण छयौ कूप जुहु तौ आगै, बिचि वेलि छवि रह्यौ ।
तिहि माहि पथिक पड्यौ अजानत, भेद भौदू ना लह्यौ ।
वंहि गही अवलबि वाकारणि, और कछु न पाइयौ ।
कूचडौ एक सरकनौ केरौ, पड्त हाथें आइयौ ॥२॥

तब सरकन दिढ करि गहियौ, झूलत दारण दुख सहियौ ।
सिर ऊपरि गदौ गयदा, दिसि च्यार्यौ चारि फुणिदो ।
चहु दिसि हि चारि फुणिद न्यौली, वधे करि वैठे जहा ।
तलि मुख पसारि विरह्यौ अजिगर, ग्रसन कै कारणि तहा ।
सित असित द्वै देखिया मूषक, जड खणै सरकन तणी ।
सकट पड्यौ अव नहि उवरण, करै चिता चिते घणी ॥३॥

कुवा ढिग इक विरख बडे रौ, तहा छातौ लग्यौ महुके री ।
नहि हसती हलाई डाली, मोखी अगनित उडी विसाली ।
मोखी विसाली उडिवि अगनित, लगि उडी वैहि नर तणै ।
उपसर्ग अगि करै घणैरी, तास को सख्या गिणै ।
वहि समै मधुकण अहर ऊपरि, पडत रस रसना लियौ ।
वा विन्दु कै सुखि लागी लोभी, सवै दुख वीसरि गयौ ॥४॥

मधु विन्दु जु सुख ससारो, दुख वरणत लहु वनयारी ।
जीव जाणो पथिक समानो, अग्यान निवड उद्यानो ।
उद्यान घन अग्यान गिनिजै, जम भयानक कुंजरो ।
भव अंध कूपरु चारो गति, अहि मखिक व्याधि निरतरो ।
अजिगर सु एहु निगोद वोयम, भखत जगत न धापये ।
द्वै पक्ष उज्जजल किसन मूषक, आयु खिण खिण का पये ।।५।।

ससार की यहु व्यवहारो, चित चेत हु क्यो न गवारो ।
मोह निद्रा में जे सूता, ते प्राणी अति विगूता ।
प्राणी विगूता वहुत ते जिनि, परम ब्रह्म विसारीयौ ।
भ्रमि भूलि इद्री तणैं रसिनर, जनम वृथा गवाइयौ ।
वहुकाल जाना जोनि दुख, दीरघ सह्या छीहल कहै ।
करि धर्म जिन भाषित जुगति स्यौ, त्यौ मुकति पदवी लहै ।।६।।

।। इति पथी गीत समाप्ता ।।

□ □ □

४. वेलि गीत

रे मन काहे कू भूलि रहे विपया वन भारी।
इह ममता मै भूलि रहे मति कुंण[1] तुहारी।
मति कुण तुहारी देखी विचारी, अति अधिक दुख पावो।
विण[2] इक मृग तिसना जल देखत, वहुडि न प्यास बुझावो।
गृह सरीर सपति सुत वधो, एतै थिरि किरि जाण्या।
श्री जिणवर की सेव न कीधी, रे मन मूरिख अयाणा ॥१॥

वहु जूणी मै भ्रमता माणस जन्म जु पायो।
है[3] देवन कू दुर्लभ सो कत वादि गवायो।
कत वादि गवायो मुढ सुढाले, काहै पाव परवालै।
काग उडावणि कारिणि कर थे, च्यतामणि काइ रालै।
इक्कु जिनवर सेव विना सव झूठा, ज्यो सुपना की माया।
वृथा[4] जन्म खोय माणस को, वहु जू णी भ्रमि आया ॥२॥

उतिम धर्म्म है जीव दया, सो दिढु करि गहिए।
अरहत ध्यानु धरिज्यो सत, सजमस्यो रहिये।
रहिये सजमस्यो परधन पर रमणी पर निंदा पर हरिये।
पर उपगार सार है प्राणी, वहुत जतन स्यौं करिये।
जव लग हस अछित काया मै, कुछ सुकृत उपावो भाइ।
अति कालि तुहि मरती वेला, हो हो धर्म्म सहाइ ॥३॥

कलि विष कोट विणासै. जिनवर नाम जु लीया।
जै घट निर्मल नाही, का तपु तीरथ कीया।
का तप तीरथ कीया, जै पर दोह न छाडै।
लपट इद्री लघु मिथ्या भ्रमु, जनमु आपणो भाडै।
छीहल कहै सुणो मन बौरे, सीख सीयाणी करिये।
चितवत परम ब्रह्म कै[5] ताई, भव सायर कूं तिरिये ॥४॥

॥ इति वेलि गीत समाप्त ॥



१. कवण (ख प्रति)   २ खिजु सुख (ख प्रति)
३. हय (ख प्रति)   ४. वृथा न खोइ जनम माणस कउ (ख प्रति)
५ वह्म स्यो रहिये जिव भव दुतर तिरिये (ख प्रति)

५. वैराग्य गीत

ऊदर उदक मैं दश मास रह्यौ, पडिवि घोमुखि बहु संकटु सह्यौ ।
कहु सहिउ सकटु उदर अंतरि, चितवै चिंता घणी ।
ऊवरो अबकी वार जेहौ, भगति करिस्यो जिण तणी ।
ए बोल सकट पडै बोलै, बहुडी जगि जामण भयौ ।
संसार का जम भूवालि लागी, मूढ तब वीसरि गयौ ।।१।।

वालक विकह अचेत········भक्षि अभक्षि ण कछु अंतरु लहै ।
लहै ना भक्षि अभक्षि अंतरु, लाल मुखि अरिल चुवै ।
पडइ लोटै धरणि उपरु, रोइ करि अमृत पिवइ ।
तनु मूत विष्टा रहै वोच्यौ, सुकृत ना कायौ कियौ ।
वीसरचो जिन भक्ति प्राणी, बाल पणौ ह्यौ हा गयो ।।२।।

जोवनि मातो नर वहु दिशि भवै, परधन परतीय ऊपरि मनु रचै ।
रचै परधनु देखि परतीय, चित्तु ठाइण राखए ।
छाडै अनीफल सेव जिनकी विषय विप फल भाखए ।
काम माया मोह व्याप्यौ प्रमत हम विसार ।
पूजइ न जिणवर स्वामि ववरो, अविरथा जोवन गालए ।।३।।

जरा बुढापा वैरी आइयौ सुधि बुधि नाठी तब पछिताइयौ ।
पछिताइयो तव सुद्धि नाठी, सयण[1] जगतु न बूझए ।
जियन कारणि करै लालच नयन जगत्तु न सूझए ।
मनु[2] कहइ छीहल सुणहि रे मन भरमि भूलौ काइ फिरै ।
करि सेव जिणवर मति सेती, जो भव समुद दूतरु तिरै ।।४।।

गुटका संख्या ६५, पाटोदी का मन्दिर जयपुर ।



---

१ श्रवण सवद न बूझए ।
२ जन कहइ छीहल सुणो रें नर भ्रमि भूलि काई फिरै ।
करि भगति जिनकी जुगति स्यौ त्यौ मुकति लीलइ वरौ ।।४।।

६. गीत

राग सोरठा

संसार छार विकार परहरि, सुमरि श्री जिण आण ।
रैं जीव जगत सुपनो जाणि ।।१।।

एक रक सारो सहर जाच्यो, सुतौ द्रुम तलि आणि ।
जाणिक वड भूपाल पोढ्यो, छत्र धारी सोक ।
खवासी विजणा वहालि ढोले, सेक रही कहि जोडि ।
एक आणि रभा पाव चुवै, वहो विधि आवै भेंट ।
ए ताही मैं जागि तौ ठीकरो सिर हेठि ।
रे जीव जगत सुपनो जाण ।।२।।

एक वाझ कै घरि तुवर वागा, जाणिक जनम्यो वाल ।
बुलाइ पण्डित बुझै जोशी होसी वह भूपाल ।
मेरो पुत्र कुमाइसी त्रिया वहुत वंधी आस ।
ए ताही मै जाणि देखे तौ नाखिया रानिसास ।
रे जीव जगत सुपनो जाण ।।३।।

एक निरधन जानै हुवो धनवत सो भी गभी पूरि ।
अर्थ दर्व वहुभऱ्या भण्डा वधु निधि बाधी आस ।
एता मे ही जागि देखे नही कोडी पासि ।
रे जीव जगत सुपनो जाण ।।४।।

एक मूरिख जानै हूवौ पण्डित मुखा चारयौ वेद ।
नाग आगम सवही सूझयो तीन भवन तन मोखि ।
एता मे ही जागि देखे तो नही आखिर रेव ।
रे जीव जगत सुपनो जाण ।।५।।

संसार सुपनो सवै जाण्यो जाण्या कछू न होइ ।
कहै छीहल सुमरि जीवडा जिण भज्या चलो होइ ।[1]
रे जीव जगत सुपनो जाण ।।६।।



१ गुटका संख्या ८, शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर गोधान जयपुर ।

३

चतुरुमल

१६ वी शताब्दि के अन्तिम चरण मे होने वाले जितने हिन्दी जैन कवि अल्प ज्ञात हैं उनमे चतुरुमल अथवा चतुरु कवि भी है। राजस्थान के जैन ग्र थागारो मे अभी तक ऐसे सैंकडो कवि पोथियो मे वन्द हैं जिन्होने हिन्दी भाषा मे कितनी ही सुन्दर रचनाए लिखी थी और अपने युग मे प्रसिद्धि प्राप्त की थी। लेकिन समय के अन्तराल ने ऐसे कवियो को पर्दे के पीछे धकेल दिया और फिर वे सामने आ ही नही सके।

कुछ वडे कवि तो फिर भी प्रकाश मे आ गये और उनका अध्ययन होने लगा लेकिन कितने ही कवि जिन्होने लघु रचनाए लिखी, पद एव सुभाषित लिखे तथा पुराणो के आधार पर चरित व रास लिखे, वावनी व बारहमासा लिखे, ऐसे पचासो कवि अभी तक भी गुटको मे वन्द है और उन्होने हिन्दी की जो अमूल्य सेवाए की थीं वे अभी तक हमारे से ओझल है।

जैन कवियो के हिन्दी मे केवल चरित एव रास सज्ञक प्रवन्ध काव्य ही नही लिखे किन्तु साहित्य के विविध रूपो मे अपनी कृतियो को प्रस्तुत करके हिन्दी के प्रचार प्रसार मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होने स्तोत्र, पाठ, सग्रह, कथा, रासो, रास, पूजा, मगल, जयमाल, प्रश्नोत्तरी, मत्र, अष्टक, सार, समुच्चय, वर्णन, सुभाषित, चौपई, शुभमालिका, निशाणी, जकड़ी, व्याहलो, वधावा, विनती, पत्री, आरती, बोल, चरचा, विचार, वात, गीत, लीला, चरित्र, छद, छप्पय, भावना, विनोद, काव्य, नाटक, प्रशस्ति, धमाल, चौढालिया, चौमासिया, बारामासा, वटोई, वेलि, हिंडोलणा, चूनडी, सज्झाय, वाराखडी, भक्ति, वन्दना, पच्चीसी, वत्तीसी, पचासा, वावनी, सतसई, सामायिक, सहस्रनाम, नामावली, गुरुवावली, स्तवन, सवोधन, एव मोडवो सज्ञक रचनायें निवद्ध करके अपने विशाल ज्ञान का परिचय दिया। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दो मे इन विविध साहित्य रूपो मे से किसका कब प्रारम्भ हुआ और किस प्रकार विकास और विस्तार हुआ यह

शोध के लिए रोचक विषय है । इन सब की बहुमूल्य सामग्री देश के जैन ग्रन्थागारो मे उपलब्ध होती हैं ।[1]

लेकिन साहित्य के उक्त विविध रूपो के अतिरिक्त अभी तक और भी बीसो रूप हैं जिनकी खोज एव शोध आवश्यक है। अभी हमे साहित्य का एक रूप "उरगानौ" प्राप्त हुआ है । जिसके रचयिता हैं कविवर चतुरुमल अथवा चतुरु ।

कवि परिचय

चतुरुमल १६ वी शताब्दी के अन्तिम चरण के कवि थे। यद्यपि इनकी अभी तक अधिक रचनाए उपलब्ध नही हो सकी हैं लेकिन फिर भी उपलब्ध कृतियो के आधार पर कवि श्रीमाल जाति के श्रावक थे । दि० जैन धर्मानुयायी थे तथा गोपाचल ग्वालियर के रहने वाले थे ।[2] कवि के पिता का नाम जसवत था ।[3] अपने पिता के वे इकलौते पुत्र थे। कवि ने अपने परिचय मे लिखा है कि जन्म लेते ही उसका नाम चतुरु रख दिया गया। कवि की शिक्षा दीक्षा कहा तक हुई इसकी तो विशेष सूचना प्राप्त नही है किन्तु नेमिपुराण सबसे अधिक प्रिय था और उसी के आधार पर उसने 'नेमीश्वर का उरगानो' काव्य की रचना की थी । क्योकि उसने अनेक पुराणो को सुना था तथा स्वाध्याय की थी लेकिन हरिवंश पुराण मे उसका सबसे अधिक आकर्षण हुआ। उस समय वहा धवल पण्डित रहते थे। वे साहसी एव धैर्यवान थे ।[4] उन्ही के पास कवि ने पुराणो का अध्ययन किया था। और उसी अध्ययन के आधार पर प्रस्तुत कृति की रचना की थी ।

रचनाएँ

कवि ने हिन्दी मे कब से लिखना प्रारम्भ किया इसकी तो अभी खोज होना शेष है लेकिन सवत् १५६९ मे उसने गोपाचल गढ मे आकर के गीतो की रचना

१ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची—भाग चतुर्थ पृ० ४ ।

२ मधि देसु सुख सयल निधान, गढु गोपाचलु उत्तिम थानु ।।४४।।

३ श्रावगु सिरमलु अरु जसवत निहचै जिय धर्म धरंत ।
चरु चल नभवि वदतौ, पुत्र एकु ताके घर भयौ ।
जनमत नाम चतुरु तिनी लियो, जैनधर्म दिढु जीवहु धरौ ।।४३।।

४ सुनि पुरानु हरिवंस गम्हीर, पंडित धवलु जु साहस धरि ।
तिनिसु तरया निजु रचि कियौ, कलि केवलि जो त्रिभुवन सारु ।।२।।

प्रारम्भ की थी ।[1] अभी तक हमे कवि के चार गीत उपलब्ध हो सके हैं और चारो ही एक गुटके मे सग्रहीत है ।

कवि की सबसे बडी रचना "नेमीश्वर की उरगनौ" है । इस को कवि ने ग्वालियर मे सवत् १५७१ मे भादवा बुदी पचमी सोमवार को समाप्त की थी । उस दिन रेवती नक्षत्र था ।[2] इसमे ४५ पद्य हैं । तथा नेमिनाथ एव राजुल के विवाह की घटना का प्रमुखत वर्णन है ।

उक्त रचनाओ के अतिरिक्त कवि ने और कौन कौनसी कृतिया निबद्ध की इसका अभी पता नही चल पाया है लेकिन यदि मध्य प्रदेश के शास्त्र भण्डारो मे खोज की जावे तो सभवत. कवि की और भी रचनायें उपलब्ध हो सकती हैं ।

कवि ने ग्वालियर के तोमर शासक महाराजा मानसिंह के शासन का अवश्य उल्लेख किया है तथा ग्वालियर को स्वर्ण लका जैसा वतलाया है । महाराजा मानसिंह की उस समय चारो ओर कीर्ति फैली हुई थी तथा अपनी भुजाओ के बल से वह जग विख्यात हो चुका था । ग्वालियर मे उस समय जैन धर्म का प्रभाव चारो ओर व्याप्त था । श्रावकगण अपने षट्कर्मो का पालन करते थे तथा उनमे धर्म के प्रति अपार श्रद्धा थी ।

कवि के कुछ समय पूर्व ही अपभ्र श के महाकवि रइधू हो चुके थे जिन्होने अपभ्र श मे कितने ही विशालकाय काव्यो की रचना की थी । रइधू ने जिस प्रकार ग्वालियर का, वहा के श्रावको का, तोमर वशी राजाओ का वर्णन किया है लगता है ग्वालियर दुर्ग का वही ठाट बाट कवि चतुरुमल के समय मे भी व्याप्त था । लेकिन चतुरु ने न रइधू का नामोल्लेख किया और न नगर के साहित्यिक वातावरण का ही परिचय दिया ।

कवि के जिन रचनाओ की अब तक उपलब्धि हुई है उनका परिचय निम्न प्रकार है—

१. **गीत**—(ना जानो हो को को पैरे ढीलरीया कत जाई)

---

१ चत्रु श्रीमाल वासुदेव वगी । गति गारि की आइ कीयो गढ नर संवत् १५६६ को । गुटका – शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर वडा तेरहपथियो का, जयपुर । वेष्टन संख्या २४८७ ।

२ सवतु पन्द्रहसै दो गनै, गुन गुनुहत्तरि ता उपरि भवे ।
भादौ वदि तिथि पंचमी वारु, सोम न खित्तु रेवती मास ।

यह लघु गीत है जो पद रूप मे है। जिसमे मानव को भगवान की पूजा आदि करके निर्वाण मार्ग पर बढते जाने को कहा गया है। पद की अन्तिम पंक्ति मे "ससारह श्रावग कुलि सारु भमई चत्रुश्रावगु श्रीमारु" कह कर अपना परिचय दिया है।

दूसरा गीत—इस गीत का शीर्षक है 'गाडी के गडआर की'। यह भी आध्यात्मिक पद है जिसमे दशधर्म को जीवन मे उतारने तथा सातो व्यसनो को त्यागने की प्रेरणा दी गई है। पद का अन्तिम चरण इस प्रकार है—

"श्रावग सुणहु विचारु, चतुरु यो गावहिंगे"

तीसरा गीत—इस गीत का शीर्षक है 'आईति वावा वारी कै जईयौ" यह भी उपदेशात्मक पद है जिसमे श्रावक को मानव जीवन को सफल बनाने का अनुरोध किया गया हे। कवि ने पद के अन्त मे "भनई चतुरु श्रीमारु" से अपने नाम का उल्लेख किया है।

४. क्रोध गीत—यह भी लघु गीत है जिसमे क्रोध, मान, माया और लोभ की निन्दा करके उन्हे छोडने का उपदेश दिया गया है। इसमे चार अन्तरे है। मान कषाय का पद निम्न प्रकार है—

मानु न कीजै जोईवरा, तिसु मानहि हो मानहि जीयरा दुख सहे।
अप्पु सराहे हो भलो, पुणि परु की हो परु की णित करई।
परु करैई निद्रा नित प्रानी, इसोइ मन गरवै खरौ।
हउ रुप चतुरु सुजानु सुदरु, ईसोप भनौ मद भरै।
अहमेव करि करि कर्म्म वघौ, लाख चौरासी महि फिरै।
ईम जानि जियरा मानु परिहरि, मानु वहु दुखह करौ॥२॥

५. नेमीश्वर का उरगानो—प्रस्तुत कृति कवि की सबसे वडी कृति है। अब तक काव्य के जितने भी नाम आये है उनमे 'उरगानो' सज्ञक रचना प्रथम बार प्राप्त हुई है। 'उरगानो' का अर्थ स्वय कवि ने 'गुन विस्तरौ' अर्थात् गुणो को विस्तार से कहने वाले काव्य को उरगानो कहा है। इसमे नेमिनाथ के जीवन की विवाह के लिए तोरण द्वार को छोडकर वैराग्य धारण करने की घटना का वर्णन किया गया है। उरगानो की कथा का सक्षिप्त सार निम्न प्रकार है—

मगलाचरण के पश्चात् उरगानो नारायण श्रीकृष्ण के पराक्रम की प्रशसा से प्रारम्भ होता है जिसमे कहा गया है कि द्वारिका मे ५६ कोटि यादव निवास करते थे जो सब प्रकार से सुखी एव सम्पन्न थे। नारायण श्रीकृष्ण ने जरासध पर

विजय प्राप्त करके शखनाद के साथ द्वारिका पहु चे । एक दिन पूरी राज्य सभा जुडी हुई थी । विविध खेल हो रहे थे । राजा एव रानी दोनो ही प्रसन्न थे । उसी समय नेमिकुमार आए । सभी ने उनका आरती उतार कर स्वागत किया । नारायण श्रीकृष्ण ने सभी सभासदो को नेमिनाथ का परिचय दिया तथा कहा कि वर्तमान समय में नेमिनाथ से बढकर कोई साहसी एव धैर्यवान है । बलभद्र ने नेमिनाथ के बारे मे और भी जानना चाहा । श्रीकृष्ण जी ने नेमिनाथ का चित्र लिया तथा राजा उग्रसेन के पास गये और उनसे नेमिनाथ के लिये राजुल को माग लिया । उन्होने कहा कि हम सब यादव नेमिनाथ की बारत मे आयेंगे । उग्रसेन ने अत्यधिक प्रसन्न होकर राजुल से नेमिनाथ के विवाह की स्वीकृति दे दी । लेकिन साथ मे उन्होने चुपचाप ही कुछ पशुओ को एकत्रित करने के लिए कह दिया ।

कुछ समय के पश्चात् नेमिनाथ बारात लेकर वहा पहु चे । उन्होने वहा चारो ओर देखा और पशुओ को एकत्रित करने का कारण जानना चाहा । लेकिन जब उन्हे मालूम पडा कि ये सब बरातियो के लिए आये हैं तो उन्हे एकदम वैराग्य हो गया और विवाह ककण तोडकर तथा रथ को छोडकर गिरनार पर्वत पर जा चढे । नेमिनाथ के वैराग्य से राजुल के माता पिता एव परिजनो सबको दु ख हुआ और वे विलाप करने लगे । जब राजुल को उनके वैराग्य लेने का पता चला तो वह मूर्छित हो गई । वह कभी उठती कभी बैठती और कभी चिल्लाती । वह अपने पिता के पास जाकर रुदन करने लगी । पिता ने सारा दोष श्रीकृष्ण जी पर डाल दिया । लेकिन उसने राजुल से यह भी कहा कि उसका विवाह किसी दूसरे राजकुमार मे कर दिया जावेगा जो नेमि के समान ही रूपवान एव धैर्यवान होगा । तथा विद्याओ का आगार होगा । राजुल को पिता के शब्द सुनकर अत्यधिक दु ख हुआ । और नेमिनाथ के अतिरिक्त दूसरे किसी से भी बात नही करने के लिए कहा ।

राजुल भी नेमि के पीछे-पीछे शिखर पर जा चढी और नेमि से ही उसे छोडकर चले आने का कारण जानना चाहा । नेमिनाथ ने स्वयं के लिए सयम लेने की बात कही तथा राज्य, हाथी, घोडा एव अन्य सभी परिग्रह छोडने की बात कही । लेकिन उन्होने राजुल से वापिस घर जाकर विवाह करने के लिए कहा क्योकि तपस्वी जीवन अत्यधिक कठिन जीवन है । इसमे साथ-साथ रहना परित्याज्य है । राजुल ने नेमि को छोडकर घर लौटने से इन्कार कर दिया और कहा कि चाहे उसके प्राण ही क्यो न चले जायें वह तो उन्ही के चरणो मे रहेगी । घर जाकर क्या करेगी । इसके बाद राजुल ने दो-दो महिनो को लेकर बारह महिनो मे होने वाले ऋतु जन्य सकट का वर्णन किया तथा कहा कि ऐसे दिन मे उनको छोडकर कैसे जा सकती हैं । वह तो उनही की सेवा करेगी । राजुल ने कहा सावन भादो मे

तो घनघोर वर्षा होगी। विजली चमकेगी तथा मयूर एव पपीहा की रट लगेगी। ऐसे दिनो मे वह नेमि को छोडकर कैसे जावेगी। आसोज एवं कार्तिक मास मे शरद ऋतु होगी। सरोवर एव नदियो मे स्वच्छ जल भरा होगा। आकाश मे चन्द्रमा भी निर्मल हो जावेगा। चारो ओर गीत एव नृत्य होगे ऐसी ऋतु मे नेमि विना वह कैसे रह सकेगी।

मगसिर एव पोष मे खूब सर्दी पडेगी। शरीर मे काम रूपी अग्नि जलेगी। घर घर मे सभी मस्ती मे रहेगे लेकिन नेमि के बिना वह किस घर मे रहेगी और उसका हृदय पत्ते के समान कपित होता रहेगा। एक ओर काली रात्रि फिर बर्फ का गिरना। लेकिन उसका मन तो पिया के बिना ही तरसता रहेगा।

अघन पुपु अति सीत अपारु, जादौ विपु व्यापे ससारु।
काम अगिनि वहु पर जलु, घर घर सुख करै सब कोई।
तुम विनु हमहि कहा घर होई, हिरदौ कपे पात ज्यो।
निसि अध्यारी परतु तुमारु, काम लहरि अति होइ अपार।
यहु मनु तरसै पीउ विना, सवु संसार करै अति भोग।
राजल रटै करै पीय सोगु, नेमि कुवर जिन वन्दिहो ॥३०॥

माघ और फाल्गुण ऋतु मे तो बसन्त की बहार रहेगी। सभी वसन्त का आनन्द लेंगे। कामनिया अपने प्रियतम के साथ विलास करेंगी। वे अपने अगो मे चन्दन का लेप करेंगी तथा माथे पर तिलक भी करेंगी। घर घर वन्दनवार होगी। राजुल भी ऐसी ऋतु मे अपने पिया के साथ परिहास करना चाहती है तथा दिन मे अपने कत की सेवा करना चाहेगी।

चैत्र और वैशाख मे सभी वनस्पतिया खिल जावेगी। नन्दन वन के सभी पुष्प भी खिले होगे। भौरे फलो का रस पीते होगे। वन मे कोयल कुहु कुहु के प्रिय शब्द सुनाई देगी। विरहिणी स्त्रिया अपने प्रिय के बिना तडफती रहेगी लेकिन वह स्वय विना नेमि के क्या करेगी।

इसी तरह जेठ और आषाढ मे गर्मी खूब पडेगी। सूर्य भी तपेगा। कुछ लोग चन्दन लगा कर शरीर को शीतल करेंगे। लू चलेगी। लेकिन उसे तो प्रिय के बिना और भी ऊष्णता सतावेगी। इसलिए वह रात्रि दिन नेमि पिया नाम की माला जप कर उनके शीतल वचनो को सुनती रहेगी।

इस प्रकार राजुल बारह महिनो के विरह दुख को नेमि के सामने रखती है और चाहती है कि विवाह न किया तो न सही किन्तु वह उनके चरणो मे रहकर

ही उनकी सेवा करती रहे । यह कह कर वह रोने लगी और उसकी आंखो से अश्रुधारा बह चली ।

नेमि ने राजुल की बात सुनी । उन्होंने कहा कि वे तो वैरागी हो गये हैं सयम धारण कर लिया है इसलिए अब राजुल की सेवा कैसे स्वीकार कर सकते हैं । इसके अतिरिक्त उन्होंने राजुल से वापिस अपने परिजनो मे लौटने की सलाह दी । जिससे वह राज्य सुख भोग सके । लेकिन राजुल कब मानने वाली थी । उसने फिर अनुनय विनय किया । रोयी और नेमि से उसे भी व्रत देने की प्रार्थना की । अन्त मे नेमिनाथ को उसकी प्रार्थना को स्वीकार करना पडा और उसे आर्यिका की दीक्षा दे दी । इसके साथ ही नेमिनाथ ने आवश्यक व्रतो को पालने का उपदेश दिया ।

इस प्रकार 'नेमीश्वर का उरगानो' एक शान्त रस प्रधान काव्य है जिसमे विरह मिलन की अद्‌भुत सरचना है । नेमि द्वारा तोरणद्वार पर आकर वैराग्य धारण कर लेने की इतिहास मे अकेली घटना है । फिर उनसे राजुल का घर वापिस लौटने के लिए अनुनय विनय, पति के विरह मे होने वाले कष्टो का वर्णन और वह भी आमने सामने । जहां एक वैरागी हो और एक नयी नवेली बनी हुई उसी की दुल्हिन । भगवान शिव को तो पार्वती की तपस्या के सामने झुकना पड़ा लेकिन नेमिनाथ के वैराग्य को राजुल नही डिगा सकी । उसने भी नेमि से अधिक से अधिक आग्रह किया, रोई विलाप किया, लेकिन वे कब अपने वैराग्य से वापिस लौटने वाले थे । अन्त मे राजुल को ही सयम धारण करना पड़ा ।

भाषा

प्रस्तुत कृति व्रज भाषा की कृति हैं जिस पर राजस्थानी का प्रभाव है । अखारे (६), कोरि (४), औतरे (७), कन्हइ (६), जोवहि (११), मोरि (१३), तोरि (१३), होइ है (१६), तिहारे (२२) आदि शब्दो का पर्याप्त प्रयोग हुआ है । ड और ट के स्थान पर र का प्रयोग किया गया है ।

रचना काल

प्रस्तुत कृति संवत् १५७१ की रचना है । रचना समाप्ति के दिन भादवा बुदी पचमी सोमवार था । रेवती नक्षत्र एव लगन मे चन्द्रमा था ।[1]

१ संवतु पन्द्रहसै दो गनौ, गुन गुनहत्तरि ता उपरि चंन ।
भादौ वदि तिथि पचमी वारु, सोम नषितु रेवती सारु ।
लगुन भलो सुभ उपजी मति, चन्द्र जन्म बलु पाइयौ ।।

रचना स्थान

'नेमीश्वर का उरगानौ' का रचना स्थान गोपाचल दुर्ग (ग्वालियर) रहा। उस समय वहा के शासक महाराजा मानसिह थे जिनके सुशासन की कवि ने प्रशस्ति मे प्रशसा की है। महाराजा मानसिह तोमर वशी शासक थे। वहा जैन धर्म का पूरा प्रभाव व्याप्त था तथा उसके अनुयायी देव पूजा, गुरु सेवा, स्वाध्याय, सयम, तप और दान जैसे कार्यों का प्रति दिन पालन करते थे।

पाण्डुलिपि

उरगानौ की एकमात्र पाण्डुलिपि शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर तेरह पथियान् के एक गुटके मे सग्रहीत है। पाडुलिपि सवत् १८२····माह बुदी १४ गुरुवार के दिन समाप्त हुई थी। सवतोलेख वाला अन्तिम अक नही है इसलिए यह पाण्डुलिपि संवत् १८२० से १८२९ के मध्य किसी समय लिखी गयी थी। प्रतिलिपि करने वाले थे आचार्य देवेन्द्रकीर्ति थे जिन्होने इसे अपने शिष्य के लिए लिखा था।



१. नेमीश्वर को उरगानो

अथ उरगानो लिखितं नेमी कुंवर को ।

मंगलाचरण—

प्रथम चलन जिन स्वामी जुहारु, ज्यौं भवसायरु पावाहि पारु ।
लहइ मुकति दुति दुति तिरौ, पच परम गुर त्रिभुवन सारु ।
सुमिरत उपजै वुधि अपारु, सारद मनाविऊं तोहि ।
गुरु गोतमु मो देउ पसाउ, जौ गुन गाउ जादु राइ ।
उरगानो गुन विस्तरौ, समद विजै सिव देवी कुवार ।
जाके नाम तिरैं ससारु, चतुर गति गमनु निवारियो ।
राजमति तजि जीव मिलाई, चढि गिरनैरि लियो तपु जाई
नेमि कुवरु जिन वदि हौ ।।१।।

सुनि पुरानु हरिवस गम्हीरु, पडित धवलु जु साहस धीरु ।
तिनि मुत रयनि जु रचि कियो, कलि केवलि जो त्रिभुवन सारु ।
सुनि भाविय भव उतरैं पारु, नेमि कुवर जिन वदि हौ ।।२।।

नारायण श्रीकृष्ण का वर्णन—

वरनौ आदि जु होइ पसारु, जादौ कुल इतनौ व्योहारु ।
जौ नाराइनु औतरे, अरु जी जानौ नेमि कुमारु ।
जाके नाम तिरैं ससारु, नेमि कुवरु जिन वदि हौ ।।३।।

छप्पन कोरि सु जादौ वीरु, रहइ द्वारिका सायर तीरु ।
भोग भाइ वहु विधि रहै, राजु करैं हित सौ पारवारु ।
वाढै हय गय अर्थु भडारु, नेमि कुवर जिन वदि हौ ।।४।।

जीति जुरासिधु सपु वजाई, पुनि द्वारिका पऊचे जाइ ।
चक्र नाराइन कर चढै, करहि वीप्रा ए मगलचार ।
पंच सवद वाजहि अनिवार, नेमि कुवरु जिन वदि हौ ।।५।।

सभा पूरि वैठे हरि राउ, चऊधा सयनु न सुझै ठाउ ।
होइ अपारे पेपनै, रानी राइ भड मनोहारी ।
नाराइन आरते उतारी, नेमि कुवर जिन वदि हौ ।।६।।

नेमीश्वर का परिचय—

तव वसुदेव कहे सतभाव, यहु नेमीसुरु त्रिभुवन राउ।
समद विजै घर औतरे, छत्रु देहु यौ ज्यौ नर नाहा।
वादि चरन आरते कराउ, नेमि कुवर जिन वदि हौ ।।७।।

तव हरि भनै सुनै वसदेउ, नेमि तिनौ तुम जानौ भेउ।
सो कारन हम सौ कहौ, विद्या वलु या पासन आहि।
जीत्यौ कहै जुरासिंधु ताहि, मै वारौ करि जानियौ।
तव हि कहै वलिभद्र कुमारु, मो पहि सुनौ याको व्यौहार।
गुपित रूप गुन आगरौ, नेमि कुवरु यहु गरुवो वीरु।
या समान नहि साहस धीरु, नेमि कुवर जिन वदि हौ ।।८।।

दूत का उग्रसेन के पास जाकर राजुल के विवाह का प्रस्ताव—

सुनत अचमौ हरि मन भयौ, पटतरौ नेमी कुंवर कौलियौ।
तव वलु आउत देखियौ, बिलख वदन माहरी मन जाम।
कर ही उपाउ त्रिसो ताम, दूतु तव हि तिन पाठयौ।
उग्रसेनि धिया राजकुमारि, राजुल देवी रूप कि आरि।
देहु राइ कन्हरु भनौ, नेमि कुवरु या व्याहै आइ।
जादौ सयल साथ समुहाइ, नेमि कुवर जिन वदि हौ ।।९।।

उग्रसेनि तब हरखिय गात, परियन वोलि कही तिनि वात।
सौज करौ वहु अति धनि, जादौ आवहि स्यौ परिवार।
कला हमारी रहै अपार, मनु नाराइन रजियौ।
वधिक बुलाइ राइ यौ कह्यौ, वन मा जीउन एकू रहै।
तौ निग्रहु तुम सौ करौ, हिरन रौझ वह जीव अपार।
आनहु घेरि न लावो वार, नेमि कुवर जिन वदि हौ ।।१०।।

वारात—

छपन कोरि जो जादौ असमान, पहुचे उग्रसेन के थान।
पच सवद वाजैहि धनै, छायहु सुर गगन आकासु।
सुरपति सेसु डरौहि काविलास, तीनि भुवन मन कपियौ।
नेमि कुंवर जोवहि चहु पास, जीव देखि चितु कियो उदास।
नेमि कुवर जिन वदि हौ ।।११।।

नेमिकुमार का प्रश्न—

नैमी भनै हरि सुनहु विरारु, जीव कहाए वहुत अपार ।
कौन काज ए घेरियौ, कारनु कवनु सुनौ वडवीर ।
वहुत चिता मो भईय सरीर, साचउ वयनु प्रगासियौ ।

नारायण का उत्तर—

भनहि नाराइनु सुनहु कुवार, जी नर सोइ होइ सधार ।
वहु ज्योनार रचाइवीयौ, वधिए जीउ सहु लईहि काज ।
भोजन करहि तुम्हारे काज, नेमि कुंवर जिन वदि हो ।।१२।।

नेमिकुमार का वैराग्य—

भयौ विरागी सुनत हरि वयनु, अैसौ व्योहु करै अव कवनु ।
ककन मुकट जु परिहरे, छाडौ अर्थ भडारु जु राजु ।
जीव सइल मुकराऊ आजु, व्याहु छोडि तपु सु गह्यौ ।
रथ तै उतरि चलै बन मोरि, कर ककन सव डारे टोरि ।
नेमि कुवर जिन वदि हो ।।१३।।

जानिउ सयल ससार आसारु, छाडि चाले सवु राजु भडारु ।
चित वैरागु जु दिढ धरो, गौ गिरनैरि सिषिरि वर वीरु ।
चौधा जोवै साहस धीरु, मुवनु खानु देखियौ ।
उत्तिम ठाऊ जु आसनु देहि, लोभु मानु जे दुरि करेहि ।
निहचल मनु करि सोड रहै, पचम महाव्रत संजमु धरै ।
कष्ट सरीर वहुत विधि करै, सील सुमति जिहि जिय वसो ।
नेमि कुवर जिन वदि हो ।।१४।।

जोग जुगति सौ ध्यानु कराइ, चौ गै गमनु कि वारियौ ।
मनु इन्द्र पचौ निर्गहे, कर्म तारासु परम पदु लहै ।
नेमि कुंवर जिन वदि हो ।।१५।।

नेमि कुवर गिरनयरिहि, जादौ सयल विलखित भए ।
कन्हर मनु आनद भए, उग्रसेनि दुख करहि अपारु ।
कियौ हमारो सुवु भयौ आसरु, नेमिकुवर जिन वदि हो ।।१६।।

राजुल का विलाप—

राजुल देवी तवि सुधि लही, दासी वात जाइ तव कही ।
नेमि सुनो गिरि खो गए सुनत वासु मुछिय जाइ ।

कौन पाप हम कीनैं माइ, खिन खिन मुरछि भौ परिजाइ।
षिन षिन उठि जोवइ चहु पास, षरीय विलषी लेइ उसार।
को मनु मेरो धीरवैं, कोनु वहोरैं नेमि कुंवारु।
कोयहु जाइ करैं उपगारु, नेमि कुंवर जिन वदि हो ॥१७॥

राजुल का अपने पिता के पास जाना—

तव उठि कुवरि पिता पहि जाहि, वात करत वे षरीय लजाइ।
नेमि सुने गिरि षौ गये, कहउ पिता तुम जानउ भेउ।
कौनु वहौरे जादो देव, गवहु भरि चिरु न सहारौ।
सुनत वात सो मुरही जाइ, व्याहु छाडि सजम लिया।
उनि वैराग कियौ किहि काज, छाडिउ छत्र सधानु राजु।
नेमि कुवर जिन वदि हौ ॥१८॥

उग्रसेन का उत्तर—

उग्रमेनि यौ कहि विचार, यहु सवु जानैं कन्हु मुरारि।
जिन ए जीव घिराईयो, देखि तिन्हहि मनु भौ वैरागी।
वोछउ कुवरि तुम्हारो भाग, कन्हर कुरम कमाइयो।
लेन गये हम करि मनोहारि, जादौ सयल रहे पचिहारि।

दूसरे राजकुमार के साथ विवाह का प्रस्ताव—

वे दिढु सजमु लै रहे, अवहि कवरि हम करिहै काजु।
व्याहु तुम्हारा होइ है आजु, वरु चौखो ले आइ हैं।
अति सरूप सो राजकुवारु, चौदह विद्या गुनहनि धानु।
नेमि कुवर जिन वदि हौ ॥१९॥

राजुल का उत्तर—

यह सुनि राजुल उठी रिसाइ, ऐसौ वोलु कहै कतराइ।
व्याहु जनम औरै करो, एही जनम मो नेमि भरतारु।
उग्रसेनि सौ सवु ससारु, चढि गिरिनयरिहि जासीउ।
उनहि साथ हौ सजमु धरौ, सहऊ परीसहि सेवा करौ।
कर्म कुचित सव टारिहै, अरु नित रहहुं पिया के साथ।
नेमि कुवर जिन वदि हौ ॥२०॥

राजुल की पुन. चिंता करना—

मारगु जोवै करै सदेहऊ, नैन भरै जनु भादौ मेह।
कत कवन गुन परिहरी, गढी होइ सो चलति तुरन्त।
दुद्धर दुपु दियो मो कंत, तुम विनु को मनु धीरवै।
जगु अव्यारौ मेरे जान, अौर न देषौ तुमहि समान।
नेमि कुंवर जिन वदि हौ ।।२१।।

झुरवै कारन करै वहुतु, वर्नन जाइ तासु गुन रूपु।
रुदनु करत मारगु गहै, तुम विनु जन्मु जु वाहायौ।
पुर्व्व जन्म विछोही नारि, पाप पराचित हम किए।
पथ अकेली चलति अनाह, अैसो तुमहि न वुभिए नाह।
हमहि छाडि गिरि तुम गये, पिय विनु सु दरि करवि काइ।
रहै समीप तिहारै नाह, नेमि कुंवर जिन वंदि हौ ।।२२।।

गिरिनार पर राजुल का पहुंचना—

करति विष्पादु गई सो नारि, पहु जी जाइ सिषिरि गिरनैरि।
चरन लागि सो वीनवै, कर जोरै सो वात कहाइ।
दासी वर मो जानो राइ, सेवा वहु दिन दिन करौ।

नेमिकुमार से निवेदन—

हम परिय कवन तुम काज, छाडी व्याहु माई मो लाज।
तुम गिरनैरिहि आइयौ, दोसु कवन पीय लागो मोहि।
सो कहि स्वामी पुछु तोहि, नेमि कु वर जिन वदि हो ।।२३।।

नेमिनाथ का उत्तर—

नेमि भनै मुनि राज कुंवारि, हमि सजम लियौ चढि गिरनारि।
राज रीति सव परिहरि, हय गय विभव छत्र धन राजु।
परियन व्याहु नही मो काजु, जीव दया प्रतिपालिहौ।
यहु ससार जु माइए भव भवनु, वहुरिउ भ्रमि भ्रमि वूडै कौनु।
नेमि कु वर जिन वदि हौ ।।२४।।

अव तुम कुंवरि वहु घर जाहु, ककन वर्धौ करहु विवाह।
हम गौहि नु करि वावरी, गजधिया तु अति सुकुमाल।

भोग विलास करो तुम वाल, तपु न करि सकै सुन्दरि ।
हम जोगी दि जोगु धराइ, ध्यान जुगति सौ कष्ट सहाइ ।
हम तुम साथु न वुझिय, जाऊ कवरि हम छाडो आय ।
करहु वहु विधि भोग विलास, नेमि कुंवरु जिन वदि हो ।

राजुल एव नेमिकुमार का उत्तर प्रत्युत्तर—

राजुल भनै सुनोहु जदु राइ, तुम पौं छाडि घरै हम जाइ ।
पापु कौन हम को परै, तुम जु कहौ हम सो घर जान ।
जीव कह तु हो तजो परान, चरन कमल दिन सेई है ।
धरु करि हो तुम नामु अधार, जिहि चढि भव जल उतरै पारु ।
नेमि कु वर जिन वदि हो ।।२६।।

तव हि कु वर तै उतरु दयो, घर को भरु तुम्हारै लेइ ।
वन ह अकेली तपु करो, हम वहु कष्ट सहै चितु लाइ ।
तुम हि कु वरि सहो कत आइ, नेमि कु वर जिन वदि हो ।।२६।।

उग्रसेनि घिय चतुर मुजान, कु वर सुनहु यो उत्तर ठानि ।
पास रहो सेवा करो, जाउ घरे हो कैसे रहो ।
गरुवो दुख वहु तू क्यो सहो, खडर तु मान को हाषि है ।

वारह महिनो का विरह वर्णन, सावन भादो—

सावन भादौ वर्षा काल, नीरु अपवलु वहुत असराल ।
मेघ घटा अति नऊ नई, लहु लह वीजुरी चमकति राति ।
तव घर रयनि सह्यारे कति, परदेसी चितु वह भरै ।
दादुर मोर रढे दिन रैनि, पपीहा पिउ पिउ करै ।
को झील करौउ महै नेत्र, तुम विन को जिउ राषिहे कत ।
नेमि कु वर जिन वदिहो ।।२८।।

आसोज कार्तिक—

कातिक क्वार सरद रितु होइ, नरि हुलासु करै सवु कोई ।
निर्मल नीर सुहावनो, खिसि निर्मल ससि अति सोहति ।
भरि जलि नैन सम्हारै कति, विरह व्यथा अति ऊपजै ।
गीत नाद सुनि श्रै चहु पास, हम तुम विनु पिय परी अनास ।
नेमि कु वर जिन वदिहो ।।२६।।

मंगसिर पोष—

अघन पुपु अति सीत अपारु, जादौ विपु व्यापै ससार ।
काम अगिनि वहु पर जलु, घर घर सुख करै सव कोई ।
तुम विनु हमहि कहा घर होइ, हिरदौ कपै पात ज्यौ ।
निसि अध्यारी परतु तुषारु, काम लहरि अति होइ अपार ।
यहु मनु तरसै पीउ विना, सवु संसार करै अति भोग ।
राजुल रटै करै पीय सोगु नेमि कु वर जिन वदिहौं ।।३०।।

माघ फाल्गुन—

माघ पवनु फागुन रितु होइ, रितु वसत खेलै सव कोई ।
कंत सतवर कामिनी, दिन दिन रागु करै अनसरै ।
सजोग सिगारु वहुत विधि करे, फागुण फागु सुहावनी ।
सोहै सरिसु करै दिनु खेलु, गावहि गीत करे पिय मेलु ।
परि मेघुरि उडाइसी, ह्वँज, सवनि सिर उडई सीहु ।
चोवा चन्दन अगर कपूरु, तिलकु करै कर सुन्दरी ।
घर घर वाधे वन्वन वार, पच सवद वाजही अनि आर ।
पिय परिहसु राजुल करै, दिन दिन तुम्ह ही सह्मारै कंत ।
राखि सकै को हस उडात, नेमि कुंवर जिन वदिहौं ।।३१।।

चैत्र वैशाख—

चैतु सुहावो अरु वैशाख, वनसपती सव भई हुलासु ।
भार आठारह मौरियौ, सव फुलै नन्दन वन फूल ।
वासु सुगध भौर रस मुलि, फलहिते अमृत फल घनै ।
वन कोयल कुहू कुहू सुर करहि, गह गह मोर सुहावनै ।
विरहिनि त्रस म्हारै कत, पिय विनु जनमु अकारथ जत ।
रडनि निरासी क्या गमै, हमहि पिया जनि करहु निराए ।
वीसर रैनि सु म्हारी आस, नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ।।३२।।

जेठ आषाढ—

जेठु अषाढु गरम रितु होइ, घाम परे व्यापै सव कोइ ।
तपा तपै तनु अति तपै, पेम अगिनि तन डेहै सरीरु ।
लुवल वहि झर सघन परही, सीतल जतन ते मयल करही ।
श्रीखंड घसि तनु मडहि, अरु वीच गरम पसी जै देह ।

होइ विया अति पिय के नेह, वाउ सरीरु सुहावानो ।
तपती अधिक पिय तुम विनु होय, हंस उडत न राखे कोई ।
निसि वासर गुन तुम्हेरो, सीतल वचन तुम्हारैं कत ।
सुनत हमहि सुखु होइ तुरन्त, नेमि कुंवर जिन वदिहौं ॥३३॥

ए षट् रितु को सकै सह्यारि, उपजै दुषु तुमहि सम्हारि ।
क्यों करियहु मनु राषि है, रहि है पास तुम्हारे देव ।
करिहैं चरन कमल नित सेव, नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ॥३४॥

जादौ गाइ भनै सुनि वैन, रुदनु करहु कत भरि जल नैन ।
हम मनु सजमु दिढु धरैं, तुम अति गाहु कत करौ वहूत ।
राजु करहु वर सखिनि सजुत्त, नेमि कुंवर जिन वदिहौं ॥३५॥

तव सुनि राजुल विलखी होई, तुम विनु स्वामी गैहै कोइ ।
साथ सहित सजमु धरौ, अरु श्रावक व्रत कर उपवास ।
और सवै छाडौं हम आस, कष्ट बहु विधि हौं सहौं ।
करहु दया मो दे उपदेसु, ज्यो तिरिए संसारु असेसु ।
नेमि कुंवर जिन वदिहौं ॥३६॥

यह सुनि वोलै त्रिभुवन नाथ, धर्म सनेह रहै हम पास ।
मनु निहचलु करि रायौ, सुनहु कुवरि ससारु असारु ।
भव सायरु जलु गहीर अपारु, चतुर्गति गमनु निवारियौ ।
जीव छी चौरासी जाति, सहइ वहुत दुपु अंन अन भाति ।
अमतनि अतु न पाइऐं, रहट माल ज्यौं यहु जीव फिरैं ।
रूप अनेक वहुत विधि करैं, नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ॥३७॥

अव समिकितु धारियौ दिढ चितु, मोख मुगति जो लहइ तुरन्त ।
परु परिहरि सुनि सुन्दरी, चेतनि सुन्दरी सम करह गुन जासुं ।
घ्यानु धरुह जानौ दीनौ तासु, मिथ्या मोहवि परिहरौ ।
पंच परम गुरु जपु पाहु, जीव दया जीवहु तय राहु ।
नेमि कुंवर जिन वदिहौ ॥३८॥

पालउ आठ मूल गुन सारु, सात विसन तजि तिरि संसारु ।
वर अनोव्रत दिन करहु, अरु ग्यारह प्रतिमा जिय धरौ ।
त्रेपन क्रिया करि भव तिरी, गुन अस्थान चौदह चढौ ।
ए श्रावक व्रत कीजहि सारु, जिहि तै कुंवरि तिरौ संसारु ।

पच मगल धुपाइये, यहु तजि कुवरि निवारी मोहु ।
दीक्षा वरऊ मोहि व्रत देउ, नेमि कुंवर जिन वदिहौ ।।३९।।

लै सजमु व्रत ध्यानु धराहि, जो परुजानि ते हारि कराइ ।
अग्य गुनु गहि निर्मलौ, इहि विधि कर्म दसन सौ करे ।
राजल नेमी चलत नित घरै । नेलि कुवर जिन वंदिहौ ।।४०।।

नेमि कुवरु राजमती नारि, दुहु सजमु लियौ चढि गिरनैरि ।
तीनि भुवन जसु मडियौ, अरु तिन उपजी केवल ग्यानु ।
सुरनि सहित सुरपति अकूल्यानु, करन महोछो आयौ इन्द्र ।
पूजा नित सेवा कराइ, पच सवद तल रसी वजाइ ।
कलस अठोतर धरियौ आई, करि आरतौ अर धुज वदियौ ।
समोसरनु स्वामी कौ कियौ, सुर नर केतिक आईयौ ।
गन गंधर्व वीद्याधर जछि, जादौ सयलति राइ सपि ।
नेमि कुवर वदिहौं ।।४१।।

वनी इन्द्र तवही तिनि कियौ, सुनतई नु जग मन भयौ ।
शीव निदा नदि ते भाऐ, जै जैस वदु तिहु लोकहु भए ।
जै जै सवउ तिहु लोकहु भए, पचम गति सीद्ध त सुभयौ ।
नेमि कुवर जिन वदिहौं ।।४२।।

प्रशस्ति—

श्रावगु सिरीमलु अरु जसवत, निहचै जिय धर्म धरत ।
चरु चलन भवि वदतौ, पुत्र एकु ताके घर भयौ ।
जनमत नाउ चतुरु तिनि लियौ, जैन धर्म दिढु जीयहु धरौ ।
नेमि चरितु ताके मन रहै, सुनि पुरानु उरगानौ कहै ।
नेमि कुंवर जिन वदिहौं ।।४३।।

मधि देसु सुख सयल निधान, गढु गोपाचलु उतिम ठानु ।
एक सोवन की लका जिसि, तौंवरु राउ सवल वर वीर ।
भुववल आप जु साहस धीरु, मान सिंधु जग जानियै ।
ताके राजु सुखी सव लोगु, राज समान करहि सव भोगु ।
जैन धर्म वहु विवि चलै, श्रावग दिन जु करे षट् कर्म ।
निहचै चितु लावैहि जिन धर्म, नेमि कुवर जिन वदिहौं ।।४४ ।।

संवतु पन्द्रहसै दो गनै, गुन गनुहत्तरि ता उपरि भने।
भादौ वदि तिथि पचमी वारु, सोम नषितु रेवती मास।
लगुन भली सुभ उपजी मती, चन्द्र जन्म वलु पाइयौ।
चतुरु भनै भखी सयलनि दासु, गुनिय सुनत जिय करहि न हासु।
लछि उपसमै वुधि हीनु, मै स्वामी कौ कियौ वखानु।
पढत सुनत जा उपज्यै ग्यानु, मन निहचल करि जिय घरऊ।
राजमती जिन संजमु लियौ, नेमि कुवर नेमि सयल वीनयौ।
नेमि कुवर नेमि जिन वदिहौ।।४५।।

।। इति नेमिसुर कौ उरगानो समाप्त ।।

सवत् १८२····वर्ष सव माह वदी १४ व सेरो गुरु। लीखीत श्री देवेन्द्रकीर्ति आचरज सीसज के पंह।



२. गीत (गारि)

[१]

ना जानो हो को को चेरै ढीलरीया कत जाई।।
मन चेतहु हो अमुका सघई सुणहु विचारु।। मन।।
चन्द्र गति भवकत भ्रमहु, ससारु, घरु परविणु सवु भयो है जारु।
जगतारनु जिन नामु अघारु, जीवदया विनु धरम्मु ण सारु।। मन।।
जिनवर पूजा रचहु करि भाउ, आठ दव्व लैई पूजा साहु।। मन।।
पर परम गुरु जाय जपाहु, समिकतु निहचलु चितह वराहु।। मन।।
भवति जिलथु पंचम गति जाहु, संसारह श्रावग कुलि सारु।। मन।।
भनई चन्द्रु श्रावगु श्रीमारु, मन चेतहु हो अमुका सवई सुणहु विचार।।

[२]

गाडी के गडवार की पइया घर कहिगै।। इहि आयति।।
गनधर गोतम स्वामी, सुमिरि जिणु वदहुगै।
भव ससारु अपारु, भविक गण ऊतरहिगै।

चौगै गवणु निवारि, मुकति सिरी सी जैगी।
तुम्ह लईय भविक जन लेहु, कहा भव की जैगी।
श्रावग कुलि अवतारु, वहुरि णर लीजैगै।
धर्म्म दया जग सारु, सुनिहु यैको जैगे।
दस लखणि जिन धम्मु, दिनहु किन कीजैगे।
सातो विसन नीवारि, कर्म्म क्यो की जैगै।
तिजि मिथ्यातु अपारु, सुमति जी घरि जैगी।
क्रोधु मान मदु लोमु न मया को जैगी।
परु परिहरि भव दूरि कवन सुखु पावहिगै।
परमात्मा मन ध्यानु परिवि चितु लावहिगो।
जा ते तिरिहु तुरंत संसारु मोख पद पावहिगै।
श्रावग सुणहु विचारु, चतुरु यो गावहिगै ॥

[३]

आइ तिवा वावारी कै जईयो ॥
वावा वारी क्यो जइयो, भवियण वदहु करि जोरि।
जिनवर चलन जुहारी, चै गै गमनु निवारि।
भव ससारहु तारै, सभलि जीव अजाणा।
माया मोह भुलाना, वहु मिथ्यातु भरीई।
श्रावग कुलि कत आयो, अहलै जन्मु गवायो।
ऊतिम कुलि कत अवतरीया, सात विसन मद भरिया।
मोह महा मद राच्यो, मूलगुना नरु जाणै।
ईन्द्री पाचो सुखु मानो, आई तिवा वावारी कै जइयो ॥
भवीयहु लाख चौरासी, वध्यो मोह की पखि।
जिणवर चलन जुहारी, आवागमनु निवारी।
यहु त्रीय लोकु भमाई, सवै देय जुहारे।
को भव पार उतारो, जीव दया नरु पारै।
सिवपुरि गमनु निवारै, आई तिवा वावारी के जईयो।
भोजनु राति कराई, वहु ससारु भमाही।
चौविधि दानु न दीणै, सुधो भाउ न कीणे।
मिथ्या मोह भुलाणा, जिनवर धम्मु न जाण्यो।
लहियो श्रावग कुलि जन्मु करि दिन जिणवर धम्मु।
ज्यो जीय लहे सुख ठाऊ, तो घरि निहचलु भाऊ।

आत्मा ध्यानु करीजैं, सहि पचम गति लीजै ।
श्रावग सुणहु विचारु, भनई चतुरु श्रीमारु ॥

क्रोध गीत [४]

क्रोध—

क्रोध न कीजै जीवरा, कछु उपसमु हो ।
उपसमुहि पराकिए घरहि, क्रोध अगिनि जव पर जोरै ।
तव अप्पो हो अप्पो तापई परुतवै ।
परुतवै अप्पा गुननि जारैई, क्रोध हीयरा जव घरै ।
सुमति करनए वीसरई, ईही सील संजमु सवु अविरया ।
जव सुरिस मन सचरैई, इम जानि जिवडा गहहि उपसमु ।
क्रोधु खिणमत कोई करै, क्रोध न कीजै जीवरा ॥१॥

(२)

मान—

मानु न कीजै जोईवरा ।
तिसु मानहि हो मानहि जीयरा दुखु सहै ।
अप्पु सराहै हो भलो, पुणि परु की हो परु की णित करई ।
परु करैइ निद्रा नित प्रानी, इसोइ मन गरवै खरी ।
हुउ रूप चतुरु सुजानु सदरु ईसोप भनै मद भरै ।
अहमेव करि करि कर्म्म वघी, लाख चौरासी महि फिरै ।
इम जानि जियरा मानु परिहरि, मानु वहु दुखह करी ॥२॥

(३)

माया—

माया परिहरि जीवडा, जीऊ सुर्ग्गहि हो सुहि पावइ सुख घनौ ।
माया कपटै जे चलहि ते पावहि हो पावहि दुख दालिदु घनौ ।
दुख तनोऊ दालिदु भग्गिऊ जीवरा, कर्म्म फेरै ऊडो लई ।
घर घरह भीतरि आनु प्रानी वयन श्रैरै वोलए ।
परपचु करि करि तवई परु कहु कपटु सवु माया तनौ ।
इम जानि जीवडा तिजहि माया, जीऊ सुपावई सुख घनौ ॥३॥

(४)

लोभ—

लोमु न कीजई जीवरा, तिसु लोभहि हो लोभहि लाग्यौ पापु घनौ ।
तिसु पापहि हो पापहि जीयडा दुखु सहेई ।
दुखु सहइ जीउयरा लोभ काहन लोभ कहुडीउ तरफरई ।
ईहु लोभ कारन जीऊ पतिगा, देखत इंदियडा परई ।
सकलप विकलप भर्योऊ जियडा, लोमु इछइ चित धरई ।
इम भनई वै मनि निसुनि भवियन, लोमु खिन मत कोई करै ।।४।।

।। इति क्रोध गीत समाप्त ।।

ये सभी चारो पद शास्त्र भण्डार दि० जैन बडा मन्दिर तेरहपथियान् जयपुर के गुटके मे सग्रहीत है ।

□ □ □

४

गारवदास

गारवदास विक्रमीय १६ वी शताब्दि के चतुर्थ पाद के कवि थे। उनके सम्वन्ध मे सर्वप्रथम मिश्रवन्धु विनोद मे एक उल्लेख मिलता है जिसमे एक पक्ति मे कवि का नाम, ग्रन्थ नाम, रचना काल एव रचना स्थान का नाम दिया हुआ है। लेकिन उसमे गारवदास के स्थान पर गौरवदास तथा रचना सवत् १५८१ के स्थान पर सवत् १५८० दिया हुआ है। मिश्रवन्धु के परिचय के पश्चात् भी हिन्दी विद्वानो के लिए गारवदास अज्ञात एव उपेक्षित से रहे। सन् १९४८-४९ मे जव मैंने राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ-सूची वनाने का कार्य प्रारम्भ किया तो जयपुर के ही दि० जैन बडा मन्दिर तेरह पथियान् मे इसकी एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई जिसका उल्लेख ग्रन्थ-सूची के चतुर्थ भाग मे पृष्ठ सख्या १९१ के २३१३ सख्या पर किया गया। लेकिन उस समय भी कवि के महत्व को प्रकाश मे नही लाया जा सका और इसके पश्चात् भी कवि एव उनका काव्य विद्वानो से ओझल ही वने रहे।

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाश्य दूसरे पुष्प के सवत् १५६० से १६०० तक होने वाले कवियो के सम्बन्ध मे जब निर्णय लेने से पूर्व गारवदास एव उनकी रचना यशोधर चरित को देखा गया तो हिन्दी की महत्वपूर्ण कृति होने के कारण कविवर वूचराज के साथ गारवदास को भी सम्मिलित किया गया।

गारवदास हिन्दी कवि थे लेकिन वे प्राकृत एव संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे। यद्यपि अभी तक उनकी एक ही काव्य कृति यशोधर चरित्र उपलब्ध हो सकी है लेकिन वही एक कृति उनकी विद्वता की परख के लिए पर्याप्त है। वैसे कवि की और भी रचनाये हो सकती है लेकिन जब तक उत्तर प्रदेश के प्रमुख भण्डारो की खोज पूर्ण न हो जावे तव तक इस सम्वन्ध मे कुछ नही कहा जा सकता।

कवि परिचय

कविवर गारवदास उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे। उनका ग्राम था फफोतूपुर

(फफोदु) जिसमे श्रावको की अच्छी बस्ती थी। वे प्रति दिन अष्ट द्रव्य से जिन पूजा करते थे। उनके पिता का नाम राम था। कवि पर सरस्वती की पूर्ण कृपा थी। इसलिए उनका वाक्य ही काव्य वन जाता था।[1] पुराणो को सुनने मे कवि को विशेष रुचि थी। एक वार कवि को नगकैलई के निवासी साहू थेघु के पास जाने का काम पडा। जव थेघु श्रावग ने गारवदास के वचनामृत का पान किया तो वह प्रसन्न हो गये और हाथ जोडकर कहने लगे कि यदि यशोधर कथा को काव्य वद्ध कर सको तो उसका जीवन सफल माना जावेगा। थेघु श्रीमन्त ने यह भी कहा कि जिस प्रकार कवि ने इस कथा को अपने गुरु से सुनी है उससे भी अधिक सुन्दर रूप से उसको वह चाहता है। कथा कवित्त वध चौपई छन्द मे होनी चाहिए। इस प्रकार प्रस्तुत काव्य रचने की प्रेरणा कवि को फफोदु निवासी थेघु से प्राप्त हुई थी।[2]

कवि ने यशोधर चरित्र की रचना सवत् १५८१ भादवा शुक्ला १२ वृहस्पतिवार को समाप्त की थी।[3] रचना समाप्ति के सयय कवि सम्भवत अपने आश्रयदाता के पास ही थे।

आश्रयदाता

उत्तर प्रदेश मे गगा और यमुना के बीच मे कैलई नाम की नगरी थी। उसको देवतागण भी सुख और शान्ति की नगरी मानते थे। वहाँ ३६ जातियाँ थी

---

१ राम सुतनु कवि गारवदासु, सरसुति भई प्रसन्नी जासु।
वसत फफोतपुर सुभ ठोर, श्रावग वहुत गुणी जहि और ॥५३२॥
वसुविह पूज जिनेस्वर एहानु, लै अभारु दिन सुनहि पुरानु ॥५३३॥

२ थेघु सनै कवि गारवदासु, निसुनि वचनु चित भयो हुलासु।
द्वै कर जोरि भणै गुन गेहु, सफल जनम मेरौ करि लेहु ॥१८॥
सलिल कथा जसहर की भासि, जिम गुरु पास सुनी तुम रासि।
जो वहु आदिकविसुर भए, अरथ कठोर वरित रचनए ॥१६॥

३ संवत् पन्द्रह सै इकअसी, भादौ सुकिल श्रवण द्वादसि ॥५३३॥
सुर गुरुवारु करणु तिथि भली, पूरी कथा भई निरमली।
जसहर कथा कही सव भासि, सिरवलौ भाव परम गुर पासि।

जो सभी सम्पन्न थी।[1] अभयचन्द[2] वहा का शासक था जो अतीव सुन्दर एवं पूर्ण चन्द्रमा के समान था। प्रजा मे सुख एव शान्ति व्याप्त थी तथा किसी को कोई भी दु ख नही था। उस नगरी मे श्रावको की घनी बस्ती थी। उसी मे पद्मावती पुरवाल जाति थी जो जैन धर्मानुयायी थी। उसी मे साह कान्हर थे और उनके सुपुत्र थे भारग साहु। वे यशस्वी श्रावक थे। उन्होने चार गाव बसाये थे जिनके नाम थे जसरानी, गौछ, अैतपुरु और सौहारु।[3] इनके बसाने से उसकी कीर्ति चारो ओर फैल गयी। सुलतान भी उसके कार्य से प्रसन्न था। उसकी धर्म पत्नि का नाम था देवलदे।[4] उसके उदर से तीन सन्तान हुई जिनके नाम थे मेघु, जनकु एव थेघु साह। थेघु साह बहुत ही स्वाध्यायी श्रावक थे। एक बार थेघु साह ने सघ सहित पार्श्वनाथ की यात्रा भी की थी और वापिस आने पर उसने नगर मे सबको भोजन कराया। कुछ समय पश्चात् उसको पुत्र रत्न की प्राप्ति भी हुई। थेघु सेठ दानशील भी थे और लोगो को भक्तिपूर्वक दान देते थे।[5] वे रात्रि को जागरण करवाते थे जिससे श्रावको मे जिनेन्द्र भक्ति का प्रचार हो।

१ गंग जमुन विच अंतर वेलि, सुख समूह सुरमानहि केलि।
नयरी फैलई जनु सुरपुरी, निवसै धनी छतीसौ कुरी ॥५२२॥
२ अभयचन्दु जह राउ निसंकु, जनु कुलु षोडस कला मयंकु।
परजा दुखी न दीसै कोइ, घर घर वधि वधाऊ होइ ॥५२३॥
३ श्रावग बहुत वसहि जहि गाम, जनु आसिकौ दीनौ सियराम।
पोमावे पुरवर सुखसील, सुर समान घर मानहि कील ॥५२४॥
सा कन्हर सुतु भारग साहु, जिनि धनुष रचि लियो जसलाहु।
जस रानौ परनु सुभ ठोरु, गौछ महापुरु दूजौ और ॥५२५॥
अनगरु अैतपुरु अरु सौहारु, चारचौ गांव वसावन हारु।
जासु नामु पडुवा सुरितान, राज काज जान्यौ सुरिताण ॥५२६॥
४ तासु नारि देवलदे नाम, जिम ससिहर रौहिनि रतिकाम।
सोलु महातहि लीनौ पोषि, नंदन तीनि अवतरे कोषि ॥५२७॥
मेघु मेघु परसूजस रासि, जनुकु सु सूरु ससि सुक्रु अकासि।
जेठौ थेघ साहु सुपहाणु, जासु नाम मै ठयो पुराणु ॥५२८॥
५ पुन्न हेतु जानै उपगारु, जिनवर जगिन करावण हारु।
वहुत गोठि लै चाल्यो साथ, करी जात सिरी हारसनाथ ॥५२९॥
खरचि बहुतु धनु रावन थान, घर आयौ रियो भोपण दाण।
ताकौ पुत्र रत्नु अवतरचौ, रयनायरु गुण दीसै भरचौ ॥५३०॥

यशोधर चरित की कथा को समस्त जैन समाज मे पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त है। यही कारण है कि इस कथा पर आधारित चरित्र, चरित, रास एव चौपई आदि सज्ञक काव्य कितने ही जैन कवियो ने निवद्ध किये है तथा हिन्दी एव राजस्थानी भाषा मे ही नही किन्तु प्राकृत, अपभ्र श एव सस्कृत मे भी यशोधर के जीवन पर कितने ही काव्य मिलते है।

यशोधर के जीवन से सम्वन्वित स्वतन्त्र रचना का उल्लेख सर्वप्रथम आचार्य उद्योतन सूरि (७७९ ई०) ने अपनी कुवलय माला कहा मे प्रभंजन कवि के किसी यशोधर चरित का उल्लेख किया है। लेकिन उक्त कृति अभी तक अनुपलव्ध है। इसके पश्चात् महाकवि हरिषेण ने अपने वृहत्कथाकोष (९३२ ई०) मे यशोधर के जीवन से सम्बन्धित एक स्वतन्त्र आख्यान लिखा है इसलिए अभी तक उपलब्ध रचनाओ मे हम इसे यशोधर के जीवन पर आधारित प्रथम आख्यान मान सकते है। लेकिन १० वीं ११ वी शताब्दि के साथ ही यशोधर के आख्यान ने जैन समाज मे वहुत ही लोकप्रियता प्राप्त की और एक के पश्चात् दूसरे कवि ने इस पर अपनी लेखनी चलाकर उसे और भी लोकप्रिय वनाने मे पूर्ण योग दिया।

राजस्थान के जैन भण्डारो मे यशोधर के जीवन पर आधारित निवद्ध कितने ही काव्य उपलब्ध होते है। इन काव्यो के नाम निम्न प्रकार है—

	अपभ्र श		
१	जसहरचरिउ	महाकवि पुष्पदन्त	१० वी शताब्दि
२	,,	,, रइधू	१५ वी शताब्दि
	सस्कृत		
३	यशस्तिलक चम्पू	आ० सोमदेव सूरि	सवत् १०१६
४	यशोधर चरित्र	वादिराज	११ वी शताब्दि
५	यशोधर चरित्र	भट्टारक सकलकीर्ति	१५ वी शताब्दि
६	,,	आचार्य सोमकीर्ति	सवत् १५३६
७	यशोधर कथा	भट्टारक विजयकीर्ति	१५ वी शताब्दि
८	यशोधर चरित्र	वासवसेन	—
९	,,	पद्मनाभ कायस्थ	—
१०.	,,	पद्मराज	—
११	,,	पूर्णदेव	—
१२	,,	ज्ञानकीर्ति	स० १६५९

१३.	यशोधर चरित्र	श्रुतसागर	१५ वी शताब्दि
१४	,,	क्षमाकल्याण	सं० १८३९

हिन्दी राजस्थानी

१५	यशोधर रास	ब्रह्म जिनदास	१६वी श० (प्रथम चरण)
१६.	,,	भट्टारक सोमकीर्ति	,, (चतुर्थ चरण)
१७	यशोधर चरित	देवेन्द्र	सं० १६८३
१८	,,	परिहानन्द	स० १६७०
१९	यशोधर रास	जिनहर्ष	स० १७४७
२०	यशोधर चौपई	खुशालचन्द	स० १७८१
२१	,,	अजयराज	स० १७९२
२२.	यशोधर रास	लोहट	१८ वीं शताब्दि
२३	यशोधर चरित्र	मनसुखसागर	सं० १८७८
२४.	यशोधर रास	सोमदत्त सूरि	—
२५	,,	पन्नालाल	स० १९३२

इस प्रकार यशोधर के जीवन से सम्बन्धित राजस्थान के जैन ग्रन्थागारो मे २५ कृतिया प्राप्त हो चुकी हैं और अभी और भी कृतिया मिलने की सम्भावना है।

उक्त सूची के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गारवदास द्वारा यशोधर की कथा को काव्य रूप देने के पूर्व महाकवि पुष्पदन्त एव रइधू ने अपभ्र श मे, आचार्य सोमदेव सूरि, वादिराज, भट्टारक सकलकीर्ति, भट्टारक सोमकीर्ति एव विजयकीर्ति ने सस्कृत मे तथा ब्रह्म जिनदास, भट्टारक सोमकीर्ति ने राजस्थानी भाषा में यशोधर के जीवन पर काव्य कृतिया निबद्ध की है। यद्यपि कवि गारवदास ने वादिराज के यशोधर चरित्र को अपने काव्य का मुख्य आधार बनाया था लेकिन उसने यशोधर से सम्बन्धित रचनाओ को भी अवश्य देखा होगा लेकिन स्वय कवि ने इसका कोई उल्लेख नही किया है।

गारवदास का यशोधर चरित ५३७ छन्दो का काव्य है। वह न सर्गों मे विभक्त है और न सन्धियो मे। प्रारम्भ से अन्त तक कथा विना किसी विराम के धारा प्रवाह चलती है और समाप्त होने पर ही विराम लेती है। इससे पता चलता है कि अधिकाश जैन कवियो ने काव्य रचना की जो शैली अपनायी थी उसका गारवदास ने भी अनुसरण किया प्रस्तुत कृति यद्यपि हिन्दी भाषा की कृति है लेकिन कवि ने उसमे वीच-वीच मे सस्कृत के श्लोको एव प्राकृत गाथाओ का प्रयोग

करके न केवल अपनी भाषा विद्वता का परिचय दिया है लेकिन काव्य अध्ययन मे थकने वाले पाठको के लिए विराम तथा सस्कृत प्राकृत भाषा भाषी पाठको के लिए नयी सामग्री उपस्थित की है। १६ वी शताब्दि मे यह भी एक काव्य रचना की पद्धति थी। भट्टारक ज्ञानभूषण (सवत् १५६०) ने भी 'आदीश्दर फाग' मे इसी शैली की रचना की है जो गारवदास के ही समकालीन कवि थे।

यशोधर चरित की कथा का सार निम्न प्रकार है—

जम्बू द्वीप के भरतक्षेत्र मे राजगृही नगरी थी। जो सुन्दरता तथा वन उपवन एव महलो की दृष्टि से प्रसिद्ध थी। वहा के राजा का नाम मारिदत्त था। राजा मारिदत्त की युवावस्था थी इसलिए उसकी सुन्दरता देखती ही वनती थी। कला एव सगीत का वह प्रेमी था। एक दिन एक भस्म लगाया हुए योगी उसके नगर मे आया। योगी के वडी-वडी जटाये थी तथा वह भग के नशे मे धुत्त हो रहा था। गौरवर्ण था। उसका नाम था भैरवानन्द। नगर मे जब भैरवानन्द की तान्त्रिक एव मान्त्रिक की दृष्टि से चारो ओर प्रशसा होने लगी तो राजा ने भी उसे अपने महल मे मिलने के लिए वुला लिया। भैरवानन्द के महल मे आने पर राजा ने उसका विनय पूर्वक सम्मान किया। राजा की भक्ति से वह वहुत प्रसन्न हुआ और कोई भी इष्ट वस्तु मागने के लिए कहा। राजा ने अमर होने, एक छत्र राज्य चलाने तथा विमान मे चलने की इच्छा प्रकट की। भैरवानन्द ने राजा की प्रार्थना को पूर्ण करने का आश्वासन दिया लेकिन उसने चडमारि देवी के मन्दिर मे वलिदान के लिए सभी प्रकार के जीवो को लाने तथा एक मानव युगल का भी वलिदान करने के लिए कहा। राजा तो विद्या के लिए अन्धा हो चुका था इसलिए उसने तत्काल अपने अनुचरो को आदेश पालने के लिए कहा। उसके सेवक चारो ओर दौड गये तथा सभी प्रकार के पशु पक्षियो को लाकर उपस्थित कर दिया। लेकिन मानव युगल खोजने पर भी नही मिला।

कुछ ही समय पश्चात् वन मे अनेक मुनियो के साथ सुदत्त मुनि का आगमन हुआ। वह वन खिल उठा। चारो ओर पुष्पो पर भ्रमर गुञ्जार करने लगे एव कोयल कुहु कुहु करने लगी। मुनि ने उसी वन मे ठहरने का विचार कर लिया। लेकिन वह वन गधर्वो का भी निवास स्थान था जहा वे केलि किया करते थे इसलिए सुदत्ताचार्य को वह वन समाधि के उपयुक्त नही लगा। वह अपने सघ सहित श्मशान भूमि पर चले गये। आचार्य ने एक युवा मुनि एव साध्वी को नगर मे आहार के लिए जाने को कहा। वे दोनो भाई बहिन थे। दोनो अत्यधिक कमनीय शरीर के थे तथा वत्तीस लक्षणो वाले थे। इतने मे ही राजा के सेवको की दृष्टि

उन दोनो पर पडी। उनकी प्रसन्नता का ठिकाना नही रहा और वे दोनो को चडामारि देवी के मन्दिर मे ले गये।

मन्दिर का दृश्य विकराल था। चारो ओर पशु पक्षियो की मुडिया, अस्थिया एवं उनका रक्त विखरा हुआ था। भयंकर दुर्गन्ध से वातावरण अत्यधिक भयानक था। भाई ने बहिन को शरीर से मोह छोडने तथा आत्म स्थित होने के लिए समझाया। साथ ही मे साधु सस्था के महत्व को भी समझाया। जब राजा ने अत्यधिक सुन्दर उस मानव युगल को देखा तो वह भी उनके रूप लावण्य को देखकर आश्चर्य करने लगा। उसने उन दोनो से दीक्षा लेने का कारण जानना चाहा तथा बाल्यावस्था मे ही तपस्वी बनने का कारण पूछा। राजा का वचन सुनकर अभयकुमार ने हँसकर निम्न प्रकार अपनी जीवन गाथा कही—

अवन्ती देश की उज्जयिनी राजधानी थी। वह नगर स्वर्ग के समान सुन्दर था। चारो ओर फलो से लदे वृक्ष तथा मन्दिर एव महलो से युक्त थी। वहा के नागरिक भी देवता के समान थे। नगर मे सभी जातिया रहती थी। वहा के राजा का नाम यशोधु था तथा चन्द्रमती उसकी रानी थी। वह शरीर से कोमल तथा गजगामिनि थी। न्यायपूर्वक शासन करते हुए जब उन्हे बहुत दिन बीत गए तो उन्हे एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम यशोधर रखा गया। बालक बडा सुन्दर एव होनहार लगता था। आठ वर्ष का होने पर उसे चटशाला मे पढने भेजा गया। विद्यालय जाने के उपलक्ष मे लड्डू बाटे गये तथा गणेश एव सरस्वती की पूजा की गयी। यशोधर ने थोडे ही दिनो मे तर्कशास्त्र, व्याकरण शास्त्र, पुराण आदि ग्रन्थ तथा अश्व, हाथी आदि वाहनो की सवारी सीख ली। पढ लिखकर वह पुन माता-पिता के पास गया। इससे दोनो बडे आनन्दित हुए। यशोधर का विवाह कर दिया गया। एक दिन राजा यशोधु सभा मे विराजमान थे कि उन्होने अपने सिर मे एक श्वेत केश देख लिया इससे उन्हे वैराग्य हो गया और अपना राज्य कार्य यशोधर को सौपकर स्वय तपस्वी बनने के लिए वन मे चल दिये।

यशोधर बडी कुशलता पूर्वक राज्य कार्य करने लगा। उसकी महारानी का नाम अमृता था जो देवी के समान थी। कुछ काल उपरान्त एक कुमार उत्पन्न हुआ जिसका नाम यशोमती रखा गया। यशोधर ने अपने राजकुमार को शासन का भार सौंप स्वय अपनी रानी अमृता के साथ आनन्द से रहने लगा। यशोधर को अमृता के बिना कुछ भी अच्छा नही लगता था। अमृता के महल के नीचे ही एक कुबडा रहता था जो दुर्गन्धयुक्त शरीर वाला, अत्यधिक विरूप था लेकिन वह संगीत का बहुत ही जानकार था। रानी ने जब उसका सगीत सुना तो वह उस पर

आसक्त हो गयी और उसके बिना अपना जीवन व्यर्थ समझने लगी। अर्ध रात्रि को जब राजा यशोधर उसके पास सो रहा था तो वह उसको सोता हुआ छोडकर अपनी एक सेविका के साथ उस कुबडे के पास चल दी। कवि ने रानी अमृता एव दासी की बहुत ही सुन्दर वार्ता प्रस्तुत की है साथ मे सगीत विद्या का भी राग रागनियो के साथ अच्छा वर्णन किया है।

जाती हुई रानी के नुपुर की आवाज सुनकर राजा को चेत हो गया। जब उसने रानी को अर्ध रात्रि मे कही जाते हुए देखा तो एक बार तो उसे अपनी आखो पर विश्वास नही हुआ। लेकिन उसे पलग पर नही पाकर वह भी हाथ मे तलवार लेकर रानी के पीछे-पीछे दबे पाव से चल दिया। रानी ने कुबडे को जाकर जगाया और उसके चरणो को छुआ। कुबडे ने उसे गारी निकाली फिर भी रानी एवं उसकी दासी हँसती रही और उसकी मनुहार करती रही। रानी ने उस कुबडे के गले लग कर कहा कि वह उसके बिना नही रह सकती। लेकिन वे दोनो ऐसे लगे जैसे हस के साथ कौवा। रानी ने कूबडे के पाव दबाये तथा सभी तरह से उसकी सेवा की। यह देखकर राजा से नही रहा गया और उसने तलवार निकाल ली। लेकिन उसने विचार किया कि स्त्रियो पर तलवार चलाना कायरता कहलाती है तथा कुबडा जो दिन भर भूठन खाकर पेट भरता रहता है उसे मारने से तो उल्टा उसे अपयश ही हाथ लगेगा। यह सोचकर राजा ने तलवार वापिस रख ली।

वहा से राजा यशोधर अपने हृदय को वज्र के समान करके पालकी मे बैठ कर चित्रशाला चला गया। रानी तो काम विह्वला थी इसलिये कुबडे के साथ काम क्रीडा करके वापिस महलो मे आ गयी। अब वह राजा को जहरीली नागिन के समान लगने लगी। जिसके साथ क्रीडा करने मे राजा आनन्द की अनुभूति करता था वह अब विषवेलि लगने लगी। राजा को रानी की लीला देखकर जगत् से उदासीनता हो गयी। प्रात.काल हुआ। उसकी माता चन्द्रमती भगवान की पूजा करके हाथ मे आसिका लेकर राजा के पास आयी। राजा द्वारा माता के चरण छूने पर उसने आशीर्वाद दिया। राजा ने अपनी माता से कहा कि उसने आज रात्रि को जैसा सपना देखा है उससे लगता हैं उसके राज्य का शीघ्र विनाश होने वाला है। इसलिए उसके वैराग्य धारण करने का भाव है। लेकिन माता ने कहा कि तपस्वी बनना कायरता है। जो राजा स्वप्न से ही डरता है वह युद्ध भूमि मे कैसे जा सकता है। इसलिए राजकाज करते हुए ही देवी देवताओ को बलि चढा कर उनको प्रसन्न कर लेना चाहिए जिससे सारे विघ्न दूर हो सकें। नगर के बाहर कचाइण देवी है उसको बलि चढाने से सब विघ्न दूर हो सकते हैं। लेकिन

राजा ने ऐसे किसी भी कार्य को करने का प्रतिवाद किया और हिंसा से कभी शान्ति नही मिल सकती, ऐसा अपना मन्तव्य प्रकट किया ।

जीव घात जो उपजै धम्मुं, तौ कौ अवरु पाप को कम्मुं ।
जे ते लख चौरासी खाणि, ते सव कुटमु माड तू जाणि ।।

रानी चन्द्रमती के विशेष आग्रह पर राजा यशोधर देवी के मन्दिर मे गया और यह भाव रखते हुए कि वह मानो जीवित कुकुट है, आटे के कुकुट की रचना करवाकर उसी का देवी के आगे वलिदान कर दिया । इससे राजा को जीव हिंसा का दोष तो लग ही गया । देवी के मन्दिर मे से राजा अपने महल मे आया और अपना सम्पूर्ण राजपाट अपने लडके को देकर स्वय वन मे तपस्या करने के लिए जाने का निश्चय किया । राजा मारदत्त ने जव यह कथा सुनी तो उसने भी कर्मगति की विचित्रता पर आश्चर्य प्रकट किया ।

जव रानी अमृता ने यशोधर के तप लेने की वात सुनी तो वह भविष्य की आशका के भय से डरने लगी । इसलिए वह भी राजा के पास गयी और उसी के साथ दीक्षा लेने की वात कही । राजा ने पहले तो उसके वचनो पर विश्वास ही नही किया लेकिन रानी राजा को मनाने मे सफल हो गयी और उसने साथ-साथ तप लेने की स्वीकृति प्रदान कर दी ।

वालम विनु किम भामिनी, किम भामिनी विनु गेहु ।
दान विहीनो जेम घरु, सील विहीनो देहू ।।२८८।।

राजा की स्वीकृति पाकर रानी वापिस अपने महल मे चली गई । वहा वह अपने भोजनशाला मे गयी । उसने वहुत से विषयुक्त लड्डू वनाये और उनमे से कुछ लड्डू लेकर वह वन मे गयी जहा राजा यशोधर एव चन्द्रमती वैठे हुए थे । अमृता ने दोनो को विषयुक्त लड्डू खिला दिये । लड्डू खाने के वाद पहिले चन्द्रमती मर गयी और थोडी देर वाद राजा भी वैद्य-वैद्य करता हुआ तडफने लगा । रानी अमृता को इसमे वहुत डर लगा और उसने केश मु डाकर साध्वी का भेष धारण कर लिया और अपने पति को घसीट कर मार दिया । फिर वह जोर-जोर से रोने लगी । रानी का रोना सुनकर उसका लडका वहा आया और पिता को मरा हुआ देखकर मुँह फाडकर चिल्लाने लगा, साथ ही मे दूसरे लोग भी रोने लगे तथा रानी को सान्त्वना देने लगे । उन्होने ससार का विविध स्वरूप वताया और सन्तोष धारण करने की प्रार्थना की । सव लोग राजा यशोधर एव चन्द्रमती को श्मशान ले गये और उनका दाह सस्कार किया । यही से यशोधर एव रानी चन्द्रमती के भवो का वर्णन प्रारम्भ होता है ।

राजा यशोधर मर कर उज्जैनी मे ही मोर हुआ और चन्द्रमती श्वान हुई। श्वान का अन्य जीवो के साथ स्नेह हो गया और वह मन्दिर के बाहर रहने लगा। एक दिन एक शिकारी बहुत से पक्षियो को पकड़ कर वहा लाया। उनमे एक मोर बहुत ही सुन्दर था। शिकारी ने उसको मन्दिर मे छोड दिया। वहां वह बहुत ही कौतुक दिखाने लगा। वह कभी कभी वहा नाचता रहता था। एक दिन घनघोर पावस का दिन था। मोर मन्दिर के शिखर पर चढ गया उसको वहा पूर्व भव का स्मरण हो आया। वह सब लोगो को जान गया। उसने अपनी चित्रशालाएँ देखी। अपनी नीली गर्दन को देखकर दु ख हुआ तो अपने आप अपनी चोच से घाव करके मर गया। चन्द्रमती मर कर कुत्ता हुई जिसको शिकारी ने महाराज को भेंट मे दिया। वह कुत्ता जो माता का जीव था, उसने मोर की गर्दन पकड़ कर मार डाला। उस समय राजा जो चौपड खेल रहा था, उसे छुडाने के लिए दौडा लेकिन कुत्ते ने उसे नही छोडा। राजा ने कुत्ते को मार डाला। इस प्रकार दोनो ने साथ ही प्राण त्यागे। श्वान मर कर फिर मोर हो गया और वह कुत्ता मर कर कृष्ण सर्प हुआ। मयूर एव सर्प मे स्वाभाविक वैर होता है इसलिए उसने देखते ही सर्प का काम तमाम कर दिया। इनके पश्चात् मोर मर कर बडी मछली हुआ तथा उस सर्प ने मगर की योनि प्राप्त की। उज्जैनी मे एक दिन एक सुन्दरी स्नान के लिए आयी, जब वह स्नान मे तल्लीन थी उस मगर ने उसे निगल लिया। तत्काल धीवर को बुलाया गया और उसने जाल डालकर उस मगर को पकड लिया तथा उसे लाठियो, घूसो एवं लातो से मार दिया। उसके बाद वह मर कर बकरी हो गयी। कुछ दिनो बाद मछली भी पकड मे आ गयी। मरने के बाद वह भी पुन बकरा बन गयी।

एक दिन जब बकरा एवं बकरी स्नेहासिक्त थे तब उनके मालिक द्वारा वह बकरा लाठियो से मार दिया गया। लेकिन उसने पुन. बकरे के रूप मे जन्म लिया। कुछ समय बाद बकरी एक टाग काट दी गयी और धीरे-धीरे वह मृत्यु को प्राप्त हुई। फिर वह मर कर भैंसा हो गयी। और उसके पश्चात् दोनो का जीव मृत्यु को प्राप्त कर मुर्गा मुर्गी के रूप मे पैदा हुआ। एक दिन राजा को मुर्गा मुर्गी की लडाई देखने की इच्छा हुई लेकिन वह उनकी सुन्दरता से इतना प्रभावित हुआ कि उसने उन्हे वन मे छोड देने का आदेश दिया। वही पर जैन मुनि सुदत्त का आगमन हुआ। रानी ने उनसे धर्म कथा का श्रवण किया। सुदत्ताचार्य ने अहिंसा को जीवन मे उतारने पर बल दिया। साथ ही मे उसने यशोधर एव चन्द्रमती की कथा कही जिन्होंने आटे का मुर्गा मारने से सात जन्मो तक अनेक कष्ट सहे। राजा यशोमति ने एक दिन दोनों मुर्गा मुर्गी को मार डाला। लेकिन उन दोनो का जीव ही रानी के गर्भ मे कुमार एव कुमारी के रूप मे अवतरित हुए। राजकुमार का नाम अभयरुचि

एवं राजकुमारी का नाम अभयमति रखा गया। राजा यशोमति ने जब सुदत्त को वन मे तपस्या करते हुए देखा तो वह क्रोधित होकर उन्हे मारने को तैयार हुआ। लेकिन गोवर्धन सेठ ने राजा से मुनियो को न मारने की प्रार्थना की तथा उनकी महिमा के सम्बन्ध मे राजा को बतलाया।

अभयरुचि एव अभयमति को अपने पूर्व भव की बात सुन वैराग्य हो गया। और उन दोनो ने सुदत्ताचार्य के पास जाकर मुनि दीक्षा धारण करने की प्रार्थना की लेकिन सुदत्ताचार्य ने दोनो की वाल अवस्था देखकर निम्न प्रकार से कहा—

तुम दोऊ वालक सुकुमाल, कोमल जिसे पऊके नाल।
पच महाव्रत दूसह खरे, ते तुम पासि जाहि किम धरे।।४६६।।

दोनो ने गुरु के वचन सुनकर अणुव्रत धारण कर लिये तथा कपडे उतार क्षुल्लक क्षुल्लिका की दीक्षा ले ली। उन दोनो ने राजा मारिदत्त से कहा कि सयोग-वश हम तुम्हारी नगरी मे आहार के लिए आ रहे थे कि तुम्हारे सेवको ने हमे पकड लिया और यहा ले आए। राजा मारिदत्त यशोधर के पूर्व भवो की कथा को सुनकर भयभीत हो गया तथा दोनो के पावो मे पड गया। उधर सुदत्ताचार्य ने अपने ज्ञान से अभयकुमार की बात जानकर तत्काल देवी के मन्दिर मे आ गये। राजा मारिदत्त आचार्य श्री को देखकर उनके पावो मे पड गया। उसने देवी के मन्दिर को पूर्णत स्वच्छ करा दिया। उसने विनय पूर्वक अपने तथा दूसरो के पूर्व भवो के वारे मे पूछा। राजा मारिदत्त ने जव अपने पूर्व भवो के वारे मे जाना तो उसे वैराग्य हो गया। उसने पच मुष्ठि केश लोच करके मुनि दीक्षा ले ली। भैरवानन्द जोगी भी उनके पावो मे गिर गया, सब पाखण्ड भाव छोड दिये और मुनि दीक्षा देने के लिए निवेदन किया। सुदत्ताचार्य ने कहा कि उसकी आयु केवल २२ दिन है। जोगी ने यह जानकर कठोर तप साधना की और मरकर दूसरे स्वर्ग मे जन्म लिया। अभयरुचि एव अभयमति मर कर प्रथम स्वर्ग मे गये। इसी तरह मारिदत्त एव सेठ भी तपस्या के बाद स्वर्ग मे देव हुआ। आचार्य सुदत्त सम्मेद शिखर पर तपस्या करते हुए सातवे स्वर्ग मे उत्पन्न हुए।

काव्य की विशेषताएँ

इस प्रकार यशोधर चौपई की कथा पूर्णत रोचक एवं धाराप्रवाह मे निबद्ध है। चौपई हिन्दी साहित्य की एक अनुपम कृति है जिसके सभी वर्णन अत्यधिक सरस एव सुन्दर हैं। कवि घटनाओ के वर्णन के साथ-साथ व्यक्ति विशेष एव स्थान विशेष का जब चित्रण करता है तो उनको भी सुन्दर एव रुचिकर शब्दो मे प्रस्तुत करता है। एक ओर वह स्थान विशेष की सुन्दरता के वर्णन करने मे सक्षम है तो

उसी के विकृत वर्णन मे भी वह अपनी योग्यता प्रस्तुत करता है। जहा एक ओर वह प्रकृति वर्णन मे पाठको का मन मोहता है तो दूसरी ओर घटना विशेष का वर्णन करके पाठको के हृदय को द्रवित कर बैठता है।

कथा के एक प्रमुख पात्र है भैरवानन्द जिनके कारण ही सारा कथा स्रोत बहता है। उसी भैरवानन्द का जब कवि वर्णन करने लगता है तो वह स्वयं भैरवानन्द बनकर लिखने लगता है। उसकी दीर्घ जटाएँ हैं। शरीर पर भस्म रमा रखी है तथा कानो मे मुद्रिका पहिन रखी है। भग चढा रखी है जिससे आखे एवं मुख लाल प्रतीत होता है। रग से वह गौरे हैं और पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर लगते है।

भस्म चढाई मुद्राकान, अनही बूझै कहै कहान।
दीरह जटा चढाए भग, नयन घुलावै वदन रग।
गौर वरण मनो पून्यो चदु, प्रगट्यो नाम भैरवानन्दु ॥३१॥

कवि श्मशान का वर्णन करने मे और भी चतुरता प्रकट करता है। मुनि अपने सघ के साथ श्मशान मे जाकर विराजते हैं। एक ओर श्मशान की भयानकता तो दूसरी ओर निर्ग्रन्थ मुनियो का वहीं ध्यानस्थ होना—कितना उत्तम सयोग है—श्मशान का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

सग सहित मुनि गयो मसान, मरे लोग डहिहि जहि थान।
मु ड रु ड दीसहि बहु परो, कृमि कीला लवि गधि घृण भरे ॥६०॥

जवुक सान गधि अरु काग, व्यंतर भूत खपरिहा लाग।
डाइनि पिवहि रुधिरु भरि चुरू, सूकै तरु वरि वासै उरू ॥६१॥

चिता बहुत पजलहि वो पास, धूमानलु भमि रह्यो अकास।
नयननु देखत फटै हियो, वैवस भवनु जनकु विहि कियो ॥६२॥

इसी तरह कवि के देवी के वर्णन मे वीभत्स रस के दर्शन होते हैं। उसके हाथ में त्रिसूल है तथा वह सिंह पर आरुढ है। गले मे मु ड माला पहिने हुए है तथा उसकी जीभ बाहर निकले हुए है। आखे लाल हो रही हैं। ऐसा लगता है मानो अग्नि की ज्वाला उसके शरीर से ही निकल रही हो। उस देवी का पूरा शरीर ही रुधिर से सना हुआ था तथा पूरे शरीर मे सर्प डोल रहे थे।

ऐसे भयानक स्थान पर भी जब साधु आते हैं तो उन्हे देखकर सभी नतमस्तक हो जाते हैं। राजा मारिदत्त ने जब अभयरुचि और अभयमति को वहा देखा तो वह उनकी सुन्दरता पर मुग्ध हो गया—

को हरिहरु सकरु धरणेसु, के दीसे विधाधर भेसु ।
अरु सरुपका एह कुमारि, सुरि नरि किन्नरि को उनहारि ।।६८।।
यह रभा कि पुरदरि सची, रौहिनि रूप कवन विहि रचि ।
सीता तारकि मदोद्दरी, को दमयन्ती जोवन भरी ।।६६।।

प्रस्तुत काव्य मे कितने ही ऐसे प्रसग हैं जिनसे तत्कालीन सामाजिक एव आर्थिक दशा का भी पता चलता है । उस समय जब बालक आठ वर्ष का हो जाता था तो उसे पढने के लिए चटशाला मे भेज दिया करते थे । राजा यशोवर को भी उसी तरह पाठशाला भेजा गया था । गुरु के पास पढने जाने पर घी गुड के लड्डू बना कर बाटा करते थे तथा सरस्वती की विनयपूर्वक पूजा की जाती थी—

पढन हेत सौप्यौ चटसार, घिय गुरा लाडू किये कसार ।
पूजि विनायगु जिन सरस्वती जासु पसाइ होइ बहुमती ।।१३१।।
भाउ भक्ति गुरु तनी पयामि, पाटी लिखलीनी ता पासि ।
पढ्यो तरकु व्याकरण पुराण, हय गय वाहन आवध ठान ।।१३२।।

राजा वृद्धावस्था आते ही अपना राज्य अपने पुत्र को देकर स्वय आत्मा साधना मे लीन हो जाते थे । महाराजा यशोवर के पिता ने भी जब अपना एक श्वेत केश देखा तो उन्हें वैराग्य हो गया और राज्य कार्य अपने पुत्र को सोप कर स्वय तपस्या करने वन मे चले गये ।

अवर वहुत वैठे नरनाथ, पेष्यौ मुहु दर्प्पनु लै हाथ ।
धवलौ एकु कनेपुता केसु, मन वैराग्यौ ताम नरेसु ।।१४०।।
राउ जसोवर थाप्यो राज, आपनु चल्यौ परम तप काज ।
लीनो दीक्ष परम गुरु पास, तपु करि मुयो गयो सुर पास ।।१४४।।

पूरी कथा मे कितनी वार उतार-चढ़ाव आते हैं । प्रारम्भ मे भैरवानन्द के प्रवेश से नगर मे हिंसा एव वलि देने की प्रवृत्ति बढती हैं तथा देवी देवताओ को प्रसन्न करके उनसे इच्छित वरदान मागने की प्रवृत्ति की ओर हमारी कहानी आगे बढती हैं । यह वलि पशु पक्षी तक ही सीमित नही रहती किन्तु अपने स्वार्थपूर्ति के लिए मानव युगल की भी वलि देने मे तरस नही आता ।

लेकिन जव अभयरुचि एव अभयमति के रूप मे मानव युगल देवी के मन्दिर मे प्रवेश करते हैं तो कथा दूसरी ओर घूमने लगती है । उसका कारण बनता है राजा की उनके पूर्व जीवन को जानने की उत्सुकता । अभयरुचि बडे शान्त भाव से अपने पूर्व भवो की कहानी कहने लगते हैं । राजा यशोधर के जीवन तक

प्रस्तुत काव्य की कथा बडे रोचक ढग से आगे बढती है। पाठक बडे धैर्य से उसे सुनते हैं। लेकिन महारानी अमिय देवी एव कोढी का प्रेमालाप उन्हे उत्सुकता एवं आश्चर्य मे डालने वाला सिद्ध होता है। नारी कहा तक गिर सकती है, धोखा दे सकती है और पति तक को विष दे सकती है, जैसी घटनाएँ एक के बाद एक घटती रहती है और पाठक आश्चर्यचकित होकर सुनता रहता है।

यशोधर एव चन्द्रमती के आगे के भवो की कहानी, उनका परस्पर का वैर विरोध, ससार के स्वरूप के साथ कर्मो की विचित्रता को बतलाने वाला है। यशोधर एव चन्द्रमती सात भवो तक एक दूसरे के प्राणो को लेने वाले बनते हैं। उनके सात भवो की कहानी को पाठक मानो श्वास रोककर सुनता है और जब उसे अभयरुचि एव अभयमति के रूप मे पाता है तो उसे कुछ आश्वस्त होने का अवसर मिलता है। राजा मारिदत्त कभी भय विह्वल होता है तो कभी भयाक्रान्त होकर सभा स्थल से ही भागने का प्रयास करता है क्योकि उसे ऐसा लगता है कि मानो वह उसी के जीवन की कहानी हो।

काव्य का अन्त सुखान्त है। सैकडो जीवो की बलि करने वाला स्वय भैरवानन्द अपने पापो का प्रायश्चित करना चाहता है। और जब उसे अपनी आयु के २२ दिन ही शेष जान पडते हैं तो वह कठोर साधना मे लीन हो जाता है और मर कर स्वर्ग प्राप्त करता है। इसी तरह राजा मारिदत्त भी सब कुछ छोडकर प्रायश्चित के रूप मे साधु मार्ग अपनाता है। यही नही स्वय देवी की भी प्रवृत्ति बदल जाती है और वह हिंसा के स्थान पर अहिंसा का आश्रय लेती है। पहिले उसका मन्दिर जहा रक्त एव चिल्लाहट से युक्त था वहा अहिंसा का साम्राज्य हो जाता है। अभयरुचि, अभययति एव आचार्य सुदत्त सभी अपनी-अपनी तप साधना के अनुसार स्वग लक्ष्मी प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार यशोधर चौपई एक अतीव सजीव काव्य है जिसकी प्रत्येक चौपई एव दोहा रोचकता को लिए हुए है। सचमुच १६ वी शताब्दि के अन्तिम चरण मे ऐसी सरस रचना हिन्दी साहित्य की अनुपम उपलब्धि है। क्योकि यह वह समय था जब देश मे सामान्यजन मे भक्ति की ओर तथा अध्यात्म की ओर झुकाव हो रहा था। मुसलिम युग होने के कारण चारो ओर युद्ध एव मारकाट मची रहती थी इसलिए मनुष्य को ऐसे काव्य पढकर कुछ सीखने को मिलता था।

कवि ने काव्य समाप्ति पर निम्न मगल कामना की है—

सयलु सघु वदो सुख पूरु, जब लगि गग जलधि ससि सूरु ॥५३५॥

मेघमाल वरसैं असरार, वोध वधाए मंगलचार ।
नि सुनि विवसमन लावहु खोरि, हीनु अधिक सो लीजहु जोरि ॥५३६ ॥

कवि ने अन्तिम पद्य मे अपनी रचना के प्रचार प्रसार पर भी जोर दिया हैं तथा लिखा है कि जो भी उसकी प्रतिलिपि करेगा, करवायेगा तथा उसे औरो को सुनावेगा उसे अपार सुख होगा । पुत्र जन्म एव सुख सम्पत्ति मिलेगी ।[1]

भाषा

भाषा की दृष्टि से यशोधर चौपई व्रज भाषा की कृति है । गारवदास फफोदपुर (फफोदू) के निवासी होने के कारण व्रज प्रदेश से उनका अधिक सम्बन्ध था । साथ ही मे वे व्रज भाषा की मधुरता एव कोमलता से भी परिचित थे । इसलिए अपनी रचना मे सीधे सादे व्रज शब्दो का प्रयोग किया हैं । नीचे दो उदाहरण दिये जा रहे हैं—

(१) तोहि कहा एते सौ परी जो हौ कहौ सुन्दरि रावरी ।
विहिना लिख्यो न मेट्यौ जाइ, मन मौ सखी खरी पछिताहि ।।२२२।।

(२) एक नारि कौ नदनु भयौ, जसहर पास वधैया गयो ।।१४५।।

छन्द

यशोधर चौपई अपने नाम के अनुसार चौपई प्रधान रचना है । कवि के समय चौपई छन्द व्रज भाषा का लाडला छन्द था तथा जन साधारण भी चौपई छन्द की रचनाओ को ही अधिक पसन्द करता था । चौपई छन्द के अतिरिक्त कवि ने दोहा, दोहरा, वस्तुवन्ध एवं साटकु छन्द का भी प्रयोग किया है । चौपई छन्द के पश्चात् दोहा छन्द का सवसे अधिक प्रयोग हुआ है तथा दो वस्तुबन्ध एव एक साटकु छन्द का भी प्रयोग करके कवि ने अपने छन्द ज्ञान का परिचय दिया है । इन छन्दो के अतिरिक्त कवि ने अपने पाडित्य प्रदर्शन के लिए सस्कृत के श्लोको, प्राकृत गाथाओ[2] का भी यत्र तत्र प्रयोग किया है । इससे मालूम पडता है कि उस समय जन साधारण की सस्कृत के प्रति भी अभिरुचि थी ।

अलकार

अलंकारो के प्रयोग की ओर कवि ने विशेष ध्यान नही दिया । सीधी-सादी

---

१ पढ़ै गुरणै लिखि देई लिखाइ, अरु मूरिख सौ कहौ सिचाइ ।
ता गुरण वरिण बहुतु कवि कहै, पुत्र जनमु सुख सम्पत्ति लहै ।।५३७।।

२ ८६ वीं पद्य प्राकृत गाथा का है ।

बोलचाल की भाषा मे काव्य रचना का मुख्य उद्देश्य होने के कारण उपमा एव अनुप्रास अलकारो के अतिरिक्त अन्य अलकारो का अधिक प्रयोग नही हो सका है।

शैली

काव्य की वर्णन शैली बहुत सुन्दर एवं प्रवाहक है। कवि ने कथा की प्रत्येक घटना को बहुत ही सुन्दर शब्दो मे निवद्ध किया है। कवि के वर्णन इतने सजीव होते हैं कि पाठक पढता-पढता आश्चर्यचकित होकर कवि के काव्य निर्माण की प्रशसा करने लगता है। रानी एव दासी मे पर पुरुष के प्रसग मे जव वाद-विवाद होने लगता है तो पढने मे वड़ा आनन्द आता है। यहा उसका एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

दासी—

सुंदरि जोवनु राजधनु, पेषिन कीजै गव्वु।
सवरु सीलनु छाडिये, अवसि विनसौ सव्वु ।।२०२।।
सुनि फुल्लार विंद मूख जोति, छाडहि रयनु गहहि किम पोति।
तजहि हसु किम सेवहि कागु, भूलौ भई खिलावहि नागु ।।

रानी—

परि जव मयनु सतावे वीर, तू न सखी जनहि पर पीर।
मन भावतौ चढै चित आणि, सोई सखी अमर वर जानि ।।२१६।।

इस प्रकार यशोवर चौपई कथानक, भाषा एव शैली की दृष्टि से १६ वीं शताब्दि का एक महत्वपूर्ण हिन्दी काव्य है। प्रस्तुत काव्य अभी तक अप्रकाशित है और उसका प्रथम बार प्रकाशन किया जा रहा हैं। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो मे काव्य की एकमात्र पाण्डुलिपि जयपुर के दि० जैन वडा तेरहपथी मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे सुरक्षित हैं। प्रस्तुत पाण्डुलिपि सवत् १६३० मगसिर सुदी ११ रविवार के दिन समाप्त हुई थी ऐसा उसकी लेखक-प्रशस्ति मे उल्लेख है। पाण्डुलिपि सुन्दर एव शुद्ध है लेकिन उसमे लिपि सवत् के अतिरिक्त लिपिकार का परिचय नही दिया गया है। पाण्डुलिपि के ४३ पृष्ठ हैं जो $१०\times४\frac{1}{2}$ इञ्च ग्रन्य आकार के हैं।[1]

□□□

२ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची भाग–चतुर्थ–पृ०

यशोधर चौपई

।। ॐ नम ।। अब यशोघर चौपई लिखते ।।

मंगलाचरण —

जयउ जिनवरु विमलु अरहतु सुमहतु सिव कतवरु ।
अमर णयण रणिम्यर वदिउ ।
उवसमिय फलूसरइ तिजय बधु दहधम्म णदिउ ।।

दोहा

पणविवि पच पमेढि गुरु अरकमि पुन्न पवित्तु ।
णिसुणहु भव्व विचित्त कह जसहर तनउ चरित्तु ।।१।।

फुनि पणवमि सामिणि भारहि, जासु पसाइ सुवुधि मइ लही ।
चद्रवदणि मृग णयणि विसाल, धवलवर आरुही मराल ।।२।।

अविरल विमल भास रस खाणि, वीणा दड सुमडिय पाणि ।
छह दरसनि माणी वहुभाइ, सरसै सामिणि होइ हाइ ।।३।।

पणविवि भाव सम्मु गुरु सूरि, भासमि सुकह सुयण सुपु पूरि ।
गुर गूगुर वदन तिल तेल, जल चदन चरु पुष्फणु एल ।।४।।

पूजमि पडिम जासु के भाल, षेत्रपाल सुमु करहु दयाल ।
लाजे दुरिजन ता कहि परछेद, विनु कारण प्रगटहि वहु भेद ।।५।।

जे पर दुषसुखु माणहि आपु, मूढ रयणे दिनु विढवहि पापु ।
वगज्यो देनिहुराई रहै, वोलत वुरो पराई कहै ।।६।।

श्लोक

मुहपद्मजलाकार वाचासोतलसजुत ।
हृदय कर्त्तरि सयुक्त त्रिविधि दुर्ज्जनलक्षण ।।७।।

न विना परवादेसु दुर्ज्जनो रमतोजस ।
स्वान सर्व्वरस भोक्ते अमेध वितृना नप्पते ।।८।।

तिनको नाम न लीजे भोर दान पुण्य को परे कठोर।
ते सवहीनु दूरि परिहरौ, तिन अपतनु कोतातिन करौ ॥६॥
भलौ ना कछु निपजै तिन पास, करत निहोरौ परे उदास।
तिनके वचन कीजहि कान, अर्घ जोवहि दोजहि जान ॥१०॥

श्लोक

नवन्ति सफला वृक्षा' नवन्ति सजनाः जना'।
सुक्ककाष्ट च मूर्खं च न णवति भजतिज. ॥११॥

जिनके वयनु न निकसै पोचा, निसि दिनु करहि दया पर रोचा।
जे पर कौ चितवहि उपगारु, निम्मंलु सुजसु भम्यौ ससारु ॥१२॥

ते कलिमह पचानन सीहा, तिन थुति करनि केम इक जीह।
तिन सवहिनु सौ विनौ पयासि, मो पर दया करहु गुण रासि ॥१३॥

दोहा

जे परभीर समुद्धरण, पर घर करण समत्थ।
ते विहि पुरिसा अमरु करि, हरिस्यो जोरि विहत्थ ॥१४॥

पयडु महीयलि उत्तम वसु, निय कुल मान सरोवर हसु।
पदमावती वंस धवल जस रासि, तागुण सयल सकै को भासि ॥१५॥

आश्रयदाता का परिचय—

भारग सुतनु थेघु गुनगेहु, जिनवर पय अवुरुह दुरेहु।
कीनै वहुत सतोष विहान, पिणिभव्व विच सचौदान ॥१६॥
निसि दिनु करै गुणी कौ मानु, धम्मुं छाडि चित धरै न आनु।
नग कैलई निवसे सोइ, जहि श्रावग निवसै बहु लोइ ॥१७॥
थेघु सनै कवि गारवदासु, निसुनि वयनु चित भयौ हुलासु।
द्वै कर जोरि भरौ गुणगेहू, सफलु जन्मु मेरौ करि लेहू ॥१८॥
सलिल कथा जसहर की भासि, जिम गुरु पास सुनी तुम रासि।
जे वहू आदि कविसुर भए, अरथ कठोर वरित रचे नए ॥१६॥
तासु छाह ले मीसौ भासि, कवितु चौपही वध पयासि।
गारभु भनै निसुनि कुल सूर, परिघन विवस आस रस पूर ॥२०॥

कवि द्वारा अपनी लघुता प्रकट करना—

पढचौ न मै व्याकरण पुराण, छद भाइ अक्षर कौ ज्ञाता।
जौ वुधि विनु कछु कीजे जोरि, तौ वुधजन हसि लावहि षोरि ॥२१॥

तौ कहमि तिनके पालागि, वाढै धम्मु जाइ तमु भागि।
वार वार पनविवि जिनराउ, सरसै सामि तिसु गुर पसाउ ॥२२॥

गाथा पयडिय आगम सुत्त अतिम तित्थयर बीर समसरण।
गणि गोयमेण भणिय, णिसुनिय सिरिसेणि एन कह बिमल ॥२३॥

वीरवानि सुनि गोयम भनी, प्रगटी कथा जसोवर तनी।
सुनि श्रेणिक प्रगटी कलिमाह, गारवु भने तासु की छाह ॥२४॥

कथा का प्रारम्भ—

जंवूदीपु सुदंसनु मेर, लवनोदधि वेठ्यो चहुफेर।
भरह षेतु दाहिनि दिसि वसै, पेषत मनु सुर वेक्रौ लसै ॥२५॥

रायगेहु पाटन सुभ ठोरु, जा सम महियलि णयरु ण ओरु।
पच वरण मनि दीसै षच्यौ, सोमहि तनौ तिवहु विहि रच्यौ ॥२६॥

मारिदत्त राजा—

चारि पवरि सतषने अवासा, वन उपवन सरवर चौपासा।
तहि पुर मारिदत्त महिपालु, सूरज तेजु दुवउ रसालु ॥२७॥

जौवनवंतु राजमद भर्यौ, अति प्रचडु महियलि अवतरयौ।
रुपिनि नाम गेह वर णारि, अति सरूप रभा उनहारि ॥२८॥

कोक कला सगीत निवास, षेवहि अगरु कुसम रसवास।
ता समेतु मानै वहु भोगु, निसुनहु अवरु कथा को योगु ॥२९॥

भैरवानन्द का आगमन—

योगी एकु तहा अवधूतु, राज गेह पुर आइ पहूतु।
भस्म चढाइ मुद्रा कान, अनही वूझै कहै कहान ॥३०॥

दीरह जटा चढाए भग, नयन घुलावै वदन रग।
गौर वरण मनौ पून्यौ चदु, प्रगट्यौ नाम भैरवानंदु ॥३१॥

काहू जाय राइ सौ कह्यौ, जोगी एकु नगर मौ रह्यौ।
तत्र मत्र जानै वहुभाइ, जोगी गुन गरुवो सुनि राइ ॥३२॥

राजा भनै जाहू ता पासि, ले आवहु वहु विनउ पयासि।
जो किंकर नरवे पठायो, पवन वेग जोपहु गयौ ॥३३॥

पभनै स्वामी करहु पसाउ, वेगै चलहु बुलावै राउ।
आडवर सौ जोगी चल्यौ, कौतिग लोग नगर कौ मिल्यौ ॥३४॥

योगिहि पेषि राउ गहगह्यौ, आसनु छाडि पाइ परि रह्यौ ।
करु उचाइ तिनि दई असीसा, हूजौ राजु तुम्हारे सीसा ॥३५॥

श्लोक

पुष्पयतप्रभालोके अच्छौ सुरतरगिनी ।
तावत् मित्रसम जीव, मरिदत्तो नराधिप ॥३६॥

आशीर्वाद—

हौं तोकौ सुनि तूठो राइ, मागि मागि यो हियँइ समाई ।
भनै अमरुहौ महि अवतर्‌यौ, जानमि सयलु महागुन भन्यौ ॥३७॥

व्यतर भूत हमारे ईठ, रावनु रामु भिरत मैं दीठ ।
जव भारथु वीत्यौ कुरषेता, पेष्यौ भीमुह कारै देता ॥३८॥

जवहि कसु नारायन हयौ, पेषत जरासिघु क्षौ गयौ ।
वरणे भुवनु जिते महि भए, मो आगैं च्यारचौ जुग गए ॥३९॥

द्वै कर जोरि भन्यौ तव राइ, पुण्य हमारौ भयौ सहाइ ।
तौ मो तेरौ दरसनु भयौ, देषत पापु हमारौ गयौ ॥४०॥

जौ तूसौ किमि मंगमि आणा, करहि अमरु अरु चलमि विवांना ।
एक छत्र ज्यौ अविचल राजू, इतनैं करमि हमारौ काजू ॥४१॥

पाखडी वोलैं धरि ध्यानु, साचौ जाकौ फुरै न ज्ञानु ।
पुजवमि राय तुमारी आसा, होहि अमरु अरु चलहि अकासा ॥४२॥

चडमारि देवी का वर्णन—

एकु वचनु करि मेरौ एहू, जैंतो इन वार्ता नकौ गेहु ।
चडमारि देवी आप पनो, वहु विधि पूजा करिता तनी ॥४३॥

जे ते जीव जुयल सव आनि, नरवर आषिनि सुनि गुणषाणि ।
दैवलि सव देवी कैं थाना, सिह्लवमि कायु निसुनि सिष जाना ॥४४॥

तव सुनि राव मूढ मति भयौ, राजा राजु करत परिहरौ ।
योगी तनौ कुमति प्रभु पुह्यौ, कुजर उवरि राउ आरुह्यौ ॥४५॥

कीयौ वहुतु योगी कौ मान, गयौ तहा देवी को थान ।
योगी देवो भगतु नरेसु, किकर कौ दीनौ उपदेसु ॥४६॥

देवी के लिए जीवों को पकड़ कर लाना—

इतनौ करहू हमारौ काजू, देविहि वलि अघ वावहू आजु ।
राय वयनु सुनि धाए परे, वन मौ जीव जाय पाकरे ।।४७।।

हरिण रोझहू सूकर सिवसान, महिस्त मेस छेरे लवकाना ।
कुजर सीह वाघ फणि नोरचा, लारी आदि गनै को औरा ।।४८।।

जेते जीव पिषे सब अपि, लए तितर करि पसु पषि ।
फुनि कर योरि पयासहि सेवा, हस नर युयलु न पायो देवा ।।४९।।

तव नर वे अवरा मिसौ कहो, मनुव युवलु विनु पूजा रहो ।
नेरो कायु सवारहू एहु, मनुव जुवलु गहि देवेहि देहु ।।५०।।

निसु दिनु रहे हिंस मति भई, चड कर्म्म कक्कंश निर्द्ई ।
दस दिसि गए राय उपदेस, मढ विहार वन फिरहि असेस ।।५१।।

सुदत्त मुनि का विहार—

निसुनहु भव्व कहतरु आनु, दया वर्म्म गुणसील पहानु ।
तहि अवसरि सुदत्त मुनि सूर, कर्म्म पयडिण्यो कीनी चूरि ।।५२।।

मुद्रा नगन कमडर हाथ, बहुत रिषीश्वर ताके साथ ।
भवतु भवतु सो तीरथ तान, पेष्यो तिवनु केवल नान ।।५३।।

तिहि नयरी आयो मुनि नाहु, जा सिवरमनि रमन को गाहु ।
भव्व कुमु पयडिवोहन चदु, नाय नरिंद पुरदर वदु ।।५४।।

श्लोक

ताम मुनिवरु पत्तु तव तत्तु गुण जुत्तु सजमतिलउ ।
कोह-लोह-मय-मोहवत्तउ, वहु मुनिवर परियउ ।
सील जलहि सिवरमनि रत्तउ, तव कम्मा सव सवरणु ।
भव्व सरोरुह मित्त, अवरहीनु अनग हरु निम्मल सुचरित्त ।।५५।।

जहि णदन वनु नरवे तनौ, दल फल पल्लव दीसैं घनौ ।
जहि वसत फूली फुलावाइ, कोइल मधुरौ सादु कराइ ।।५६।।

वुमु चुमु सति पषी सुक मोर, सुरकामिनि मोहै सुनि घोर ।
चैत्र मासु सुदि णवलु वसतु, गु जारैं मधुकरु मयमतु ।।५७।।

भनै रिषीसुर वनु अवलोइ, इहि ठा मुनि थिरु ध्यानु न होइ ।
इहि वण केम जतीसुर वसैं, निवसत मयनु भुजगमु डसैं ।।५८।।

इक सोरण फूली फूल वादि, पेषत होइ महा तपु वादि ।
जहि निवसत मूसै मन चारु, नासै तपो तनौ तप घोर ।।५६।।

जहि वन गन गधर्व निवासु, विलसहि सुर कामिनि रस वासु ।
निवसत होइ सील की हानि, मुनिवरु छाडि चल्यौ मन जानि ।।६०।।

श्मशान का दृश्य—

सग सहित मुनि गयो मसान, मरे लोग डहिहि जहि थान ।
मु ड रु ड दीसहि वहु परे, कृमि की लालवि गधि घृण भरे ।।६१।।

जवुकसान गधि अरु काग, व्यतर भूत खपरिहा लाग ।
डाइनि पिवहि रुधिरु भरि चूरू, सूकै तरु वढि वासै उरु ।।६२।।

चिता वहुत पजलहि चौ पास, धूमानलु भमि रह्यौ अकास ।
नयननु देषत फटै हियो, वैवस भवनु जनकु विहि कियो ।।६३।।

तहि ठा पेषि परासगु ठानु, संघ सहित मुनि हान""""।
अनुवयध्यर तासु कै सग, चपक कु सुम सम कोमल अग ।।६४।।

तिनहि सकोसल मुनिवरु जानि, पभन्यो सुगुरु सरस रस वानि ।
निसुनि अभयरुचि नाम कुमार, लेहू भोजु तुम नयरि मझार ।।६५।।

वहिन भाई द्वारा नगर में भिक्षा के लिए जाना—

वालक तुम जौ करहू उपासु, आरति उपजि होइ तप नासु ।
सुनि गुरु वयनु वहिनि अरु वीरु, चद्र वदन सम कनक सरीरु ।।६६।।

लेकर पुत्र चले निरगथ, कुमरु कुमारि नगर को पंथ ।
तहि अवसर जन राजा तने, ढूढत फिरै जुवल वन घने ।।६७।।

देवी वलि कारण आतुरे, दोऊ दृष्टि तासु की परे ।
पभन्यो कूकि सफलु भयो कायु, ए वलि पूजा दीवे आइ ।।६८।।

लषण वत्तीस कनक सम देह, पकरि चलै देवी कै गेह ।
जनौ रविचद्र राहु पाकर्यो, जनौ कुरगु केसरि वसपर्यो ।।६९।।

चिन्तन—

सजम कर शील निरमले, तिनहि पकरि जब किकर चले ।
ता मन चिंतै अमैकुमार, जीवनु मरनु जासु एक सारु ।।७०।।

पेष्यो वहिनि वदनु अवलोइ, जान्यो मत जिय डरपति होइ।
पभन्यो निसुनि अभैमति वीर, किम सुंदरि संकुचहि सरीर ।।७१।।
मुह मयक किम होहि मलीन, ए किम करहि हमारो हीन।
जो जिन सासन आगम कह्यो, हम गुरु पास सुदृढुकरि गह्यो ।।७२।।
जीव हि कोई सकै न मारि, काया थिरु न होइ ससारि।
ताते मुनिवर करहि न लोहु, काया ऊपरि छाडहि मोह ।।७३।।
धूटै आवन राषै कोई, तिम अनपूटै मरणु न होइ।
वहिनु लियह ससारु असारु, एकुइ धर्म्म उतारण हारु ।।७४।।

दोहा

छिज्जउ भिज्झउ रऊ, वहिनु लिएहु सरीरू।
अप्पा भावहि निम्मलऊ, जे पावहि भवतीरु ।।७५।।
कम्मह केरो भाव मुनि, देहु अवेयनु दव्वु।
जीव सहावैं भिन्नु इहु, वहिनुलि वुझहि सव्वु ।।७६।।
अप्पा जानहि नानमऊ, अन्नु परायउ भाउ।
सो छडेपिनु भोवहि, निसावाहि अप्प सहाउ ।।७७।।
अट्ठह कम्मह वाहि रऊ, सयलह दोसह चित्तु।
दसन नान चरित्रमऊ, भावहि वहिणि निरुत्तु ।।७८।।
अप्पै अप्पु मुनत्तु जिउ, सम्माइट्ठि हवेइ।
सम्माइट्ठी जीवु फुडु लहु कम्मे मुच्चेइ ।।७९।।
समिकत रयनु न दीजै छाडि, हम सो सुगुर कह्यो जो टाडि।
वार वार किम कहिए वीर, सुंदरि होह अडोल शरीर ।।८०।।
भायर वचनु निसुनि सुकुमारि, सारद मयक वयन उनहारि।
तुम जानी भयभीत शरीर, तो मो सिष दीनी वर वीर ।।८१।।
ताते वीर तुम्हारो न्याव, तुम जाणो भामनि परजाउ।
जानमि मरणु पहूच्यौ आनि, डरपमि नही वीर गुण खानि ।।८२।।
को काको ससार असारु, हिंडिउ जीव लेतु अवतारु।
सो कुलि को जा लईन वीर, सो दुपु कोजु न सह्यो सरीर ।।८३।।
जे हम सात भवंतर फिरे, ते किम वीर वेगि बीसरे।
जिनवर धर्म्मु सुगुरु को कह्यो, दई दई करि सो हम लह्यो ।।८४।।

जिनवरु जपत मरन जौ होइ, याते भलो न भायर कोइ ।
सो किम भायर दीजे छाडि, हो सन्यासु रही मन माडि ॥८५॥

गाथा

मुणि भोयणेन दव्वं, जस्स सरीरं पिषीनु तव यरणं ।
सन्नासे गय पान तन्नगय कि गय तस्स ॥८६॥

दाटग्रो षीर सिरावमह्यौ, भायर वहिनि मोनु तव गह्यौ ।
गहि कर किंकर चाले धीढ, मारिदत्त कारज मन इठ ॥८७॥

चंडमारि देवी का वर्णन—

एहु चले देवी कै थान, जीव जुवल जहे वधे श्रान ।
वाजहि वाजे समिढो दुनो, नाचहि जोगी अरु जोगिनी ॥८८॥

वाजहि तूर भयान भेरि, जनौ जमु त्रिभुवनु मारे घेरि ।
जह देवी वैठी विगराल, मंड पुछ यो महिष की षाल ॥८९॥

हाथ त्रिसूलु सिह श्रारुही, मुंडनु को करि काठो गुही ।
वरडे दंत जीह वाहिरी, वारवार मुखु वावे षरौ ॥९०॥

अरुण नयन सिर सूवे वार, जानहूवरै अगिनिकी ज्वाल ।
रुधिरु उवटनौ जाकै श्रग, श्रास पास बिढि रहे भुजग ॥९१॥

आमिषु भखे उठ लरकाइ, महू नस केलै षरी जह्याइ ।
करि कटाष जव देवी हसो, पेषतं गर्भु नारि कौ षसे ॥९२॥

जीव भषण कौ अति श्रातुरी, जनौ जम रूप श्राणि श्रवतरी ।
पेपत षरौ भिहावन ठौरु, नीकौ कहा तासु महि श्रौरु ॥९३॥

श्लोक

भयभीत सदा क्रूर्य निर्दयोपलभक्षिनी ।
निर्व्विनी जीवघातिश्चेहशी कस्य भवे प्रिया ॥९४॥

साधु साध्वी की सुन्दरता का वर्णन—

जह योगी राजा नर श्रोर, गहि किंकर लाए तहि ठौरा ।
कुमरु कुमारि सकोमल श्रंग, केसरि चप कुसुम सम रग ॥९५॥

नर वेमन पेष्यो श्रवलोइ, मनुव जुवलु इहि रूपन होइ ।
अमरु पुरंदरु की ससि सुरु, किम श्रनंगु मानिनि मनचूरु ॥९६॥

को हरि हरु संकरु घरणेसु, के दीसे विद्याधर भेसु ।
अतिसुरूप का एह कुमारि, सुरि नरि किन्नरि को उनहारि ॥९७॥

यह रभा कि पुरदरि सची, रौहिनि रूप कवन विहि रवी ।
सीता तारा कि मंदोद्दरी, को दमयती जोवन भरी ॥९८॥

पोमावेसर सेवन देवि, नाग कुमारि रही तपु लेवि ।
कै अनगु जव सकर डह्यौ, तव हो रति विधवा पनु लह्यौ ॥९९॥

ताकौ विरहू न सक्यो सहारि, तौ वालक तपु लियो विचारि ।
कै यह देवी मानौ होइ. मैरी वलि पूजा अवलोइ ॥१००॥

सुप्रसन्न हुइ आइ एह, भेषु फेरि करि निरमल देह ।
कुसुमावलि वहिनि मो तनो, कै यह तासु कोषि की जनो ॥१०१॥

पुत्री पुत्रु तासु हो भयो, निसुन्यो तिन वालक तपु लह्यौ ।
पेषि रूपु मन वाढ्यो मोहु, राजा तनौ गयो गलि कोहु ॥१०२॥

राजा द्वारा प्रश्न—

तव हसि नरवे वावाभनो, सु दर पभरिण वात आपनी ।
देसु नयरु कुलु माता वापु, सु दरि कवन कौन तु आपु ॥१०३॥

अति सरूप तुम दीसहू कौन, कारण कवन रहे गहि मौन ।
किम वैराग भाव मन भयो, वालक वैस केम तपुलयो ॥१०४॥

अभयकुमार का उत्तर—

राय वयनु सुनि अभयकुमार, भासै विहसि दया गुणसार ।
आकुरतु वग्ते असमान, तह किम मेरौ धर्म्म कहान ॥१०५॥

सठ पास जिम तरणि कटाय, वायस जेम छुहारि दाष ।
सोवत आगै जेम पुरानु, जिमविनु नेहहि कीजै मानु ॥१०६॥

सरस कथा जिम मूरिष पास, कीनी जैसी किरपन आस ।
जिम षल कौ कीनौ उपगास, जिम त्रिषु भूषहि छरस अहारु ॥१०७॥

वहिरै आगै जैसो गीउ, जिम सीतज्जुर दीनौ घीउ ।
माइ पिता विनु जैसो आरि, जिम सिंगार पिया विनु नारि ॥१०८॥

अघहि पास निरतु जिम कियो, जिम घनु अनषायो अनदियो ।
ऊसर खेत वए जिम धानु, जैसे भाव भक्ति विनु दानु ॥१०९॥

जिम एवि हल जाहि प्रभु जानि, तेम हमारी धर्म्म कहानि ।
जहि आनदु करत जिय घात, तिहि किम राय हमारी वात ।।११०।।
जीव जुवल जह वधे वराक, देविहि वलि पूजा कताक ।
ताहि ठाकरै धरा हरि कौनु, ताते राय रहे गहि मौनु ।।१११।।
मारिदत्त मति निरमल भई, मानहु उतरि ठगौरी गई ।
राज पुरवुरु हवर सूर, वाजत दरजि रहाए तूर ।।११२।।
जोगी चक्रु जुस्यौ हो घनौ, बरन्यौ लोगु सयलु श्रापनौ ।
सयल लोक मुनिवर मुहू पेषि, राषे जन कुचित्र के लेषि ।।११३।।
भनै राउ सुनि वाल जईस, जौ परि तेरौ मनह नरोस ।
तौ पयडेहि कथा आपनी, जैसी वीत्ती पैंषी सुनो ।।११४।।
सुन्दर जती सयलु महु भासि, जो अनुभई सुनी गुरपासि ।
जोनि सुनौ सौनि सुनौ एह, जो न सुनै तसु कीजै केह ।।११५।।
आसिकु दे वोल्यो रिषि राउ, जान्यो राइ तनौ सुभ भाउ ।
निसुनि देव दिढ मन थिरकान, पभणमि अपनी कथा पहान ।।११६।।

वस्तु बंधु

ता अभयसुरुचि राय वयनेणा ।
आहासइ कुमर गुरु, सु हमवाणि सुकुमाल गत्तउ ।
जो सुह मग्ग पयासयरु, धम्म कह तरु एहू ।
नि सुनहू सुयज विचित्र कहा चत्तु सुन तह देहू ।।११७।।
भासे अपनी कथा कुमारु, जामन तिनु कचनु एक सारु ।
सुनि महिमा निणि माननहार, भोग पुरंदर राजकुमार ।।११८।।

अवन्ती देश एवं उज्जयिनी नगरी—

देसु अवंती नयरि उजैनि, भोगभूमि सम सुष की सैन ।
वन उपवन सरवर कुव वाइ, पेषत अमर विलंवहि आइ ।।११९।।
दल फल सघन कुसुम रस वास, कलप विरष सम पुजवहि आस ।
मठ मंदिर सतपणैं अवास, एक समान वसै चौपास ।।१२०।।
सुरह रस मद्यर सुर समलोगा, धन कन कंचन विलसहि भोगा ।
वरण वयरि छत्तीसौ कुरी, जनकु सु धनपति निज रचि धरी ।।१२१।।

जसोहु राजा एवं चन्द्रमती रानी—

तहि पुरि नरवे नाम जसोहू, नियधन इद्रहि लावै पोहु ।
चद्रमती राणी ससि वयणि, मद गज गमनि एण समनयणि ।।१२२।।

कोमल तन कुच कठिन उत्तंग, जनु लैकू कुह किये सुरंग ।
वीना हस वस सम वानि, अतेवर सयल हमि पहानि ॥१२३॥

राजु करत पालत नय नीति, इहि विधि गये वहूत दिन वीति ।
पुत्र वेलि जिनि लीनी पोषि, नदनु भयो तासु की कोषि ॥१२४॥

पुत्र का जन्म—

निसुनि राय नदनु अवतर्यौ, वाढ्यो रहसभाव सुष भर्यो ।
कोलाहलु वदीजन कियो, दीनौ दानु उल्हास्यौ हियो ॥१२५॥

श्लोक

पुत्रयन्मोरन नित्वा विवाहो सुभसंज्ञका ।
इष्ट-सजनमेलाप ससारोक-महासुष ॥१२६॥

यशोधर नाम रखना—

पाषरु ज्यारै सुजस की खाणि, जसहरु नामु धर्यौ इह जानि ।
वाल विनोद नारि मनु हरै, निसु दिनु वाढे कर सचरै ॥१२७॥

आठ वरिष वीते सुष माहि, वालकु माइ पिता की छाहि ।
नयण पेषि रज्यो परिवारु, सूरतेय सम राजकुमारु ॥१२८॥

अध्ययन—

पढन हेत सौप्यो चटसार, घिय गुरा लाडू किये कसार ।
पूजि विनायगु जिन सरस्वती, जासु पसाइ होइ वहूमती ॥१२९॥

भाउ भक्ति गुर तनी पयासि, पाटी लिषि लीनी ता पासि ।
पढ्यो तरकु व्याकरण पुराण, हय गय वाहन आवधठान ॥१३०॥

पढि गुने मयलु पिता पहु गयो, सिर चुवनु करि अकौ लयो ।
पेषि पुत्रु सुषु उपज्यो गात, फुनि माता पहु पठयो तात ॥१३१॥

चद्रमती भैटो पग पर्यो, पुत्रहि देषि हियौ सुष भर्यौ ।
रूपवत विद्या गुण खानि, सफलु जनमु माता तहि मानि ॥१३२॥

जेसौ माइपिता कौमाहू, पभनै जननि अमरु चिरु होऊ ।
पेपि तरुनु नदन नर नाहु, वंस वेलि हित ठयो विवाहु ॥१३३॥

कुमारि पचसै रायनु तनी, एक एक अछरि समगनी ।
अनकु सुमयन तनौ कट कौधु, चमकत चौकुल गावति चौधु ॥१३४॥

नयन वयन जोवन सुकमारि, जनौ सोरन फूली फुलवारि ।
भयो विवाहु जसोधर तनौ, सुयन कुटम सुपु उपन्यौ घनौ ।।१३५।।

अमिय महादेवी पटराणि, पेषत रुपु अनग की हानि ।
नयन वयन कुच धरी अनूप, मानहु रची पुरंदरि रूप ।।१३६।।

भूल्यो कुमरु भोगत सुसग, बिछुरत डाहू परै दुहु अग ।
एक दिवस जसहर कौ ताउ, सभा सहित सुस्थित महिराउ ।।१३७।।

अवर बहूत वैठे नरनाथ, पेष्यौ मुहु दर्प्पनु लै हाथ ।
धवलौ एकु कनपुता केसु, मन बैराग्यौ ताम नरेसु ।।१३८।।

मानहु कहतु पुकारैं कान, एर वुढापे केसहि दान ।
करिहै बुरौ वुढापौ हाल, दृष्टि पतनु अरु हालैं खाल ।।१३९।।

श्लोक

जरामुष्टिप्रहारेण कुब्जो भवति मानव,
गत जौवन मानिक्या निरीक्षति पदे पदे ।।१४०।।

जव लगि देह न व्यापे व्याधि, तव लगि लेमि परम पदु साधि ।
विरकत भाउ राउ मन भयो, राजु गेहु तिन जौ तजि दयो ।।१४१।।
विरक्तस्य तृणं राज्य, सूरस्य मरण तृण ।
ब्रह्मचारी तृणं नारी, ब्रह्मज्ञानी जगस्त्रिण ।।१४२।।

राउ जसोधर थाप्यो राज, आपुनु चल्यो परम तप काज ।
लीनो दीक्ष परम गुरपास, तपु करि मुयो गयो सुरपास ।।१४३।।

महाराजा यशोधर का शासन—

महियलि राजु जसोधरु करे, हरि सम राजनीति व्यौहरै ।
नयरि उजैनी स्वर्ग समान, करै राजु जसहरु तहि थान ।।१४४।।

पुत्र जन्म—

अमिय महादेवी सुरतिरी, वहुत दिवस मानि निवसिरी ।
एक नारिकौ नदनु भयो, जसहर पास वधैया गयौ ।।१४५।।

तहि मवु कुटमु महासुख भर्‍यौ, मनौ जिन जननि देवु अवतर्‍यो ।
वाढ्यो कुमरु रूप गुण सारु, धरचौ जसोमति नाम कुमार ।।१४६।।

कियो जसोमति तनौ विवाहु, सुवन अनदु दुवन उर डाहु ।
दै जुगराजु पट्ट वैसारि, मगल घोप कलस सिर टारि ।।१४७।।

जन सेवग सब सौपे वाह, आपनु भोग करै घर माह।
कवहू सभा वैठे आइ, निसुदिनु पिय भोगवत विहाइ ॥१४८॥

सुनि सपै निवास गुनरासि, नारि चरितुहौ कहमि पयासि।
मारिदत्त सुनि देषिरु कानु, जसहर राजा तनौ कहानु ॥१४६॥

तहि अवसरि सुखमौ दिन एक, जसहर राउ राज की टेक।
सभा उठी दिनयरु अथयो, रानी तनौ बुलावो गयो ॥१५०॥

ता महल्यो वोलै सिरु नाइ, राणिहि तुम विनु न सुहाइ।
चाहइ वाट तुम्हारी नाह, जिम जलहर विनु वारि साह ॥१५१॥

तिम तुम विनु रानो कलमलौ, जोवनु सफलु देवु जवचलौ।
निसुनि वयनु तव नरवे हसै, रानी पुनि चित ताकै वसै ॥१५२॥

जेसौ भवरु उमाह्यो वास, युग रति रग रवण की आस।
चल्यौ राउ रानी के गेह, जेम हसु हंसिनि कै नेह ॥१५३॥

दोहा

यशोधर एव अमृता का प्रेम—

एक हिरावै सुख नही, जौ न दौवराचंति।
मालुति मन मधुकर वसै, मधुकर न मालु ति ॥१५४॥

चौपई

चपक मला अरु शसिरेह, दोऊ सषी कनक सम देह।
दोऊ छयल चतुर परवीन, जोवन साम कटि षीन ॥१५५॥

अमिय माहादे तनो पवासि, निसु दिनु निवसहि रानी पासि।
राय तनौक रूप कस्यो आइ, चित्र साल ले गई चढाइ ॥१५६॥

राउ पेषि रानी विहसाइ, पालिक ते उतरि अकुलाई।
राय विहसि कर षैचौ चीर, उघर्यौ रानी तनौ शरीर ॥१५७॥

सावै टारि जनकु विहिगढयो, मानहु कनकु अगनि ते कढचो।
किष्ल कगीज्यौं वैनीरुरो, जनुकु गरुड भै नागिनि दुरै ॥१५८॥

विहिसति दत पक्ति ऊजरी, जनौ घन मौ कौधी वीजुरी।
चचल नयन मरोरति अगु, जनु कुरगि विछोहै सगु ॥१५९॥

हाव भाव विभ्रम सविलास, रुलु घुलति मधुकर रस वास।
रम्यो सुरतु सुपु उपज्यो गात, सोयो राउ भई अध रात ॥१६०॥

कुवड़े द्वारा संगीत प्रदर्शन—

मारिदत्त यहु निसुनहि आन, नादु पर्‌यौ रानी के कान ।
हरित शाल निवसै कूवरी, व्याप्यो रोग छुवाहू वरी ।।१६१।।

घरी सुकंठी गावे गीउ, सो निसि दिनु वहरावे जीउ ।
राग छत्तीस मुनै वहु भेय, भूलहि सुर कामिनि सुनि गेय ।।१६२।।

प्रथम रागु भैरी परभात, सुदरि निसुनि उल्हासी गात ।
ललित भैरवी कीनी रागि, जनुकु विरह वन दीनी आगि ।।१६३।।

रामकरी गूजरी सुठान, निसुनत मयन हुई जनोवान ।
आसासै धूंमिलवे भाउ, सुनि गज गामिनि भयौ उमाउ ।।१६४।।

गौरी घरी सुहाई नादु, चन्द्रवदनि मोही सुनि सादु ।
करि गधारु सुकोमल भाष, भामिनि भूलि गई अभिलाष ।।१६५।।

माला कोश जब निसुन्यो वाल, नियतन मयन शलाए शाल ।
मारु जैतसिरी की छाह, जो सुभटनु मीठो रण माह ।।१६६।।

टोडि हि वैरारी सौ सगु, कामनि विरह मरोस्यौ अगु ।
भोव परासो अवर अडान, महिलहि पर्‌यो विरह रसु कान ।।१६७।।

करि कामोद ठकुराई रागु, वनितहि पर्‌यो मयन पुर दागु ।
सुनि हि दोल नारि कर मरी, मक्षिस तुच्छि भ्रम जनो परी ।।१६८।।

करि कल्यान अवरु कानरौ, गेहिनि कान सुहाई घरौ ।
केदारौ कीनौ अधरात, मृगलोचनी पसीजी गात ।।१६९।।

रागु विभास अवरु वडहंसु, कीनौ जव हरि मार्‌यो कसु ।
कुविज कठूह राई गूजरी, कीनी राम सिया जब हरी ।।१७०।।

रागु विरावरु अरु वगाला, तिरियहि तई कुसम की माला ।
दीपकु वडौरागु जव करै, जासु तेज उठि दीपकु वरे ।।१७१।।

कियो वषार वधु सरुमेलि, सींचि मयन विरह की वेलि ।
विहागरौ सूहे सौ जोरि, जनु सुजान रमु लियो निचोरि ।।१७२।।

मेघ रागु जव लियो नवाजि, वरसै रिमिझिमि जलहरु गाजि ।
जवर अलापै गौड मलार, विनुही वादर परैं फुसार ।।१७३।।

धनासिरी मार ऊह जेज, राणिहि रह्यौ न भावे सेज ।
करी मलाई मघ माधई, पव मुनि सुनत मूरछि गई ।।१७४।।

गौरा सारगु सारग नाट, जनकु सुहई मयन को साट ।
जौ देसी मिल वेवहु भाइ, सुनत अहेरै हरिनु भुलाइ ॥१७५॥

रागु वसतु कुवरौ करै, जनौ मधुमास भवर गुजरै ।
लागी लात सोरठी तनी, सुनि कनकगि काम मरहनी ॥१७६॥

सिरि रागु सुनि दीनौ कानु, मूरिषु नही होइ जो जानु ।
रानी अगु काम सर हयो, जसहरु राजा विसहरु भयौ ॥१७७॥

भुज पजर तेसो नीसरी, ज्यो घनते निकसी वीजुरी ।
सरद पटल ते जनौ ससि रेह, निकरी एम सकुविकरि देह ॥१७८॥

फुणि अरगाइ धर्‌यौ भुइ पाउ, डरपै सो जिनि जाणै राउ ।
चपक माला लीनी वोलि, द्वार कपाट दिये तहि खोलि ॥१७९॥

रानी एव दासी की वार्ता—

रानी वात कहै अरगाइ, तो ते मेरी काजु सिराइ ।
गधर्व कला रागु जिनि कर्‌यौ, ता विनु जीव जाइ नीकस्यौ ॥१८०॥

जौ तू सखी सुजानी आपु, तौ खोवहि मेरौ तन तापु ।
निसुनत रागु वहुत दिन भए, ते सषि पाछै जुग वरिगए ॥१८१॥

करति निहोरौ तोसौ भाषि, अव लै प्राणु हमारौ राषि ।
तासु चरण लै मोहि दिपाइ, सोई सिष भपिमो सिष राइ ॥१८२॥

ऐसौ वचनु भन्यौ तव वाल, तव तन सकुवि चंपक माल ।
हा हा भनि वोली धर थू कि, सुन्दरि वचनु भन्यो किम चूकि ॥१८३॥

कूवड़े का वर्णन—

वह कूवरौ दईकौ हयौ, फुटि अगु सवु वाकौ गयौ ।
जैसौ जस्यौ दावा को डूडु, मानहु काटि चहोर्‌यौ मूडु ॥१८४॥

पाइ विवाई मुहू उर्‌यो, निसि दिनु रहै लीदि महु पर्‌यो ।
कीरा परे विगधि कौमूलु, अनुदिनु माथै व्यापै सूलु ॥१८५॥

उलटि पटल अपिनु के रहे, परे कुवणे व्याधि के गहे ।
पूठी साइ रहै हर हूपु, महियलि सहे नरक को दूपु ॥१८६॥

लाठी लात मुठी का सहै, रानो कवनु वरनि घिन कहे ।
माथै कौवा मारहि पौट, सो विहि रच्यो पाप को मोट ॥१८७॥

हसै न कवहू नीको कहै, पर्‌यो हढोलै रोवतु रहौ ।
परो अलप निकु वायस दीठि, करिहा सौ मिलि आई पीठि ॥१८८॥

हौ रानी किम वरनौ तासु, मुहू पेपै तिहु परै उपासु ।
जाहि सुनत दुपु उपजै कान, सुंदरि कहहि तासु पहूजान ॥१८६॥

बात नु हासी छूटी मोहि, भमिनि पभनि सदो किम तोहि ।
तो पिउ रमत भई अधरात, तौ न तो रति उपजो गात ॥१६०॥

रानी वचनु—

सुनि वचनु रानी कलमली, पभनै तै सिष दीनी भली ।
वयनु एकु मेरी निसु नेह, चपक माला कानु थिरु देह ॥१६१॥

गोत नाद वेधिये सुजानु, निसुनि हरिन फुनि देइ परानु ।
अरु जौ वालकु रोवतु होइ, निसुनत रहै गोद महू सोई ॥१६२॥

होइ कौविजौ डस्यौ भुजग, निसुनि गीतु विपु रहै न अग ।
चतुर सुजान जिते नर नारि, जे जानहि सुनि मूढ गवारि ॥१६३॥

श्लोक

सुषणिसुखनिधान दुखिताना विनोदः ।
श्रवण हृदयहारो मन्मथस्याग्रदूतः ।
अति चतुर सुगम्यो वल्लभो कामिनीना ।
जयति जगति नादो पचमो भाति वेद ॥१६४॥

राग तनै गुण जानहि माइ, मो मूरिष सौ कहा वसाइ ।
जानहि तू न हमारी भीर, पाहनु जिम भेदिये न नीर ॥१६५॥

किमि मुहू मोरि हमै घर वसी, मेरौ मरणु तुहारी हसी ।
जामि सखी तेरी वलिहारु, इतनौ करि मेरौ उपगारु ॥१६६॥

चंपक माला का उत्तर—

चपक माल कहै विचारि, जानी निजु सत डोली नारि ।
रानी केम भइ वावरी, को सुनि सीतु कि व्यतर छरी ॥१६७॥

दोहरा

हा मुर सुदरि सम सरिस, केम पयासहि एहु ।
सतो न वल्लहु परिहरै, अवरु करै नहि नेहू ॥१६८॥

भामे निअ सहश पुरिषवस, केम समप्पहि देह ।
सील नवल्ली वल्लरी, जालि करै किम षेह ॥१६६॥

सुंदरि जोवनु जान दै, अरु जौ जाइत जाउ।
सीलु महगौ मति टरौ, आन्नह जनम सहाउ ॥२००॥

सुदरि जोवनु राजु धनु, पेषिन किज्जै गव्वु।
सवरु सीलु न छाडिये, अवसि विनस्सै सव्व ॥२०१॥

सुनि फुल्लार विंद मुख जोति, छाडहि रयनु गर्हहि किम पोति।
तजहि हसु किम सेवहि कागु, भूलौ भई षिलावहि नागु ॥२०२॥

अम्रतु तजि पीवहि विप मूतु, सुरपति छाडि रमहि किम भूतु।
छाडि ईप किम गोवहि अंडु, रानी केम करइ घरु भडु ॥२०३॥

सील रयनु तिहुलोक पहानु, सीलु नारिमडन गुन ठानु।
सोभू सजम भाव करहि, फोरि दहै डीकागनु देहि ॥२०४॥

माता-पिता ससुरु अरु सासु, पेषि विचारि वस कुलु वासु।
राउ भतारु तरुनु घर सूनु, चौक चढो चाटहि किम चूनु ॥२०५॥

अरु तू एक विचारहि आपु, करत कुकर्म्म न दुरिहै पापु।
ता वही कान दुवन कै परै, जैसै तेलु नीर विस्तरै ॥२०६॥

अरु जौ केम केम दुरि रहै, तौ पाछै कर तारुण सहै।
व्यापै रोग सोम तन रोर, फुनि नरकादि सहै दुष घोर ॥१०७॥

अर तू सामिनि पेषि विचारि, यह अपजसु चलिहे जुग चारि।
मेरे कहत राषि मनु षैचि, तिय तुम कारण रयनु मन वेचि ॥२०८॥

तू आतुरी करहि किस एह, जाहि रमनप्पो छाडहि गेह।
काढहि जिया तस सेकी षाल, नारि मरण बुधि भई अकाल ॥२०९॥

णिसुनै पेषै करत कुपाउ, तौ महिषो दिगडावै राउ।
तौ सुन्दरि मरिये दुष देषि, मै सिष सामिनि दई बिशोपि ॥२१०॥

जिम माषि चदनु परिहरै, बिगधि अमेध जाइ रति करै।
रवहि कुवरौ राजा छाडि, तेलु षाइ धो धरियै गाडि ॥२११॥

ताकै जोवन दीजै ऊक, वयण षेह अरु जीवत्त थूक।
तपत तासु भग दीजै डाहू, सा यो छाडि बरै परनाहु ॥२१२॥

रानी का उत्तर—

सषी बचनु सुनि बिलषी वाल, जरी रवि किरणि पुप्फकी माल।
कुद दसनि वोलै पहू नारि, काज आपनौ करि मनुहारि ॥२१३॥

जान मि वसु गेहु कुलुठानु, जोवनु रूपु तेजु गुन मानु ।
रूपु कुरूपु हेतु अनहेतु, पोवु अपोवु किण्क अरु सेतु ।।२१४।।

परि जव मयनु सतावे वीर, तू नही सषी जानहि पर पीर ।
मन भाव तौ चढै चित आणि, सोई सषी अमर वर जानि ।।२१५।।

श्लोक

वयो नवं रूपमती वरम्थ कुलोन्नतिश्चेति सुवुद्धि रेषा ।
यस्य प्रसन्नो भगवान्मनोभू, स एव देवो सषि सुन्दरीनां ।।२१६।।

जौ तू मो भावति सुमोह, तौ तू साथ हमारै होइ ।
जब रानी पभनै कर जोरि, बोलै सषी बहुरि मुषु मोरि ।।२१७।।

दोहरा

रानी जे अचलन चलहि, जानत अप जुजि खाहि ।
दिवस चारि कै पाव मौ, संमूले चलि जाहि ।।२१८।।

जे पर पुरिसहि राचहि घनी, ते गति पति काटहि आपनी ।
तू सिष देत न मानहि दापु, षिन सुपु जनम जनम कौ पापु ।।२१९।।

रानी निसुनि भई अनमनी, मोरी वात सषी अवगनी ।
मैं तू जानी सषी सुजानि, तौ मै करी तुम्हारी कानि ।।२२०।।

तो हि कहाए ते सौ परी, जोहौ कहौ सु करि रावरी ।
विहिना लिष्यौ न मेट्यौ जाइ, मन मौ सषी षरी पछिताहि ।।२२१।।

रानी एवं दासी का कूवड़े के पास प्रस्थान—

वरजै कवनु अमारग जाति, तव उनि चली सग मुसिकाति ।
दोऊ जनी चली अरगाइ, मदे देति सुहाए पाइ ।।२२२।।

चमकति चलीजु मोही राग, जनुकु सुहरिणि विछोही वाग ।
चलत पाउ पाहन सौ पर्यौ, नेवर धुनि सुनि राजा जग्यो ।।२२३।।

अमिय महादे पेषी जात, चितयो कहा चली अधरात ।
वाढ्यौ कोपु राय कै अग, हाथ षरगु लै चाल्यो संग ।।२२४।।

ढूकतु लुकतु पाइ थिर देतु, नारी तनौ कनसुवा लेतु ।
अमिय महादे चपक माल, सोह दुमवार पहूती तहि काल ।।२२५।।

दौने जहि कपाट पर दारु, जाग्यो सुनि नेवर झुनकारु ।
भनै रिसानी कौ तुम चली, तारे फिरे अर्द्ध निसि गली ।।२२६।।

उत्तर दियौ तासु सुंदरि, एक ससि रेषा है दूसरी।
और मूढ को आवे आन, गढ गाढौ राजा कै थाण ।।२२७।।

जानि बूझि तू उठहि ग्सिाइ, मानौ तो लागी वुढवाइ।
चली नारि यहु उत्तर कीयौ, उसहो छेव राय पगु दीयो ।।२२८।।

कूवड़े के पास पहुंचना—

जासु रमरण की राणि हि आस, गेहिनि गई कूवरा पास।
जाइ जगायो चरण नु लागि, अति रिस भर्यौ उठउ सो जागि ।।२२६।।

तिनि दासी भनि दीनी गारि, सुन्दरि विहसि करी मनुहारि।
जो जसु भावे सो तसु ईठु, सत्य पाषानो जग महु दीठु।

जो जाने जस्य गुणे, सो तस्य आयर कुणए।
फलियो दपह विडवो, कावो निवार्हलि चुणए ।।२३०।।

दोहा

सेजह छुडिउ वालहा वा कारण निमि जग्गि।
कठ लागि दोऊ रहे भावरि बुरी व जग्गि ।।२३१।।

रानी का विनय—

रहि न सकी तुझु विनु, सकमि न तोहि वुलाइ।
पजरु ग्गहि राजा रह्यो, ज्यो तो उवरि पाइ ।।२३२।।

रानी गई तासु कै सग, मनो स्वान विटारी गग।
गरुड नारि मनु मानी नाग, हसिनि जनुकु भागई काग ।।२३३।।

जुनुकु पुरदरि सेई भूत, जनु ससि रेह राहु ग्रह धूत।
सोहिनि जनुकु सुडहु को सेठ, रानी रही कूवरा ढेठ ।।२३४।।

आपुनु पेपि राउ पर जर्यौ, जनौ घ्योगिभ हुतासन परचौ।
काढि षडग एहु घाले घाउ, फुणि चित चेति चमत्र्यौ राउ ।।२३५।।

इह तिय निंद दुण्ट गत लाज, णीचऊ ठवुधि करै अकाज।
अलितरासिणि धिण अविचार, साहसु करतन लागै वार ।।२३६।।

उत्तिमु छाडि नीचु सग्रहो, मनमहु अवरु अवमुह कही।
पापिणो के किम हरमि पराण, मारण कही न वेद पुराण ।।२३७।।

कपुरिसु एहु कूवरौ राडा, दोवरु वुरौ पीठि कौ हाडु।
झूठौ पाइ पेट दिन भरै, पाइन चलहि लीदि मौ परै ।।२३८।।

श्लोक

दालिद्री च रोगिनो मूर्ख' दयादान विर्वजित: ।
क्षण ग्राही कलकी च जीवितोपिमृतोपि च ।।२३९।।

ताक पुरिसहि करमि किम घाउ, रह्यौ विचारि अवणि कौ राउ ।
दोऊ हणत परत।कौ हाहि, बहूर्‌यो राउ एह मन जाणि ।।२४०।।

राजा यशोधर का वापस जाना—

चित्रसाल पालिक परिगयो, णिवडिउ जनकु वज्र कौ हयो ।
कारणु करै राउ मन कूरि, परिहस अगिणि दई तण पूरि ।।२४१।।

राणी काम भूत को गही, रमि कूवरौ चली गुण रही ।
डगमगाति डरपति डर लई, पेदि स्वानस्यारि वन दई ।।२४२।।

जणु गाडर विजुराई मेह, मलिण सडील पसीनी देह ।
फुणि पिय भुज पजर सचरी, नागिणि जणकु महाविष भरी ।।२४३।।

करतौ राउ सरस रस केलि, सो अवभई महाविस वेलि ।
यह दुपु वह सुपु वरणै कौनु, पापिनि दियो धाइ जनु लौनु ।।२४४।।

श्लोक

नृमत न विष किंचित्, एषा मुक्ता वरागणा ।
सैवामृतमयो रक्ता विरक्ता विषवल्लरी ।।२४५।।

चौपई

भामणि लागी केम णरेस, जनु राषि सिनि भिहा वण भेस ।
अपत निलज्ज पापकी पुरी, डाइणे जणकु गुदी गहि जूरी ।।२४६।।

दोहा

तहि णरवै मन चितवै, पेषिवि नारि चरित्रु ।
देहु महातरु प्रभु तणौ, दुष महावन सित्तु ।।२४७।।

हाहा एहु अणछु जगि कासु कहि जइ भासि ।
अपजस लाज पयासणौ पावकु कम्मह रासि ।।२४८।।

ही कोहानलु तिय चरिउ देह वनतरि लग्गु ।
चित्तु विहगमु मुद्ध तनौ उडिवि दह दिहि मग्गु ।।२४९।।

हउं जाणमि मो वाल हिय याहि विवालहु पोउ ।
पजरु मुझु सम्मप्पि कहू, अण्ण समप्पउ जीउ ॥२५०॥

चौपई

राजा यशोधर द्वारा चिंतन—

तहि अवसर चिंतइ मन राउ, अव फुणि भयो मरण कौ दाउ ।
छाडिम राजु गेहु धनु भोगु, माणिणि कुटमु सरस रस भोगु ॥२५१॥

तपु करि सहमि परीसह घोर, भवभय भवनु निवारमि भोर ।
विनु तप नही कर्म्म कौ घातु, तारे गणत भयो परभात ॥२५२॥

तव चूल वासे रविउयो, अवर तारागणु लुकि गयो ।
तीरणि चकवा मिले अणदि, सूर राइ मनौ काटी वदि ॥२५३॥

पच सवद वाजे दरवार, वभण पढहि वेद भुणकार ।
जसहरु सभा वैठ्यौ आइ, णिसि दीठौ वैरा गुण जाइ ॥२५४॥

चन्द्रमती रानी का आगमन—

तहि अवसरि चन्द्रमती राणी, पूजि किश्न आसिकु लै पाणि ।
आई जहा जसोधरु राव, मोह कर्म्मु सुवऊ परभाउ ॥२५५॥
आसिकु दयो राइ कै हाथ, पभण्यौ विरु जीवहि नरणाथ ।
माता चरण पर्यौ तव राउ, आई माता कियो पसाउ ॥२५६॥

यशोधर द्वारा स्वप्न वर्णन—

भणै राउ माता णिसुणेह, भासमि सुपिणु कानु थिरु देह ।
जैसो सुपिणु दीठ णिसि आजु, मानहु अवसि विनासै राजु ॥२५७॥

वितरु एकु महा परचेडु, किस्न अग कर लीनै दंडु ।
चित्रसाल अवर ते पर्यौ, सो मैभीतु पेषि हौ डर्यौ ॥२५८॥

णिसियरु भणै राइ सघरी, स्यौ परिवारण गरुव्यौ करी ।
जौ तपु करहित छाडमि आजु, ना तरु अवसि विनासै राजु ॥२५९॥

मेरौ वचन राइ प्रतिपालि, जीतव ईछु लेह तपु कालि ।
मै भास्यौ तपु करमि विहाण, तव सुरु गयौ आपनै थान ॥२६०॥

हौ तपु करमि माइ ससि मती, जासु पसाइ काटमि भवगति ।
कलमलि माइ वचनु तव भन्यौ, जिनवर तनौ धर्म्मु अवगन्यौ ॥२६१॥

चन्द्रमती द्वारा शिक्षा—

ऐसौ वचनु ण सुव मुह काढि, याहू तेर चवगनौ वाढि ।
सपिणु पेषि भैभीतु ण होहि, कुटमु मुयनु सव लाग्यो तोहि ।।२६२।।

जै सुपिणहि डरपै वरवीर, सगर केम सहहि सुव भीर ।
डरपै हीनु दीनु कुवि रकु, तू कुल मडनु राउ निसकु ।।२६३।।

देविनि के दिन भारे पूत, महियलि मैं मदमाते भूत ।
भवहि रैनि जोगिणि के ठाट, मढ मदिर वण तोरणि घाट ।।२६४।।

जौ सुव बूझहि साची वात, मोहु रयणि जाइ वर रात ।
कचाइणि देवी तो तनी, ताको वलि पूजा करि घनी ।।२६५।।

महिस मेस अज गडवराह, देवी की सुव पूज कराह ।
भास्यौ दिय वर तनै पुराण, जिनवर धम्मु ण णिसुण्यो काण ।।२६६।।

हो इकु सर सुमु राजु अषड, कचाइणि राषौ मुव दड ।
णिसुणि वचनु वोलै महिराउ, हा किमि मूढ भण्यौ जिय घाव ।।२६७।।

राजा द्वारा हिंसा का प्रतिरोध—

जीव घात जो उवजै धम्मु, तौको अवरु पाप को कम्मु ।
जे ते लष चौरासी षाणि, ते सव कुटमु माइ तू जाणि ।।२६८।।

सो ण भवतरु गह्यौण माइ, सो पसु घातु करण किमि जाइ ।
जीव घातु जो कोइ करै, णिहचै णरक माइ सो परै ।।२६९।।

श्लोक

नास्ति अर्हत्परो देवो, धम्मों नास्ति दया विना ।
तप परम निरग्रन्थो, एतत्सम्यक्त लक्षण ।।२७०।।

चन्द्रमती द्वारा अनिष्ट निवारण का उपाय—

चन्द्रमती वोली विहसि, हीरा दतपति झलकति ।
एकु वचनु सुव मेरी पारि, देवी तनी ण पूजा टारि ।।२७१।।

जैसे कुसरा आगै हू होइ, दुपु दालिद्र ण व्यापै कोइ ।
वण कुक्कुट करवा वहि एकु, देवहि देह होइ दुप छेकु ।।२७२।।

फुणि तू तप लीजहि सुकुमार, वलि पूजा करि अवकी वार ।
मान्यौ वचनु चन्द्रमति तनौ, माता भाउ पयास्यौ घनौ ।।२७३।।

वरण कूकुरु कीनौ सुति टारि, पेषि रहसु मान्यौ परिवार ।
करत कुभाउ या राजा डरयौ, लै करि दीपु कुवामह्व पर्यौ ।।२७४।।

जाणि वूझि कीजै जिय घात, कवरणु निवारै णर कहि जात ।
गयौ राव देवी कै गेह, परमेसुरी अपनी वलि लेय ।।२७५।।

हयौ अचेतु रहसु मन माणि, जनु कुसु सची महा दुषाणि ।
चन्द्रमती वोली तहि थाणि, थोरै भलौ हमारौ माणि ।।२७६।।

तू कुलदेवी कुल की वारि, रण रावर तू लेह उवारि ।
वहुत भगति करि रहसी देह, फुणि वदणस्यौ चाली गेह ।।२७७।।

जसहर जस मैं कुमरु हकारि, कलस ढारि आसन वैसारी ।
दीनौ राजु पटु दलु देसु, आपुनु वरण तप चल्यौ नरेसु ।।२७८।।

तहि ठा मारदत्त सुवि राइ, कर्म तनी गति कहण न जाइ ।
अमिय महादेवी ससि वयणि, सरस कजदल दीरह णयणि ।।२७९।।

भूलीही न कुवि जकै हेत, जसहरु राउ सुन्यौ तपु लेतु ।
अकुलानी विह लघल गई, जिम णव वेलि पवन की हई ।।२८०।।

जो ण होइ थिरु एको घरी, दिनु अथव तप रै कर मरी ।
सुनी न पेषी जो अनवदी, कलहि लैन वेम तपु सदी ।।२८१।।

यह फुणि मानौ कछु विचारु, जिहि ते दीक्षा लेइ भतारु ।
जाणमि राजा भया उदास, देषी रयणि कूवरे पास ।।२८२।।

रानी अमृता की प्रार्थना—

पेषत मानु राइ कौ मल्यौ, ताते कतु लैन तपु चल्यौ ।
जौ राजा फिरि माडै राजु, मेरौ सकल विनासै काजु ।।२८३।।

ऐसौ जानि डिभ मनभरी, चचल आइ राइ पग परी ।
नयन कमल भरि छाड्यौ नीरु, विरह वाण घन घुम्यौ सरीर ।।२८४।।

भणै नाह हौ तेरी दासि, साई मोहि तजहि का पासि ।
मो तजि किम तप लेहु भत्तार, तो विनु प्राण जाहि सुपियार ।।२८५।।

दोहरा

वालम जोवनु कुसुम वनु, केम चलै दवलाइ ।
सरस वचन विनु जलह रहि, ता विनु केम वुझाइ ।।२८६।।

वालम तुव महवाल हउ, तो विनु एह अकछ ।
कँ जरि वरि माटी भली, कँर तुमारै सछ ।।२८७।।

वालम तुम विनु रूवरी, लहियलि भारी होइ ।
सोता किझइ जणह जणु धीरी धरै ण कोइ ।।२८८।।

वालम विनु किम भामिनि किम भामिनि विनु गेहु ।
दान विहीनौ जेम घरु, सील विहीनौ देहु ।।२८९।।

चौपई

रानी भनै जोरि द्वै हाथ, हौ तपु करमि तुमारै साथ ।
परि मो वचनु एकु प्रभु देह, भोजनु करहि हमारै गेह ।।२९०।।

दियवर भणहि वेद की आदि, वलि विधानु भोजन विनु वादि ।
ताते एहु वचनु प्रतिपालि, फुणि तुम हम तपु लीवौ कालि ।।२९१।।

रानी वचनु मोहि प्रभु रह्यौ, मानहु मोह निसाचर गह्यौ ।
जनु पडि ढउना मेले सीस, भूली सवै पाछिली रीस ।।२९२।।

रानी चरितु रयणि जो रयौ, भाई मो सुपिनु हो भयो ।
भरम भुलानौ ठगि सौ लयौ, माग्यौ वचनु नारि कहू दयौ ।।२९३।।

रूपणि रवण कथा णिसुणेह, मैटै कवनु कर्म की रेह ।
मानी राइ नारि की वात, भामिनि रोम हुलासी गात ।।२९४।।

रानी द्वारा जहर के लड्डू वनाना एवं राजा को खिलाना—

तव राणी अपनै घर गई, बोली सषी रसोइ ठई ।
लडू किये वहुत विसु घालि, कछुकु तै वन दीनौ चालि ।।२९५।।

हीन वात किम वरणमि और, लौपि सोधि करि दीनौ ठौर ।
जसहरु चन्द्रमती सु पहाणि, दोऊ जैव न वैठे आणि ।।२९६।।

लाडू आनि परोसे चापि, भोजन करत उठौ तनु कापि ।
ताकी उपमा दीजै कौन, भूमि चालु सौ लाग्यौ हौन ।।२९७।।

जुर जाडे जहू घूम्यौ अगु, भयौ नयन काणनि कौ भगु ।
नसणी टूटि जीभ लठराण, चन्द्रमती के विकसे प्राण ।।२९८।।

वैदु वैदु करि राजा पर्यौ, अमिय महा दे कौ ज्यौ डस्यो ।
जौ राजा कौ जीवन होइ, तौ प्रभु मारै मोहि विगोइ ।।२९९।।

पापिणि भई आपनै भेस, सिर मुकराइ दिये तिनि केस ।
पकरि जरक सी दीनो दत, णिघिण हूयौ आपनो कतु ।।३००।।

जसवै नदनु आयौ धाइ, पितहि पेषि रह्यौ मुहु वाइ ।
विवस लोग समुझावहि तासु, जाणि राइ जग मौ को कासु ।।३०१।।

आदि अनादि भए अरु गए, जानै कवनु कितिक निरमए ।
पाप पुण्य द्वै चलहि सघात, ऊरण काहू दीसै जात ।।३०२।।

सुपुरिसु किम रोवे मुहु वाइ, लघुता होइ दुवनु विहसाइ ।
लाग्यौ तोहि घरणि घरु बघु, जस मै राज धुरा धरि कधु ।।३०३।।

अमिय महादै मौको धाह, मोकाकी करि वाले नाह ।
सो फुणि प्रभु समुझाइ राषि, जस मै राइ स कोयलु भाषि ।।३०४।।

माता जाणि न थिरु ससारु, वरजि रहायौ सवु परिवारु ।
जसहरु राउ चन्द्रमति आए, अरथी करि ले गए मसान ।।३०५।।

श्लोक

अर्थी गृहानिवर्त्तंते, मसानेषु च बाधव ।
सरीराग्निसजुक्त च पुन्न-पाप सम व्रजेत् ।।३०६।।

चौपई

किरिया करि नैन्हाइ सरीर, कुसुलै दियौ चूरु भरि नीरु ।
कीनी सयल मरे की रीति, भासो कथा गई जिम वीति ।।३०७।।

वस्तुबधु

देस जयवरु अभयरुह णाम, आहासई गुण गहिरु मारिदत्त पहु ।
सुनि भवतरि कम्माह विचित्र पाव पुन्न फल निसुनि ।
अतर जानतहू जसहर णिवइ कूकुरु भयो अचेउ ।
ससार वुहि हिडियउ आहासमि भव भेउ ।।३०८।।

चौपई

पभणइ कवि पणविवि परमेस मारग सुतण थेघ उपदेस ।
णिसुणहु भव्व सुदिढु करि काणु, जसहर राजा तनो कहानु ।।३०९।।

जस मै राउ उज्जैनी करै, उपमा आपु इन्द्र की धरै ।
कुसुमावलि कुसम सर वेलि, ता समान मानै सुप केलि ।।३१०।।

यशोधर का मोर एवं चन्द्रमती का कुत्ता होना—

कूकुरु हयौ अवेयनु आपु, जसहर जानत कीनौ पापु ।
वरणौं कवनु महा ममु घोरु, जसहरु राव भयौ मरि मोरु ।।३११।।

चन्द्रमती मरि कूकरु भइ, षरमति रमति आपुनु रई ।
एक दिवस विहि सर मधुजाणि, जस वैढोवउ दीनौ आणि ।।३१२।।

रवानु पेषि मन उपज्यौ भाउ, जो लायौ तहू कीयौ पसाउ ।
णिसि दिनु वंव्यौ मदिर रहै, पारधि जात वहूत मृग गहे ।।३१३।।

फुणि जस मैं अवलोयौ मोरु, अति सुरुपु गुणु कहत न ऊरु ।
सोलै मेल्यौ मदिर माह कौतिगु वहूत करै सो ताह ।।३१४।।

नेवर धुनि सुनि वित्त कराइ, रांणिनु पेलत यिवसु विहाइ ।
एक दिवस पावस घनघोरु, मदिर सिषिर गयौ चढि मोरु ।।३१५।।

तहि भव सुमरि नुणि मन जाणि, सयलु लोग पेष्यौ पहिचाणि ।
चित्रसाल पेषी आपनी, अवलोइ कुचिज कस्यौ धनी ।।३१६।।

लो लगीव यन उपज्यौ षोहु, तिनहू परणि वड्यौ करि कोहू ।
कियौ चरण चचू कौ धाउ, तहि पापिनि गहि तोस्यौ पाउ ।।३१७।।

मारिदत्त लै भग्यौ परानु गयौ तहा वध्यौहो स्वानु ।
तहि कूकर माता कै जीव, पकरि स्वानु मुहु तोरी गीव ।।३१८।।

सारि पास षेलतु हौ राउ, धायौ तिनहि छुडावन आउ ।
छाडै नही स्वानु रिस लयौ, राइ स्वान सिरु मदिर रह्यौ ।।३१९।।

काला सर्प एवं मोर होना—

निकस्यौ साथ दुहू कौ जीव, मुयौ स्वानु दूजौ हरि गीव ।
सिहिस्यौ वैरु स्वानु करि मर्‌यौ, किशनु भुजगु छाड अवतर्‌यौ ।।३२०।।

जाहौ भयौ सोजि मरि मोरु, पाव कर्म्मभव भव तन ऊरु ।
तिणि फुणि वैरु पुराणौ सरचौ, देषत दीठि नागु सघरचौ ।।३२१।।

दोऊ परे तछ की भेट, ते भषि दोऊ दीनै पेट ।
गौहिन परचौ विधाता हसि, मरि भुजगु जल उपनौ सूसि ।।३२२।।

नृत्यांगना—

अधम कर्म सो कोनी षीनु, सो जाहौ मरि उपज्यौ मीनु ।
णयरे उजैनी जस मै तनी, नाचणि रूर तिलोतम वनी ।।३२३।।

कणक बरण ससिहर मुष जोति, पेषत मुनि रति पति तण होति ।
चचल डोल विलोल बिसाल, कोमल जनुकु पुष्प की माल ।।३२४।।

कुच कंचुकी वनी कसि अग, फाटै तर कि भ्रमत बहू भग ।
कटनि मेषला बधी तानि, जनकु सुगढी बिधाता आणि ।।३२५।।

बहुत कुसुम लै वैनी गुही, जनु चदन नागिनि आरुही ।
ताल पषावज बीना वस, नेवर धुनि सुनि भुलहि हंस ।।३२६।।

अगनित जानै कला विनाना, अवसरु करि जल आइ न्हान ।
कोला करै सषितुस्यौ मिली, षिणमौ सु सुयार सो गिली ।।३२७।।

हाहा वादु नगर मौ भयौ, सुंसुमारु नार्चनि गिलि गयौ ।
णिसुनि राउ आयौ नदि तीर, जावि जोग दुहू भयौ सरीर ।।३२८।।

धीवर वोलि घलायौ जारु, पकर्यौ सूसि मोल मुहगारु ।
लाए पकरि वाहिरी सूसि, मारी लात लठा मुह घूसि ।।३२९।।

नरणै कवनु महादुष षाणि, दुष दिषराये नरक समानि ।
सहिए सोजि सहावै दई, तिस पुरि सो मरि छेरी भई ।।३३०।।

मारिदत्त सुनि भव भयभीति, कछू दिवस जव गए वितीत ।
जीव न लहै कर्म्म पहू ठालि, मीनु गह्यो मुष गारौ घालि ।।३३१।।

आवघ लात मुठी कनु हन्यौ, सुर गुर पहू दुष जाइ न गन्यौ ।
रोहौ भणि तिनि दीनौ ठोउ, जस मैं ताको कियो विगोउ ।।३३२।।

पिता मरिवि जो उपज्यौ मीनु, सोइ नाइ पिता कै दीनु ।
ग्रैसै दीवर भासहि वेद, मूढण लहहि धर्म्म को भेदु ।।३३३।।

जीवण जाइ कर्म वस परयौ, छेरी तनै गर्भु अवतर्यौ ।
जव तिरजच वडेरी भयौ, मातहि रवत अज हण्यौ ।।३३४।।

आपु वाज सो उपन्यौ आपु मारिदत्त को मेटै पापु ।
पूरे दिवस भए जव पेट, एक दिवस प्रभु गयौ अपेट ।।३३५।।

तिहि दिन राजहि भई न घात, वाण हणी छेरी घरजात ।
पेष्यौ उदर वो फरावालु, ताको काढि कियौ प्रतिपालु ।।३३६।।

दिय बाह्मण वर भन्यौ अजौनी जातु, वडो भयो डोलै षरु षातु ।
तिहि अवसरि णिसुणहु धरि भाउ, गयौ अहेरै जस मैं राउ ।।३३७।।

हरिण रोझ सूकर हरि मसे, मारे जीव बहूत वण वसे ।
दियवर भणहि णिसुणि प्रभु साधु, जसहर राजा तनौ सराधु ।।३३८।।

आजि पिता तनौ दिनु एहु, तासु नाम बहु भोजनु देहु ।
जूठी वहतु अमिष की रासि, सोर सुवा वहू छेरे पासि ।।३३९।।

निरमलु वोकु अर्जौनी जातु, लहै सुरगु सुष आजि तात ।
तिनकै कहत अजाघर आणि, दिठु करि मदिर वाध्यौ तानि ।।३४०।।

अमिय महादेवी को गेह, वोकु क्षुधा तृस व्याप्यौ देह ।
तालू वेल पयासी घनी, तहि अजाभव सुमरी आपनी ।।३४१।।

देष्यौ कुटमु दासि अरु दासु, मारिदत्त दुपु कहिये कासु ।
सवु मदिरु पेष्यौ अवलोइ, तव पछितानै कछु न होइ ।।३४२।।

हौ तिरजचु पुकारौ कासु, कोइ देइ नपान्यौ घासु ।
रूपिनि णाहनि अनिरा घरी, अमीय महादे दीठित परी ।।३४३।।

तहि अवसरि रावर की हासि, पापिनि रानी तनी पवासि ।
जोवन तरुण कनक समगात, कहति चली आपु समहु वात ।।३४४।।

दासि एक पभनै तनु मेरि, करि कटापु मुहु नाक सकोरि ।
रावर विगधि कहा रमि रही, अवर भनै तुम बात न लही ।।३४५।।

मरमु न जानहि कछु गवारी, राजा स्याव जलयौ मारि ।
जसहर चन्द्रमती दिनु आजु, होइ बहुत भौजन कौ साजु ।।३४६।।

सरचौ मासु गधि साची एहा, अमिय महादेवी कै गेहा ।
अवर दासी वोली अरगाई, कहमि वात परि कहण न जाइ ।।३४७।।

निसि दिनु सेवा जाकी कीज, सषी तासु किमि वुरी कहीज ।
पाछै तुम्ह देही मारि, सुनंत मामि निडारै मारि ।।३५८।।

तऊ कहमि जौ कहण न जोगु, अमिय महादे वाढ्यौ रोगु ।
विनु दै भोजण मारचौ णाहु, फुनि कूवरौ रयौ करि गाहु ।।३४९।।

पाइ अमिपु डाइनि अवतरि, पापिनि कुष्ट व्याधि सरि परी ।
दुष्ट कर्म्म मो मारी चूरि, ताकी विगधि रही भरि पूरि ।।३५०।।

दासी तनौ वयनु सुनि कान, मैं घरतन पेष्यौ तहि थान ।
तव वैठी देषी सोनारि, कोढिणे विधना करी विचारि ।।३५१।।

पायौ वेगि आपनो कियौ, जैसो वयो तिसौ लुनि लयौ ।
मो सुपु भयौ नारि अवलोई, जिमि निर्धन धनु पाए होइ ।।३५२।।

मारिदत्त निमुनिहि धरि भाव, काटिउ एकु अभाकौ पाउ ।
तीनि पाउनो वपुरा रह्यौ, छूटै नही कर्म्म दिढु गह्यौ ।।३५३।।

कथा सुचोजिल निसुनहु आग, छेरी जो प्रभु मारी वाण ।
सो मरि देस महिषु अवतरयौ, अति प्रचंडु बल दीसै भन्यौ ।।३५४।।

ता परि वणिकु कठारी घालि, लादि चलायौ मधुरी चालि ।
आयौ सो उजेणि नदि तीर, चलत पथ की भई उमीर ।।३५५।।

सो तहि महिषु पैठि जल गयौ, राजा तनौ तुरग महणायो ।
तव थन वारणु कीनौ सोरु, पकरयौ महिषु घालि गल डोरु ।।३५६।।

राजा आगै विणइ सेव, हण्यौ तुरग तुमारौ देव ।
सुणि रिसाइ बोल्यौ महिराउ, याकौ करहु दुहेलौ घाउ ।।३५७।।

पाइ वाधित रखऊ आगि, तिम मारहु जिम जाइ ण भागि ।
छेरे सहुलै मारहु एहु, णाइ पिता आ जोकै देहु ।।३५८।।

फोरै काण एहु पग तीनि, देऊ पितर जिम पावहि पाणि ।
छेरौ महिषु अगिनि सहि मरो, तब चूल दोऊ अवतरे ।।३५९।।

तहि अवसरि कर लाठी धारु, जस मै राय तनौ फुटवारु ।
दोऊ लए अणुपम जाणि, तिणि राजहि दिषराए आणि ।।३६०।।

कुक्कंट जुगलु अनुपम पेषि, राच्यौ राव रग मनु भेषि ।
बहुत मोहू सुष उपनौ दीठि, निज कर तरसी तिनकी पीठि ।।३६१।।

कोटवाल पभणै सुनि राउ, जूझू पेषि मनु षरौ सिहाउ ।
भनै राउ तल वर प्रतिपालि, देह कूरु पजर लै घालि ।।३६२।।

नदन वन मेरै घर तीर, लै चलि ताव चूल वलवीर ।
गज गामिनि भामिनि मो तनी, ता सहू कील करमि वन घनी ।।३६३।।

तहि कोतिगु पेषमि वन माह, सुफल कुसुम तपवर उन छाह ।
निसुनि वचनु तलवरु सिर णाइ, कुक्कुट लैवण पहुच्यौ जाइ ।।३६४।।

साटकु

अवनि वकय व चंदनघन क किलि वल्लीहर ।
दरकाणलि लवग पूग कदली सेवि गुजर कामर ।।
जाती चंपक मालती व कुसुम भृंकरादि देरं ।
गायती भ्रुणि वीए किणरिउ लप भवणं साणर ।।३६५।।

कोटवालु धनु वनु अवलोइ, मन मोहनु सोहनु फिरि सोइ ।
तहि अवसरि शिव मदिर पास, जहि असोय तरुवरु घन सा ।।३६६।।

णगिनु दिगवर दीनैं भनु, सुहड दीठु तरुवरु तरहानु ।
कोटवार मन चितयौ तहा, इह निलज्जु वन आयौ कहा ।।३६७।।

पेषि राउ मन कोपु करेइ, याकी रिस मेरैं सिर देइ ।
मुनिवरु वातनु लेमिउ चाटि, यावन ते कडमि निरघाटि ।।३६८।।

डिभ भरयौ आयौ मुनि तीर, नमसि कालु कीनौ वरवीर ।
मुनिवरु ति जग सरोरुह सूर, धर्म्म बुद्धि दीनी गुण पूर ।।३६६।।

सुनि मुनि वचनु सुहडु भनि कहै, कहिये धम्मुं कवनु को लहौं ।
धर्म्म धनुपु सिव सूधे वाण, यहू भासिउ दीवर परवाण ।।३७०।।

मुनिवरु भनै नि मुनि कुटवार, पभणमि धर्म्म तनै विवहार ।
कहियैं मुकति अमर पद थान, सुखु अनतु को कहण समानु ।।६७१।।

कहियैं धम्मुं अहिंसा आदि, जा विनु हिंडिउ आदि अनादि ।
मुनिवर वचन सुह द्रुह सि परचौं, मुनिवर वादि धध महू परचौ ।।३७२।।

कवनु जीव को दुखु सहाइ, मूढ देह माटिहि मिलि जाइ ।
पवन हि पवनु मिलै मन जाणि, किम मुनि भासहि झुठु वपाणि ।।३७३।।

कवन काज दुपु सहहि सरीरा, छाह अगतन पहिरहि चीरा ।
वहूनिण जीव लेइ अवतारु, विनु कण कूटहि काइ पियारु ।।३७४।।

फुणि रिसि वोल्यौ भडणिसु सुणेहा, भिन्न जीव करि जाणहि देहा ।
तातैं तपु करि काटहि पापु, जान्यौ देव जीव गुनु आपु ।।३७५।।

जौ परि पवनु गयौ मिलि यौनु, दुष सुष मूढ सहौ तौ कौनु ।
भलौ वुरौ तौ कीजइ काइ, तलवरही णाव कहि किम वाइ ।।३७६।।

जो गुण मुनि वरु भासी पेषि, सो गुणु तलवरु मेटइ दोषि ।
भणै सुभटु दरसण अगु, मुनिवरु भासि करैं तिण भगु ।।३७७।।

तलवर झुठु भणैं सवु जोरि, सो ससौ मुनि घालै तौरि ।
जितौ वादु मुनि तलवर कीणु, तेतौ किमि भासमि वुधि हीनु ।।३७८।।

तलवर तनौ रह्यौ मनु माणि, पादु नुपरौ सु दिढु मुणि जाणि ।
उपमा वहुत कैमकरि भनौ, किम षटाइ मुस कौ लीपनो ।।३७९।।

तलवरु भणैं निसुनि गुरदेव, दैं आइ सुकरमि किम सेव ।
भासैं स वनु सुभट करि एह, आठ मूल गुण दिठु करि लेह ।।३८०।।

जेसा वयवय भासहि वीरा, जासु पसाइ तरहि भव तीरा।
ए प्रतिपालि धर्म्म की रासि, आगम कह्यौ जिनेसुर भासि ।।३८१।।

फुणि भडु भणे जु तुम मुणि दयौ, सो मन वचन काय मै लयौ।
परि मेरै कुल मारग एक, मुनिवर निसुनि धर्म्म की टेक ।।३८२।।

पिता अजायौ जौ पर तातु, आयौ चल्यौ वस जीय घातु।
जसमै राय तनौ कुटवारु, मार मि चोरु जारु वट पारू ।।३८३।।

भास मि देव वयनु अरिढाडि, पालमि सयलु अहिंसा छाडि।
निसुनि वयनु मुनिवरु हसि परचौ, जान्यौ अजहु मूढमति भरचौ ।।३८४।।

निसुनि मूढ जिम सिर विनु देह, लवन विनु भोजनु नारि विनु गेह।
जिम मुहु हीण नयण अरु एक, जिम वहु सून एक विनु अक ।।३८६।।

धम्मु अहिंस धर्म्म की आदि, ता बिनु मूढ धम्मु सवु वादि।
अरु तू कहहि मूढ निरभस, आइ चली हमारै वस ।।३८६।।

ताकौ उत्तरु पभनौ भाषि, चलै कोटु जौ सातौ साषि।
कोइ बैदु मिलै लै मूरी, परि सो काढु करै सव दूरी ।।३८७।।

कहि कहि मूढ आपु गुण साधी, दूजै भलौ किस हिये व्याधी।
तव चूल कीणि सुणहि वाता, जिम ए फिरे भवतर साता ।।३८८।।

सहे महा दुष नरक समाना, तिम तू सहि हे मूढ अयाना।
तव चित चेति वात भड भनी, कहि कहि सुगुरु कथा इण तनी ।।३८९।।

जय वर भनै अमोघ रस वाणि, सुनि वर वीर कथा थिरकाणि।
जसहरु एक अचेयण घात, भवगति फिरचौ भवंतर सात ।।३९०।।

श्लोक

श्रीमयेह उज्जैनिनामनगरे सुरोजसोधो नृप।
पत्नी चन्द्रमती सुतो जसधर., नारी चरित्रे मृता।
सपत्तो सिहि स्वाज जावह फणी जुग्मोपि अभचर।
छेली छागु स्ववीर्य छेल महिषो एव पुन कुक्कुट ।।३९१।।

इनके कहे भवतर वीरा, तव चूल पजर तो तीरा।
अव नर जनमु तनौ अवतारु, दोऊ लहहि काटि दुहू भारु ।।३९२।।

तलवर चेति आपु व्रतु लयौ, जनु रवि किरण पेषि तुम गयौ।
निसुनी कथा मुनीसुर भनी, कुक्कुट भव सुमरी आपनी ।।३९३।।

जान्यौ सयलु पाछिलौ कियौ, तव पछिताइ विसूरयौ हियौ ।
पायौ दुलहु मह्रा गुण वोहु, जीव भषरण कौ कियौ निरोवु ।।३६४।।

आई काल-लवधि सुभ घरी, भव भय वेलि कटी दुप भरी ।
तव चूल पजर वन माहु, कीनौ सव दुसुरुहु रीसाहू ।।३६५।।

जस वैराउ रयणि वण गयौ, राणि हि सहितु सुरतु सुपु लयौ ।
कोक भाव रमि खणि सुजाणि, पपि सवद सर मारे ताणि ।।३६६।।

तव चूल आरति तजि मरे, कुसुमावली गर्भ औतरे ।
पायो धम्मु सुगुरु उपदेस, पोतै परी सु किल सुभ लेस ।।३६७।।

गुरु भव सायर तारण हारु, भव तरुवर कप्परण कुठारु ।
कीजहु भव्व सुगुरु कौ कह्यौ, जासु पसाई उत्तिम कुल लयौ ।।३६८।।

सिसु सारग नयणि ससि वयणि, पिय सौमानि सुरत सुपु रयणि ।
कुसुमावली सहितु घरणाहु, गयौ णयरि मन भयौ उछाहु ।।३६९।।

पयडु असा पति तरण सहि दारु, दिन दिन गर्भु जु णवै आणु ।
जिनवर तनौ धर्म परभाउ, पुन्न दोहलौ पुरै राउ ।।४००।।

कुंजर चालि सुहाई मद, पडरु वयनु सरद जनु चद ।
घुलहि णयण जनु जागी राति, मोरति अगु वयण अरसाति ।।४०१।।

कररुह भारणै परी जह्मई, कोमल जघ जुयलु थहराइ ।
चदन चदु कुसुम रस वासु, सीयल सेज र वैज्यौ तासु ।।४०२।।

विरीषडि डारै अघषाइ, सुनै कहानी सखिनु वुलाइ ।
अनुकमेण पूजे दस मास, भयौ जु पलु पूरी मन आस ।।४०३।।

अभयरुचि का जन्म—

मगलु भयौ राय की गेह, सुह वेली सीची सुघ मैह ।
हीण दीण पूरै दै दानु, सुयण लोग कौ कीनौ मानु ।।४०४।।

इकु राजा मुन जनम्यौ आनु, ताको सुपु को कहण समानु ।
कीनौ अभौ कुटमु रुचि भरयौ, ताते नामु अभैरुचि धरयौ ।।४०५।।

सुतर अभैमति कंचन देहा, अति सरूप जनु ससि की रेहा ।
मारिदत्त सुनि कथा पहाणि, दुसह खरी कर्म गति जानि ।।४०६।।

वलि जौ जानि सवनुत दई, वहू हुती सो माता भई ।
नदनु हुतो जसोमति राउ, सो फिरी भयौ हमारो ताउ ।।४०७।।

सवु ससारु विडवनु जाणि, राजा चेति धर्म्म पहिचाणि ।
वालक वढे पिता कै गेह, निर्मल अग सकोमल देह ।।४०८।।

लपण वतीस कणक सम अगु, जनहु अग सहू भयौ अनगू ।
खेलत वाल कुं देष्यौ तात, मुद्रा पेषि भयौ सुपु गात ।।४०९।।

फुणि मुन्दरि देषी सुकुमाल, सय दल सदल णयण सुविसाल ।
णावकाकेलि वेलि सम अगु, चितवत जनु भयभीत कुरगु ।।४१०।।

दूहु पेषि पभणै नरणाहु, देमि राजु अरु करमि विवाकु ।
मारिदत्त सुनि ग्रह धरि भाउ, पारधि चल्यौ हमारी ताउ ।।४११।।

स्वान पचहै लीने साथ, कणक डोरु गहि अपनै हाथ ।
पेपहु चरितु दई को आनि, ढाहिणि दिसि तवरु तरहाणु ।।४१२।।

मुनि दर्शन—

विरकत भाव मुक्ति मन इठु, दीनै ध्यानु मुनी सुदीठु ।
पभणै राउ कोप आतुरयौ, नगिनु दीठु किम मेरी परचौ ।।४१३।।

निर्घनु मलिनु अमंगलु एहु, दीयवर्णिदु सदूवर देहु ।
सनमुख णगिन रह्यौ दै ध्यानु, या सम मो असगुणु नहि आनु ।।४१४।।

याकौ मुपु देषत सवु जाइ, अण चीतीउ किम देष्यौ आइ ।
अरु मै वात पत्याई आण, मैट वुरेस्यौ होइ अचाण ।।४१५।।

सव कूकर मेले मुणि तीर, ध्याए घण जिम लए समीर ।
मुनिवर नीरे मडल जाइ, समहुइ रहे सीसु धरि लाइ ।।४१६।।

गोवर्द्धन सेठ—

तव मन को पुन सक्यो सहारी, धायौ राउ काढि तरवारि ।
तहि अवसर गोवरधनु सेठि, जामन अटल पच परमेठि ।।४१७।।

वनिवरु अतरु कीनौ आणि, जस मै तनौ परम हितु जानि ।
पभनै तू जि अविन कौ राउ, मुनिवर उवरि करहि किम घाउ ।।४१८।।

पणवहि चरण वेगि तजि गाहू, मुनिवरु तेज पुज गनाहू ।
वनिवर वयणु निसुनि महिपालु, भनै मित्र किम जपहि आलू ।।४१९।।

मुनि कौ आहिण आजु उठारु, यासिर करमि पलय की मानू ।
तू मो सहू पाल गया कहही, मानहू मेरी मरमु ण लहहि ।।४२०।।

निद्यो मुणि दिय वरह पुराण, इनके बचन न सुनियहि काण।
मेरे कूकुर राषे कीलि, अवय करज्यौ कणकु सो लील ।।४२१।।

असो वचनु राइ जव भन्यौ, हा हा पभणि वनिक सिरु धुन्यौ।
नरवै मूढ राज मद भरे, भूली वात कहहि वावरे ।।४२२।।

मुनि के गुणो का वर्णन—

मुनिवर सम को अवरु पहाण, याकौ गुणनि सुणिहि दै कानि।
मलिन देह अतर मल हीनु, तिय ण सगु सिव भामिनि लीनु ।।४२३।।

निर्धनुहै परि धनहि न अतु, तीन रयण गही रह्यौ महतु।
रोस हीनु परिहन्यौ अनगु, जो रवि परै तम रहै न अगु ।।४२४।।

षीण सरीर अतुल वल जाणि, को तप तेज कहै परवाणि।
वयनु पेषि सुष उपजै गात, अस गुण करै नरक जनु जात ।।४२५।।

यह कलिंग नरवै मुपहानु, या समान राउ न होतउ आनु।
तसकर कारण छाडिउ राजु, तजि आरमु कियौ तप काजु ।।४२६।।

अरु जे ते सावज वणवास, लगते रहहि सदा मुनि पास।
ता ऊपर किम घालहि घाउ, किम वे काज वढावहि पाउ ।।४२७।।

सुर नर खयर फनीसुर जिते, इणकी सेव करहि सव तितौ।
माया मोहु ण व्यापै सोकु, नान नयण सूझै तिर लोकु ।।४२८।।

जिन विनु काज वढावहि पापु, पणवहि चरण छाडि मन दापु।
वनिवर तनी राव सुनि वात, चेत्यौ परौ सकुचि करि गात ।।४२९।।

राजा द्वारा मुनि भक्ति—

मन विचार करि उपसम भाउ, मुनिवर चरण परचौ महिराउ।
रागु रोसु मरु जिन वसि कियौ, धर्म्म वृद्धि भनि आसिषु दियौ ।।४३०।।

दूजौ धर्म्सु पापु षै जाउ, यह मेरौ आसिक कौ भाउ।
मुनिवर वचनु राउ सुनि काण, तव नरवै लाग्यौ पछितान ।।४३१।।

इण पिनु एकु न कीनी रोस, करु उचाइ मो दई असीस।
या सम महियलि साधु ण आनु, इणि परु जान्यौ आपु समानु ।।४३२।।

मेरौ जेम पराछितु जाइ, सीसु काटि लै पर समि पाइ।
मुनिवरु भन्यौ निसुनि महिपाल, किम मन चिंतै मरनु अकाल ।।४३३।।

काटहि वीर केम सिरु आपु, आघु घात कटि जाइ ण पापु ।
जिम परघातु आघु तिम जाणि, वचनु अडोलु हमारौ मानि ।।४३४।।

जव यहु वचनु मुनीश्वर कह्यौ, नरवे चेति चमकि चित रह्यौ ।
सुनि कल्याण मित्र गुण षाणि, मन महू वात लई किम जाणि ।।४३५।।

वणिवरु भरौ राय णिसुणेह, कितिक वात जो जानी एह ।
भई होइगी वरतति अहै, मुनिवरु तिहू लोक की कहै ।।४३६।।

माता पिता पितर तणे तनै, जो बूझै सो मुनि वरु भनै ।
राजा तनौ गर्व्व गलि गयौ, बूझै वयनु आतुरौ भयौ ।।४३७।।

राजा द्वारा पूर्व भव जानने की इच्छा—

राउ जसोधु पिता ससिमति, कहि मुनिवर तिनकी भवगती ।
जसहरु अमिय महादे राणि, भए केम तिम समरै भानि ।।४३८।।

मुनि द्वारा कथन—

सुनि मुनि वयण नारि मन चूरु, भासै सुयण सरोरुह सूरु ।
व्यौरौ कह्यौ भई जिम वात, जैसै फिरे भवतर सात ।।४३९।।

चन्द्रमती अरु तेरौ ताउ, कियौ अचेयण कुक्कुट घाउ ।
हीढै तासु पाप के लए, अभैकुमारु अभैमति भए ।।४४०।।

सिरस कुसुम सम कोमल देह, ते दोऊ षैलहि तुव गेह ।
भण्यौ अमिषु सेयौ परदारु, अरु विसु दै मारयौ भरुतारु ।।४४१।।

कोढिनि भई महा दुषमरी, पचम नरक जाइ अवतरी ।
सो तू अमिय महादे जाणि, तेरी माय पाप की षाणि ।।४४२।।

तो सौ भवण भवति गति कही, जिम जिनि करी तेम तिणि लही ।
यह ससारु जीव करि भरयौ, कर्म कुलाल कमठ वस परयौ ।।४४३।।

भानै गढै गढै फुनि भानि, नर वै जलद पटल जगु जाणि ।
पुरिस सीह सुनि जस मै राइ, विनु जिन धर्महि सुपु ण लहाइ ।।४४४।।

भव व्यौरौ निसुन्यौ वरवीर, हा हा भनि थर हस्यौ सरीर ।
चेतु लागि मुनिवर पग परयौ, मन विलषाइ हियौ गहु वरयौ ।।४४५।।

असू टूटहि कपइ देहु, जनु भर भादौ वरसै मेहु ।
जौ जहू पापुण घालै पाइ, तव लगि तपु दै तिहु मणराइ ।।४४६।।

तव पग परहि पुरदर देव, अरु चक्के स पयाहि सेव ।
कहि कल्यान मित्र गुण गेह, सूरि सुदत्त देगि तपु देहू ।।४४७।।

तहि अवसरि प्रभु तनौ पवासु, कूस्यौ जाइ जह रणवासु ।
किम सिगारु करहु वरणारि, यौवन गयौ भयौ तप धारि ।।४४८।।

किम कसि कचुकि पहिरहु अग, वहुरिण नाहु मिलै रति रंग ।
किम तण पहिरहु दक्षिण चीर, किम मडहु आभरण सरीर ।।४४९।।

कु कुम रेह करहु किम वानि, केम कसनि कटि वधहु तानि ।
अरु किम चलहु समोरति देह, फिरिण नाहु आवइ सगेह ।।४५०।।

अजहू नयण केम सुहिणाल, वास सुगध कुसुम की माल ।
अरु त्रिम नेवर चलहु वजाइ, करि कटापु किम मिल वहू भाइ ।।४५१।।

किम रचि वैनी वधुहु फूल, सेज रचहू किम कोमल तूल ।
किम कर वीन वजावहु नारि, अरु किम विहसहु वयनु पसारि ।।४५२।।

अरु किम चदन चरचऊ अगु, कंत कियौ सजम सिरि संगु ।
स कहुत जाइ वरो रहु णाऊ, सोतलु करहु विरह तन दाऊ ।।४५३।।

जौ कछु ण्याऊ करै करतारु, तौ अव कीव मिलै भरतारु ।
चरण रतनी वयनु सुनि काण, सब रानी लागी अकुलाण ।।४५४।।

अतेवर वहू कीनौ सोरु, जनु निसिव तकरणु पेष्यौ चोरु ।
मघुकर मिले पवरण सुष वास, विरजति तिनहि चली पिय पास ।।४५५।।

जिहि वन स्वरण पास, सुपियरु, तपु मागत देष्यौ भरतार ।
वहुत भाति समुझायौ नाहु, परि तप ऊपर तजै रण गाहु ।।४५६।।

जौ अतिअमहै वहै वयारि, सकै होनु किम परवतु टारि ।
तोरचौ मोहु कर्म को हेतु, हम फुणि सुण्यौ पिता तपु लेतु ।।४५७।।

रथ चढि वीरु वहिणि वन गए, किंकर वहुत साथ करि लए ।
दरसनु पेपि मुनिसर तनौ, तव हम भौ मुमरचौ आपणौ ।।४५८।।

कुसुमावली हमारी माइ, ताकी छोरि परे मुरझाइ ।
सीचि पवण जल चेयरण लही, अपनै मुहु अरनी भव कही ।।४५९।।

वस्तूबन्ध

हुउ जि जमहरु चद मै अम्हे पुरणु गेह रहे ।
वितहि मरिविदोविमिहि माण पत्तइ ।

तछाउवए विलुहु जाहौ फणि अइ किन्ह गत्तइ ।
जलयर छेली छागु अजु महि सुसटु भुर गत्त ।
तव चूल तनु छडि तहि, हम ए रहोइ त्रिपत्त ।।४६०।।

दो विहि कुक्कुटु हयौ अचेतु, हिंडिउ सात भवतर लेतु ।
पुत्रु माइ दुष देषत फिरै, ते हम वीरु वहिणि अवतरे ।।४६१।।

अव तपु दोऊ करहि अलेउ, मनचरि एकु जिनेस्वर देउ ।
वणिवरु भनै सकोमल भास, णिसुनि कमार वयनु मो पास ।।४६२।।

लेइ महातप तेरौ ताउ, तू कुमार कीनौ महिराउ ।
वालक वयनु पिता कौ पालि, तौ निवहे कुल केरी चालि ।।४६३।।

पुत्र ण करहि पिता की आण, तौ ण काजु सीझै परवाण ।
लक्षनु रामु भयौ परचड, पिता वचनु सेयौ बन षंडु ।।४६४।।

ताते राजु करहु दिन चारि, फुनि तपु लीजहू काजु विचारि ।
राजु सकति करिमो कहू दयौ, जस दे वनिक दुहु तपु लयौ ।।४६५।।

कुसुमावली अरजिका भई, वहुत नारि सहू दिष्या लई ।
मै दिन चारि राजु घर करयौ फुनि दै भाइ हि सो परिहरयौ ।।४६६।।

गए सुदत्त सूरि मुनि पास, जो तप तेज सरु वनवास ।
णमसिकारु करि मागी दीषि, तव सुदत्त गुरु दीणी सीष ।।४६७।।

तुम दोऊ वालक सुकुमाल, कोमल जिसे पऊ के नाल ।
पचम महाव्रत दूसह षरे, ते तुम पास जाहि किम घरे ।।४६८।।

जोग त्रिकाल देहि किम वीर, केम परीसह सहहि सरीर ।
पाप मास किम सहहिउ पास, लहि कुमार किम सहहि पियास ।।४६९।

जब लगि दोऊ समरथ होऊ, अनुव्रत धरहु कुमर दलि कोहु ।
स गुर बचन सुनि कुमरु कुमारि, लीनौ तपु आभरण उतारि ।।४७०।।

कोऊ लाहू जीत्यौ मौ मानु, सुष दुष तिणहु मु एक समान ।
थोपहि आगमु वारह अग, निसि दिनु रहहि गुरु कै सग ।।४७१।।

जिनवर वदत तीरथ थान, संजम राषत पच पराण ।
करत विहार कम्मु सुनि राइ, नयरि तुमारी पहुचे आइ ।।४७२।।

गुरु उपदेस चले निरगथ, भोजन निमित नगर कै पंथ ।
तुव किकर लैते वरी आण, गहिलाए देवी कै थाण ।।४७३।।

हम तू बैठो देष्यो राइ, जनु ससि अंबरु उदौ कराइ ।
तुम अतिगहु करि बूझी बात, मै सब कही भयौ सुष गात ।।४७४।।

पेषी सुनि तई गुर पासि, मारिदत्त तिम पयडी भासि ।
को काकौ सबु जाणहि धधु, मानसु मूढ ण चेतई अबु ।।४७५।।

कबहु जियहि ण लाग्यौ चेतु, चौ गति फिरयौ भवतर लेतु ।
मारिदत्त राजा सुपहाणु, निसुन्यौ जसहर तनौ पुराणु ।।४७६।।

मारिदत्त का पापों से भयभीत होना—

चिमक्यौ राव पाप डर लयौ, विसु सौं उतरि स वनु कौ गयौ ।
पाइ परयौ जोगी अरु राइ, देवी बहुत विमन पछिताइ ।।४७७।।

मारिदत्त न खेवर वीरु, लयौं उसास नयण भरि नीर ।
निदि अपनीपो भासै बात, राषि राषि जय वर जगतात ।।४७८।।

नरक परत राषहि परचंड, भवगति सायर तरण तरंड ।
दै तपु मोहि रिषी सुर बाल, बार बार विनयौ महिपाल ।।४७९।।

दोहरा

तहि मुनि सूरि सुदत्त गुरु, जान्यौ अवधि प्रमाण ।
नर वै अभय कुमार लहु, सबोहिउ तहि थान ।।४८०।।

सुदत्त मुनि का देवी के मन्दिर में आगमन—

निसुनहु कथा अपूरब आण, मुनि आयौ देवी कौ थान ।
मुद्रा पेषि अचम्भौ राउ, आसनु छाडि करयौ पणवाउ ।।४८१।।

पाइनु अभैरुचि परयौ, णमसि कालु जोगी सुर करयौ ।
देवी तनौ गवु गलि गयौ, अपनौ थानु सुहाउटयौ ।।४८२।।

मुंड रुंड भव कीनौ दूरि, कीनौ गेहु कनकौ पूरि ।
अगनु चदन राष्यौ लीपि, चोया कुंकुह पूरी सींपि ।।४८३।।

बहुत कुसुम तरु वदन वार, भवर वास गुंजरहि अपार ।
फेरि रूपु तन अति सुन्दरि, रोहिणि जनकु सुर्य ते परि ।।४८४।।

जीव जुगल भव दे नै मेलि, मगलु घोसिउ माडे केलि ।
मारिदत्त पभणैं गुण रासि, मो सहू देव भवंत भासि ।।४८५।।

पभनहू स्वामि भव आपनी, गोवरधन अरु योगी तनी ।
राउ जसोधु चन्द्रमति राणि, देवी की भव कहहू वपाणि ।।४८६।।

पूर्व भवों के बारे मे प्रश्न—

कुसुमावलि अरु जस मैं राउ, मेरी अरु जिम जननी ताउ ।
अरु जिम महिष तुरग मुहयौ, अमिय महादे कुवज कुरयौ ।।४८७।।

सरमघको काकौ अवतरयो, भासि सुदत्त चोज रस भरयो ।
मारिदत्त सुनि भासै सूरि, ससौ हरमि चित्त कौ दूरि ।।४८८।।

सुदत्त मुनि द्वारा वर्णन—

गंधर्व देसु अरु पुरु गधर्व, पेषत हरै अमर को गर्व ।
तहि वैधर्व राउ परचडु, एक छत्र बूझै महिषड ।।४८९।।

विंझसिरी भामिनि गुण रेह, रामचद्र घरि सीता जेह ।
गधर्व सेनु पुत्रु तिन जन्यौ, अति सुरुपु जनु सुरपति वन्यो ।।४९०।।

गधर्वा पुत्री मृग नयनि अति मुख जोति चदु जनु रयणि ।
मत्री रामु नामु प्रभु तनौ, राज मत्रु जो जानै घनौ ।।४९१।।

अवला तासु कणक सम देह, वालक हरिण नयण ससि लेह ।
नदन वेवि पयड सरीर, नामु जितारि भोउ वर वीर ।।४९२।।

गधर्वा सुव राजा तनी, सो जितारि व्याही तन वनी ।
सो देवर रमि चूरी पाप, दुसह जाणि मयन की ताप ।।४९३।।

गधर्व राजा पारधि गयौ, तहि वैराग भाव मन भयौ ।
सुव वैधर्वहि दीनो राजु, आपुनु कियो परम ताप काजु ।।४९४।।

अतकाल करि सुव पर मोह, सो मरिण रवै भयौ जसोहू ।
तहि जित सत्र पेषि रतनारि, करि वैरागु महा पुपारि ।।४९५।।

जिनवर धर्म्म पालि गुन षाणि, राउ जसोधर उपन्यौ आनि ।
गधर्व वहिणि तनी सुनि वात, तपु करि सही परीषह गात ।।४९६।।

करि सन्नासु काटि भव पापु, मारिदत्त सो जाणहि आपु ।
गधर्वा जिनि देवरु रयौ, समझी अन्त काल तपु लयौ ।।४९७।।

सो मारि अमिय महादे भई, रमि कूवरौ नरक सो गई ।
भीवरमी भायर की तिरी, कुल कलकु कीनौ मति फिरी ।।४९८।।

मीलु भु जि अपजसु सग्रह्यौ, पापी जन्मु कुविज कौ लह्यौ ।
मंत्री रामु रवन ससि लेह, तपु करि संजम सो सी देह ।।४९९।।

पयरु पयरि दोऊ अवतरे, वर्णी कहा महासुष भरे ।
जिनवरु पुजि धम्मु पहिचाणि, सो जमै कुसुमावलि जाणि ।।५००।।

जो ही सवति चंद्रमति तनी, मरिवि तुरंगु जाय उपनी ।
सो सखिरै महिषनो हयौ, सो मिथला पुरि वाछौ भयौ ।।५०१।।

अत काल आषर सुनि काण, तिनि आरते तजि तिजे पराण ।
रुपि निखनि तुमारी राइ, ताकै उदर अवतरचौ आइ ।।५०२।।

राज धुराधर धरिहे सोइ, पुण्ण पुरिषु तेरै घर होइ ।
तेरौ पिता कर्म्म कौ लयौ, चडमारि देवी सो भयौ ।।५०३।।

सील निहाण तुमारी माइ, सो मरि जोगी उपन्यौ आइ ।
जसवंधुरु अवनी कौ राउ, राइ जसोध तनौ जो ताउ ।।५०४।।

सो सुहझाणा चयौ तजि मोहू, जिनवर धर्म्म तनौ लहि बोहू ।
देसु कलिग राउ भगदतु, कुद लता भामिनि कौ कतु ।।५०५।।

धण कण कचण दीसै भन्यौ, जसवधुरु तनरुहु अवतन्यौ ।
नामु सुदत्तु राउ गुण गेहू, सो मुनिवर हौ आयौ एहू ।।५०६।।

राय जसोध तनौ सुपहाणु, मत्री राज गेह परधाणु ।
आयु अत सुमिरि परमेठि, सा जानै गोवरधन सेठि ।।५०७।।

मारिदत्त जौ बूझौ मोहि, सव समुझई पयासो तोहि ।
अवधि णयण जान्यौ परमानु, मै भास्यौ भव भवण कहाणु ।।५०८।।

तुव पुर पच वार फिरि गयौ, तौ सौ राइण दरसनु भयौ ।
काल लवधि जव आवै राइ, तव ही सुभ गति जीउ लहाइ ।।५०९।।

मारिदत्त द्वारा दीक्षा—

मारिदत्त तपु लयो विचारि, पच मूठि सिर केस उपारि ।
जोगी सु गुर तनै पग परचौ, सव पाषड भाउ परिहरचौ ।।५१०।।
भनै दियवर मो तपु देहु, दया गेह मत विरमु करेहू ।
चवे सुगुरु मुनि भैरौनद, कौलागम रयणायर चंद ।।५११।।

सुदत्त का भैरवानन्द को उपदेश—

दिन वाईस तुमारी आयु, वेगि धर्म्म कौ करहि उपाउ ।
तव जोगी मन लाग्यौ चेतु, चित यौ आपु जीव कौ हैतु ।।५१२।।
परिहरि पानु पानु नवु भोगु, लै सन्यासु दियौ दिढ जोगु ।
वारह अनुपेया मन भाइ, मुर्य दुतीय सुर उपन्यौ जाइ ।।५१३।।
ठौडी भई देवि कर जोरि, सा मि नरक मो जात वहोरि ।
मौ वीराधि वीर तपु देह, भव सायर वूढत गहि लेह ।।५१४।।

कुमुमवान मानिनि मन चूरु, भासै सुयण सरोरुह सूरु ।
तो कहू तपुण जोगु सुर णारि, समिकत रयणु लेह दिढु धारि ॥५१५॥

स्वय देवी द्वारा अहिंसा धर्म पालन करना—

जीव घात कौ छाडहि भाव, जे पूजहि तिन वरजि रहाउ ।
तजहि आपनी पहिली चालि, जिनवर तनौ धर्म्मु प्रतिपालि ॥५१६॥
जीव घातु तव देवी छाडि, आपुनु फिरी नगर महू टाडि ।
जो मेरै मडफ वलि देइ, ताके घर किनु देवी लेइ ॥५१७॥
नि सुनहू सवै नगर नर णारि, मो पूजत घर देमि उजारि ।
जो कहि है देवी वलि लेह, कुसरणि करिहौ ताकै गेह ॥५१८॥
मेरै नाम वजावै तूरु, ताकै पेट उठै दिन सूरु ।
समिकत रयनु देवि ले रही, परिहरि कुगति सुगति सुरि गई ॥५१९॥
लयौ महाव्रतु अभय कुमार, भए वहुत नर समिकत धार ।
पढम सुग्र भगिनी अरु वीरु, भए अमर सो सुद्ध सरीर ॥५२०॥
मारिदत्त जस मै अरु सेठि, ध्याइ ध्याइनु मन धरि परमेठि ।
करि तपु दुद्धरु उपनौ देव, सुकिल लेस सुर हर गय लेव ॥५२१॥
सूरि सुदत्त नाम सुपहाणु, चढि समेदि सिहिरि दै ध्यानु ।
निर्द्दलि कर्म्म छीनि भवगति, सप्तम सुग्र भयो सुर पति ॥५२२॥
अनुकमेण पावहि सिव ठानु, सुष समूह को कहण समानु ।
जसहर चरितु वणि संवु कह्यौ, दया धर्म्मु फुणि सुन नर मह्यौ ॥५२३॥
मगलु करौ जिनेसरु वीरु, निसुनत निर्म्मल होइ सरीरु ।
निसुनहु नामु गामु सुभ थानु, जिहि निवसत मै ठयौ पुराणु ॥५२४॥

ग्रंथ प्रशस्ति—

गग जमुन विच अतर वेलि, सुष समूह सुर मानहि केलि ।
नयरि कैलई जनु सुर पुरी, निवसै घनी छतीसौ कुरी ॥५२५॥
अभयचदु तह राउ निसकु, जनुकु सुषोडस कला मयकु ।
परजा दुषी न दीसै कोइ, घर घर वीध वधाऊ होइ ॥५२६॥
श्रावग वहूत वसहि जहि गाम, जनु आसि कौ दीनौ सियराम ।
पोमावे पुर वर सुष सील, सुर समान घर मानहि कील ॥५२७॥
सा कन्हर सुतु भारग साहू, जिनि धनुष रचि लियो जसलाहू ।
जस रानौ पटनु सुभ ठौरु, गौछ महापुरु दूजौ औरु ॥५२८॥
अनगरु अंतपुरु अरु सोहारु, च्यारचौ गाव वसावन हारु ।
जासु नामु पडुवा मुरि तान, राज काज जान्यौ सुरिताण ॥५२९॥

तासु नारि देवलदे नाम, जिम ससि हर रोहिनि रति काम ।
सोलु महा तहि लीनो पोषि, नदन तीनि अवतरे कोषि ।।५३०।।
मेघु मेघुपर सूजस रासि, जनु कुमु सूरु ससि मुकु प्रकासि ।
जेठौ थेघु साहू सुपहाणु, जासु नाम मैं ठयौ पुराणु ।।५३१।।
पुन्न हेतु जानै उपगारु, जिनवर जगिन करावण हारु ।
वहुत गोठि लै चाल्यौ साथ, करी जात गिरी पारस णाथ ।।५३२।।
परचि वहुतु धनु राव न थान, घर आयौ दियौ भोयण दाण ।
ताको पुत्र रत्नु अवतर्‍यौ, रयनायरु गुण दीसैं भर्‍यौ ।।५३३।।
भाव भगति करि दीजै दानु कीजै भवन गुणी को मानु ।
जौ कुटवु वरणौ विस्तरी, वाढै कथा अवर दूसरी ।।५३४।।
राम सुतनु कवि गारवदासु, सरसुति भई प्रसन्नी जासु ।
वसत फफोतू पुर सुभ ठौर, श्रावग वहुत गुणी जहि और ।।५३५।।

रचना काल—

वसुविह पूजिनि नेस्वर एहानु, लै अभारु दिन सुनहि पुरानु ।
सवतु पद्रहसै इकअसी, भादौ सुकिल श्रवण द्वादसी ।।५३६।।
सुर गुरुवारु करणु तिथि भली, पूरी कथा भई निरमली ।
जसहर कथा कही सव भासि, सिप लै भाव परम गुरपासि ।।५३७।।
वादिराज भासी गुर सूरि, तासु छाह पभनी भरि पूरि ।
सयलु संघु नदौ सुप पूरु, जव लगि गंग जलवि ससि सुरु ।।५३८।।
मेघ माल वरसै असरार, वोध वधाए मगलवार ।
निसुनिवि व सम तला वहू पोरि, हीनु अधिक सो लीजहु जोरि ।।५३९।।
पढै गुणै लिपि देई लिषाइ, अरु सूरिप सो कही सिषाइ ।
ता गुण वणि वहुतु कवि कहै, पुत्र जनमु सुष सपति लहै ।।५४०।।

इति जसोधर चौपई समाप्त ।। सवत् १६३० मागसर सुदि ११ वार दीतवार ।।

□□□

५

कविवर ठक्कुरसी

भक्ति कालीन कवियो मे कविवर ठक्कुरसी का नाम उल्लेखनीय है। उनकी पञ्चेन्द्रिय वेलि एव कृपरण छन्द वहु चर्चित कृतियां रही हैं। इनका परिचय प्राय. सभी विद्वानो ने अपने ग्रन्थो मे देने का प्रयास किया है। लेकिन फिर भी जो स्थान इन्हे हिन्दी साहित्य के इतिहास मे मिलना चाहिए था वह अभी तक नही मिल सका है। इसके कई कारण हो सकते हैं। सर्वप्रथम प० नाथूराम जी प्रेमी ने अपने "जैन हिन्दी साहित्य के इतिहास" मे इनकी एक कृति कृपरण चरित्र का परिचय दिया था। इसके पश्चात् डा० कामता प्रसाद जैन ने "हिन्दी जैन साहित्य का सक्षिप्त इतिहास" नामक पुस्तक मे कवि की कृपरण चरित्र के अतिरिक्त पञ्चेन्द्रिय वेलि का भी परिचय उपलब्ध कराया था।

सन् १९४७ से ही राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूचियो का कार्य प्रारम्भ होने से गुटको से अन्य कवियो के साथ-साथ ठक्कुरसी की रचनाओ की भी उपलब्धि होने लगी और प्रथम भाग से लेकर पञ्चम भाग तक इनकी कृतियो का नामोल्लेख होता रहा इससे विद्वानो को कवि की रचनाओ का नामोल्लेख ही नही किन्तु परिचय भी प्राप्त होता रहा। प० परमानन्द जी शास्त्री देहली का पहिले अनेकान्त मे और फिर "तीर्थंकर महावीर स्मृति ग्रन्थ" में कवि पर एक विस्तृत लेख प्रकाशित हुआ है जिसमे उसकी ७ रचनाओ का विस्तृत परिचय भी दिया गया है। इससे कवि की ओर विद्वानो का ध्यान विशेष रूप से जाने लगा। इसी तरह और भी जैन विद्वान कवि के सम्बन्ध मे लिखते रहे हैं। इतिहास मे स्थान देने वालो मे डा० प्रेमसागर जैन का नाम उल्लेखनीय है जिन्होने 'हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि' मे कवि के सम्बन्ध मे सामान्य रूप से मूल्याकन प्रस्तुत किया है।

जैन विद्वानो के अतिरिक्त जैनेतर विद्वानो मे डा० शिवप्रसाद सिंह का नाम उल्लेखनीय है जिन्होने "सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य" मे कवि की तीन

रचनाओ का परिचय देते हुए कवि की इन कृतियो को राजस्थानी एवं व्रज भाषा से प्रभावित कृतिया वतलायी ।

लेकिन इतना होने पर भी कवि को जो स्थान एव सम्मान मिलना चाहिए था वह उमे प्राप्त नही हो सका । इसका प्रमुख कारण भी वही है जो अन्य कवियो के सम्वन्ध मे कहा जाता है ।

ठक्कुरसी राजस्थान के ढूढाहड क्षेत्र के कवि थे । इन्होने स्वय ने अपनी कृति "मेघमाला कहा" मे ढूंढाहड शब्द का उल्लेख किया है और चम्पावती (चाटसू) को उस प्रदेश का नगर लिखा है ।[1] कवि चम्पावती के रहने वाले थे । इनके पिता का नाम वेल्ह था । ये स्वय भी कवि थे जिसका उल्लेख कवि ने अपनी कितनी ही रचनाओ मे किया है । घेल्ह कवि की अभी तक की रचनाएँ "वुद्धि प्रकाश एव विशाल कीर्ति गीत" उपलव्व हो सकी हैं । दोनो ही रचनाएँ लघु रचनाएँ हैं । ठक्कुरसी को कवित्व वश परम्परा से प्राप्त था । ये जाति से खण्डेलवाल दि० जैन थे । इनका गोत्र पहाडिया था । स्वय कवि ने अपने आपको पहाडिया वश शिरोमणि लिखा है ।[2] कवि की माता भी वड़ी धर्मात्मा थी । इसलिए पूरे घर के सस्कार धार्मिक विचारधारा वाले थे ।

ठक्कुरसी सभवत व्यापार करते थे तथा राज्य सेवा मे वे नही थे । यद्यपि कवि ने चम्पावती के शासक 'रामचन्द्र' के नाम का उल्लेख किया हैं लेकिन उससे ऐसा प्रतीत नही होता कि वे राज्य मे किसी ऊँचे पद पर काम करते हो । कवि का जन्म कव हुआ, उसकी वाल्यावस्था एव युवावस्था कैसे वीती, इसका कोई उल्लेख नही मिलता हैं और न कवि ने स्वयं ने ही अपने जीवन के वारे मे कुछ लिखा है । कवि का वैवाहिक जीवन कैसे रहा तथा कितनी सन्तानो का उन्हे सुख मिला ये सव प्रश्न भी अभी तक अनुत्तर ही हैं ।

लेकिन इतना अवश्य है कि इनके जमाने मे चम्पावती पूर्णत धन्य-धान्य पूर्ण थी । महाराजा रामचन्द्र का शासन था । तक्षकगढ (टोडारायसिंह) के शासक

---

१ दिण्णेक ढूढाहड देस मज्झि, णयरी चंपावइ अरिझ सत्थि ।
तहि अत्थि पास जिणवर णिकेउ, जो भव कण्णिहि तारण हसेउ ।।
मेघमाला कहा

२ पपड पहाडिह वंस सिरोमणि, घेल्हा गुरु तसु तियवर घरमिणि ।
ताह तणइ कवि ठाकुरि सुन्दरि, यह कह किय सभव जिण मन्दरि ।।

ही चम्पावती के शासक थे। महाराज रामचन्द्र के शासन काल मे लिखी हुई पचासो पाण्डुलिपिया राजस्थान के विभिन्न जैन ग्रन्थागारों मे सग्रहीत है। ठक्कुरसी सम्पन्न थे। पडित माल्हा अजमेरा कवि के समय मे विशेष प्रसिद्धि प्राप्त श्रेष्ठी थे। कवि मे और माल्हा अथवा मल्लिदास मे विशेष मैत्री थी और कितनी ही रचनाओ को लिखने मे मल्लिदास का विशेष आग्रह रहा था। लेकिन इसी चम्पावती मे कुछ ऐसे श्रावग भी थे जो अत्यधिक कृपण थे और किञ्चित् भी पैसा धर्म कार्य मे खर्च नही करते थे। कवि को इसीलिए 'कृपण छन्द' लिखना पडा जिसमे एक कृपण की एवं उसके कृपण मित्र की कहानी दी हुई है।

तत्कालीन समाज—कवि के समय के समाज को हम सम्पत्ति-शाली एव ऐश्वर्य वाला समाज कह सकते है। कविवर ठक्कुरसी ने 'पार्श्वनाथ शकुन सत्तावीसो' मे ढूंढाहड प्रदेश एव विशेषत चम्पावती नगरी का जो वर्णन लिखा है उसके अनुसार चम्पावती व्यापार का केन्द्र थी तथा उसमे कोई भी व्यक्ति दुखी नही दिखाई देता था। जैन समाज तो सम्पन्न समाज था। वहा समय-समय पर महोत्सव होते रहते थे। उस नगर मे रहने वाले सभी भाग्यशाली होते थे ऐसी लोगो की धारणा थी।[1] कृपण छन्द मे भी एक स्थान पर वर्णन आया है कि जब श्रावग गण यात्रा से लौटते थे तो वापिस आने की खुशी मे बडे लम्बे-लम्बे भोज होते थे। लोगो का खान-पान रहन-सहन अच्छा था। पान खाने की लोगो मे रुचि थी। लेकिन सम्पन्न समाज होने पर भी लोग व्यसनो मे फसे रहते थे। यही कारण है कि कवि को सप्त व्यसन पर दो कृतिया लिखनी पडी थी।

साधु गण—चम्पावती उस समय भट्टारको का केन्द्र था और वहीं उनकी गादी था। प्रभाचन्द्र उस समय वहा भट्टारक थे। कवि ने उन्हे मुनि लिखा है और जब वे प्रवचन करते थे तो ऐसा लगता था कि मानो स्वयं गौतम गणधर ही प्रवचन कर रहे हो।[2] इन्ही के शिष्य थे मुनि धर्मचन्द्र जो बाद मे मडलाचार्य कहलाने लगे थे। कवि ठक्कुरसी ने धर्मचन्द मुनि के उपदेश से 'व्यसन प्रबन्ध' की लघु कृति की रचना की थी।[3]

१ जहा न को जणु वसइ दुखिउ. जैन महोछा महमघणा।
जहि दिनि दिनि दीसन्ति, तहा वसहि जे धण्णु णर इउ जण विवस कहति।

२ तसु मज्झि पहाससि वर मुणीसु, सह सठिउ ण गोयमु मुणीसु।
मेघमाला कहा

३ मुणि धर्मचन्द उपदेसु लह्यौ, कवि ठाकुरि विस्न प्रबध कह्यौ।
व्यसन प्रबन्ध

खण्डेलवाल समाज—कवि के समय मे चम्पावती में खण्डेलवाल दि० जैन समाज का अच्छा थोक था। अजमेरा, वाकलीवाल, पहाडिया, साह आदि गोत्रो के श्रावक परिवार प्रमुख रूप मे थे। सभी श्रावक गण सम्पन्न थे। भगवान पार्श्वनाथ की मूर्त्ति विशेष श्रद्धा एवं भक्ति का केन्द्र थी। मूर्ति अतिशय युक्त थी। वादशाह इब्राहीम लोदी के आक्रमण का भी उसी की भक्ति एव स्तवन ने रक्षा की थी। स्वय कवि भी भगवान पार्श्वनाथ के पूरे भक्त थे इसलिए जब कभी अवसर मिला कवि पार्श्वनाथ के गीत गाने लगते थे।

काव्य रचना

कवि की अभी तक कोई वड़ी कृति देखने मे नहीं आयी। मेघमाल कहा मे अवश्य २१५ कडवक छन्द तथा २११ अन्य छन्द हैं। कवि की ७ रचनाओ का परिचय पं० परमानन्द जी ने दिया था लेकिन शास्त्र भण्डारो की और खोज करने पर अब तक कवि की १५ रचनाएँ प्राप्त हो चुकी हैं। जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—

१	पार्श्वनाथ शकुन सत्तवीसी	रचना सवत् १५७८
२.	कृपण छन्द	,, ,, १७८०
३.	मेघमाला कहा	,, ,,
४	पञ्चेन्द्रिय वेलि	,, ,, १५८५
५.	सीमंधर स्तवन	
६	नेमिराजमति वेलि	
७	चिन्तामणि जयमाल	
८	जैन चउवीसी	
९	शील गीत	
१०	पार्श्वनाथ स्तवन	
११	सप्त व्यसन षट पद	
१२	व्यसन प्रबन्ध	
१३	पार्श्वनाथ स्तवन	
१४	ऋषभनाथ गीत	
१५	कवित्त	

इन १५ रचनाओं मे प्रथम ४ रचनाओं में रचना संवत् का उल्लेख किया गया है शेष सब रचना काल से शून्य हैं। उक्त रचनाओं के आधार पर कवि का

साहित्यिक जीवन सवत् १५७५ से प्रारम्भ होकर सवत् १५९० तक चलता है। इन १५ वर्षो मे कवि साहित्य निर्माण मे लगे रहे और अपने पाठको को नयी-नयी कृतियो से रसास्वादन कराते रहे। कवि के पूरे जीवन के सम्बन्ध मे निश्चित तो कुछ नही कहा जा सकता है लेकिन ७० वर्ष की आयु भी यदि मान ली जावे तो कवि का समय सवत् १५२० से १५९० तक का माना जा सकता है।

पञ्चेन्द्रिय वेलि मे इन्होने अपने आपको जति शब्द से सम्बोधित किया है इसका अर्थ यह है कि इन्होने अपने अन्तिम वर्षो मे साधु जीवन अपना लिया था। तथा भट्टारको के सघ मे ही अपना जीवन व्यतीत करने लगे थे।

उक्त १५ रचनाओ मे "मेघमाला कहा" के अतिरिक्त सभी लघु रचनाये हैं इसलिए मेरी तो ऐसी धारणा है कि कवि की अभी और भी वडी रचनाये मिलनी चाहिए क्योकि वडे कवि को छोटी-छोटी रचनाओ से ही सन्तोष नही होता उसे तो अपनी काव्य प्रतिभा वड़ी रचना निवद्ध करने मे ही दिखाने का अवसर मिलता है। 'मेघमाला कहा' एक मात्र अपभ्र श रचना है शेष सव रचनाये राजस्थानी भाषा की रचनायें कही जा सकती है। जिन पर व्रज भाषा का भी प्रभाव दिखाई देता है।

उक्त रचनाओ का सामान्य परिचय निम्न प्रकार है—

१. सीमधर स्तवन

इसमे विदेह क्षेत्र मे शाश्वत विराजमान सीमधर स्वामी का ३ छप्पय छन्दो मे वर्णन किया गया है। रचना के अन्त मे 'लिखितं ठाकुरसी' इस प्रकार उल्लेख किया हुआ है। भाषा एव भावो की दृष्टि से स्तवन अच्छी कृति है। इसकी एक प्रति शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर गोधान जयपूर के ८१ सख्या वाले गुटके मे ४८-४९ पृष्ठ पर अकित है।

२ नेमिराजमति वेलि

जैन कवियो ने वेलि सज्ञक रचनायें लिखने मे खूव रुचि ली है। हमारे स्वय कवि ने एक साथ दो वेलिया लिखी हैं जिनमे राजमति वेलि प्रथम वेलि है। इसका दूसरा नाम नेमीश्वर वेलि भी है। इसमे नेमिनाथ और राजुल के विवाह प्रसग से लेकर वैराग्य धारण करने एव अन्त मे निर्वाण प्राप्त करने तक की सक्षिप्त कथा दी हुई है।

बसन्त ऋतु आती है और सव यादव वन विहार के लिए चले जाते है। इस अवसर पर नेमिनाथ के अपूर्व पौरुष का सब को पता चल जाता है और उसके

पीछे विवाह को लेकर अन्य घटनाएँ घटती हैं। नेमिकुमार जल क्रीडा करके सरोवर से निकलते हैं और गीले कपडे निचोडने के लिए रुक्मिणी से प्रार्थना करते हैं। लेकिन रुक्मिणी तो उनके बडे भाई नारायण श्रीकृष्ण की पत्नी थी इसलिए वह कैसे कपडे निचोडती। उसने इतना कह दिया कि जो सारग धनुष चढा देगा, पाञ्चजन्य शख पूर देगा तथा नाग शैय्या पर चढ जावेगा, उसी के रुक्मिणी कपडे धो सकती है। रुक्मिणी का इतना कहना था कि नेमिकुमार चल दिये अपना पौरुष दिखलाने आयुध शाला मे। वहां जाकर पल भर मे उन्होने तीनो ही कार्य कर डाले। शख पूरते ही यादवो मे खलबली मच गई और स्वय नारायण वहां आ पहुँचे। नेमिनाथ का वल एव पौरुप देखकर सभी आश्चर्य चकित हो गये। अन्त मे नेमिनाथ को वैराग्य दिलाने की युक्ति निकाली गयी। विवाह का प्रस्ताव रखा गया। वारात चढी। तोरण द्वार के पास ही अनेक पशुओ को दिखलाया गया। नेमिनाथ के पूछने पर जब उन्हे मालूम चला कि ये सब बरातियो के लिए लाये गये है तो उन्हे ससार से विरक्ति हो गयी और तत्काल रथ से उतर कर कंकण तोड़ कर गिरनार पर जा चढे और मुनि दीक्षा धारण कर ली। राजुल के विलाप का क्या कहना। उसने नेमिनाथ को समझाया, प्रार्थना की, रोना रोया, आसू बरसाये लेकिन सब व्यर्थ गया। अन्त मे राजुल ने भी जैनेश्वरी दीक्षा ले ली।

प्रस्तुत कृति पद्धडिया छन्द के आधार पर लिखी गयी है। प्रारम्भ मे २ दोहे हैं और फिर कडवक छन्द हैं। इस प्रकार पूरी वेलि मे १० दोहे तथा ५ पद्धडिया छन्द हैं। सभी वर्णन रोचक एव प्रभावोत्पादक है। भाषा व्रज है जिस पर राजस्थानी का प्रभाव है। जब राजुल के समक्ष दूसरे राजकुमार के साथ विवाह करने का प्रस्ताव उपस्थित किया गया तो राजुल ने दृढतापूर्वक निम्न शब्दो मे विरोध किया—

जपइ रजमतीय अणेरा, जिण विणु वर वधव मेरा ॥११॥
कै वरउ नेमिवरु भारी, सखि कै तपु लेउ कुमारी।
चढि गैंवरि को खरि वैसे, तजि सरगि नरगि को पैसै ॥१२॥
तजि तीणि भवन को राई, किम अवरनु वरो वस माई ॥

नेमिकुमार की अपूर्व सुन्दरता, कमनीयता एव रूप पर सभी मुग्ध थे। जब वे वसन्त क्रीडा के लिए जाने लगे तो उस समय की सुन्दरता का कवि के शब्दो मे वर्णन देखिये—

कवि कहइ सुनिय घणु घणु, जसु परणाइ एह मदणु।
इणि परितिय अणेक्क पयारा, वहु करिहिति काम विकारा।
जिणु तव इण दिठि दे वोलै, नाउ मेह पवन मै डोलै ॥५॥

कवि ने रचना के अन्त मे अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है—

कवि घेल्ह सतनु ठाकुरसी, किये नेमि सु जति मति सरसी।
नर नारि जको नित गावै, जो चितै सो फलु पावै ॥२०॥

नेमिराजमति वेलि की पाण्डुलिपिया राजस्थान के कितने ही भण्डारो मे उपलब्ध होती हैं। जिनमे जयपुर, अजमेर के ग्रन्थागार भी है।

३. पञ्चेन्द्रिय वेलि

पञ्चेन्द्रिय वेलि कवि की बहुत ही चर्चित कृति है। इसमे पाच इन्द्रियो की वासना एव उनमे होने वाली विकृतियो पर अच्छा प्रकाश डाला है। और अन्त मे इन्द्रियो पर विजय पाने की कामना की गयी है। जिसने इन इन्द्रियो पर विजय प्राप्त की वह अमर हो गया, निर्वाण पथ का पथिक बन गया लेकिन जो जीव इन्ही इन्द्रियो की पूर्ति मे लगा रहा उसका जीवन ही निकम्मा एव निन्दनीय बन गया। इन्द्रिया पाच होती हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु एव श्रोत्र। और इन पाच इन्द्रियो से पाच काम अर्थात् अभिलाषाएँ उत्पन्न होती हैं और वे हैं, स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द। इन्द्रियो के इन पाच काम गुणो के वशीभूत होकर मन सासारिक भोगो मे उलझ जाता है और अपने सच्चे स्वरूप को भूला बैठता है। इसलिए सच्चा वीर वही है जिसने इन काम गुणो पर विजय प्राप्त की हो। कबीर ने भी सूरमा की यही परिभाषा की है—

कबीर सोइ सूरमा, मन सो माडे जूझ।
पाँचो इन्द्री पकडि कै, दूर करे सब दूझ ॥

कबीर ने फिर कहा कि जो मन रूपी मृग को नही मार सका वह जीवन मे अभ्युदय एव श्रेयस का भागी कदापि नही हो सकता

काया कसो कमान ज्यो, पाच तत्व कर बान।
मारो तो मन मिट गया, नही तो मिथ्या जान ॥

पञ्चेन्द्रिय वेलि कवि की सवतोल्लेख वाली अन्तिम कृति है अर्थात् इसके पश्चात् उसकी कोई अन्य कृति नही मिलती जिसमे उसने रचना सवत दिया हो। इसलिए प्रस्तुत कृति उसके परिपक्व जीवन की अनुभूति का निष्कर्ष रूप है। कवि द्वारा यह सवत् १५८५ कार्तिक शुक्ला १३ को समाप्त की गयी थी।[1]

१ सवत पन्द्रहसैर पिच्यासे तेरसि सुदी कातिग मासे।
जिहि मनु इ द्री वसि कीया, तिहि हर तरपत जग जीया ॥

ठक्कुरसी ने वेलि के अन्त मे अपने और अपने पिता के नाम का भी उल्लेख किया है तथा अपने आपको 'गुणवाम' विशेपण से सम्बोधित किया है। जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि ठक्कुरसी की कीर्ति उस समय आकाश को छू रही थी।[1]

विषय प्रतिपादन

कवि ने एक-एक इन्द्रिय का स्वरूप उदाहरण देकर समझाया है। सबसे पहले वह स्पर्शन इन्द्रिय के लिए कहता है कि वन मे स्वतन्त्र रहते हुए वृक्षो के पत्ते एव फल खाते हुए स्पर्शन इन्द्रिय के वश मे होकर ही हाथी जैसा जीव मनुष्य के वश मे हो जाता है और फिर अकुशो की मार खाता रहता है। कामातुर होकर हाथी कागज की हथिनी के पीछे सब कुछ भूल जाता है।

वन तरुवर फल खातु, फिरि पय पीवतौ सुछद।
परसण इद्री प्रेरियो, जहु दुख सहै गयन्द।
बहु दुख सहो गयदो, तसु होइ गई मति मदो।
कागज के कुजर काजे, पडि खाडन सक्यौ न भाजे।

कीचड मे फसने के पश्चात् मदोन्मत हाथी की जो दशा होती है उस पर कवि मानो आसू बहाते हुए कहता है—

तहि सहीय घणी तिस भूखो, कवि कौन कहत स दूखो।
रखवाला वलगउ जाण्यौ, वेसासि राय घरि आण्यो।
वध्यौ पगि सकुलि घाले, तिउ कियउन सक्कइ चाले।
परसण प्रेरे दुख पायो, निति अकुस घावा घायौ॥

कवि ने स्पर्शन इन्द्रिय के वशीभूत होने के कारण जिन-जिन महापुरुषो ने अपने जीवन को नष्ट कर दिया है उनके भी कुछ उदाहरण देकर इस इन्द्री की भयकरता को समझाया है। मैथुन के वशीभूत होने पर ही कीचक को जीवन से हाथ धोना पडा। रावण की सारी प्रतिष्ठा एव रावणत्व धूल धूसरित हो गया। इसलिए जिस प्राणी ने स्पर्शन इन्द्रीय पर विजय प्राप्त की है उसी ने जीवन का असली फल चखा है।

परसण रस कीचक पूरचौ, जहि भीम सिला तलि चूरचौ।
परसण रस रावण नामैं, मारियउ लकेसुर रामैं।

---

१. कवि घेल्ह सुतनु गुणवामु, जगि प्रगट ठकुरसी नामु।

परसण रस सकट राच्यौ, तिय आगै नट ज्यौ नाच्यौ ।
इहि परसण रस जे थूता, वे नर सुर घणा विगूता । १।।

दूसरी इन्द्रिय रसना है । मानव सुस्वादु बन जाता है और अपना हिताहित भुला बैठता है। अपनी मृत्यु का कारण वह स्वयं बन जाता है । जल मे स्वच्छन्द विचरने वाली मछली भी रसनेन्द्रिय के कारण ही जाल मे फंस कर अपने प्राण गवा बैठती है—

केलि करतो जनम जलि, गाल्यौ लोभ दिखालि ।
मीन मुनिष ससारि सरि, काढयौ धीवर कालि ।
सो काढयौ धीवरि काले, तिणि गाल्यो लोभ दिखाले ।
मछु नीर गहीर पइट्ठौ, दिठि जाइ नही जहि दीठौ ।

कवि ने मानव रूपी मछली के रूपक द्वारा रसनेन्द्रिय के दुष्प्रभाव की विशद व्याख्या की है । उसके शब्दो मे जन्म को जल, मनुष्य को मछली, संसार को सरिता और काल को धीवर के रूप मे देखने मे कितनी यथार्थता है । इसके पश्चात् कवि ने रसनेन्द्रिय के प्रभाव की जो सत्य तस्वीर प्रस्तुत की है वह कितनी सुन्दर है—

इह रसणा रस कउ घाल्यो, थलि आइ मुवै दुख माल्यौ ।
इह रसना रस कै ताई, नर मुसै बाप गुरु भाई ।
घर फौडै पाडै बाटां, निति करै कपट घण घाटा ।
मुख भूठ साच सहिहि बोलै, घरि छोड दिसावर डोलै ।

कवि के कथन मे अनुभूति है और जीवन की जागती तस्वीर । रात दिन सुनते, देखते, पढते है "इह रसना रस के ताई, नर मुसै बाप गुरु भाई ।" इस रसना इन्द्रिय के चक्कर मे पडकर इस मानव को भूठ कपट करना पडता है । अपने लहलहाते घर को उजाडना पडता है । भूठ का सहारा लेना पडता है तथा घरबार को छोड देश देशान्तर भटकना पडता है । यही नही छोटा-बडा, ऊँच-नीच, सब की मर्यादाओ को वह समाप्त कर देता है । यह सब रसना इन्द्रिय का चक्कर है । कवि के शब्दो मे कितनी सच्ची अनुभूति है । अन्त मे कवि ने यही अभिलाषा प्रकट की है कि यदि मानव जीवन को सफल बनाना है तो फिर रसना इन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है—

रसना रस विणै अकारी, वसि होइ न औगण गारौ ।
जिहि इहुर विषै वसि कीयौ, तिहि मुनिप जमन फल लीयौ ।

हिन्दी के अन्य कवियो ने रसना इन्द्रिय का कार्य केवल हरि भजन माना है। सूरदास ने 'सोई रसना सो हरि गुण गावै' लिख कर रसना इन्द्रिय के प्रमुख कर्त्तव्य की ओर सकेत किया है। कबीर ने अपनी पीडा यो व्यक्त की है --जी भडिया छाला परचा राम पुकारि पुकारि।

तीसरी इन्द्रिय है घ्राण। इस घ्राण इन्द्रिय के वश मे होकर भी प्राणी कभी-कभी अपने प्राण गवा बैठता है। घ्राण इन्द्रिय की शक्ति बडी प्रबल है। चिउटी को शक्कर का ज्ञान हो जाता है तथा भौरे कमल को खोज निकालते हैं हम स्वय भी अच्छी गन्ध मिलने पर प्रसन्न चित्त होकर आनन्द का अनुभव करने लगते हैं तथा दूषित गध मिलने पर नाक पर रुमाल लगा लेते हैं, नाक भो सिकोडने लगते हैं तथा वहा से भागने का प्रयास करते हैं। कवि ने भ्रमर का वहुत सुन्दर उदाहरण दिया है। जिस तरह गध लोलुपी भ्रमर कमल पराग का रस पान करता रहता है और वह कलि मे से निकलना भी भूल जाता है। बन्द कमल मे भी वह रगीन स्वप्न लेने लगता है—"रात भर खूब रस पीऊ गा, और प्रात काल होते ही स्वच्छ सरोवर मे कमल की कलिया विकसित होगी मैं उसमे से निकल जाऊंगा।" एक ओर वह भ्रमर सुनहरे स्वप्न ले रहा है तो दूसरी ओर एक हाथी जल पीने सरोवर मे आता है और जल पीकर उस कमल को उखाड लेता है और पूरे कमल को ही खा जाता है। वेचारा भौंरा अपने प्राणो से हाथ धो वैठता है।

कमल पइठो भ्रमर दिनि, घ्राण गधि रस रूढ।
रैणि पडी सो सकुच्यो, नीसरि सक्या न मूढ।।

अति घ्राण गधि रस रूढो, सो नीसर सक्यो न मूढो।
मनि चितै रयणि सवायो, रस लेस्यौं अजि अघायो।
जव उगैलो रवि विमलो, सरवर विकसै लो कमलो।
नीसरि स्यो तव इह छोडै, रस लेस्यो आइ बहुडे।
चितवतै ही गज आयो, दिनकर उगवा न पायो।
जलि पैसि सरवर पीयो, नीसरत कमल खुडि लीयो।
गहि सु डि पाव तलि चप्यौ, अलि मारचो थर हर कप्यो।
इहु गध विषै छै भारी, मनि देखहु क्यो न विचारि।
इह गध विषै वसि हुवो, अलि अहलु अखूटी मूवो।
अलि मरण करण दिठि दीजे, तउ गध लोभ नहि कीजे।।३।।

अन्त मे कवि ने मानव को भ्रमर की मृत्यु से शिक्षा लेने को कहा है कि जो प्राणी इस ससार की गन्ध लेने मे ही अपने आपको उसमे समर्पित कर देता है

उसकी भी भ्रमर के समान दशा होती है। आखो का काम देखना है। इन नेत्रो द्वारा रूप सौंदर्य को देखा जाता है और यह मानव अपनी आखो से रूप सौदर्य को देखने का इतना आदि हो जाता है कि वह उसी देखने मे अपना आपा खो बैठता है। यह मानव रूप पर कितना मरता है, आखो की चोरी करता है और दूसरो की स्त्री की ओर झाकता रहता है। कवि ने अहिल्या और तिलोत्तमा का उदाहरण देकर अपने कथन की पुष्टि की है। यही नही "लोयण लपट झूठा, वाज्या नहि होइ अपूठा" कह कर चक्षु इन्द्रिय पर करारी चोट की है। यही नही आगे कहा है कि मना करने पर भी वह नही मानता है। लेकिन पाँचो इन्द्रियो का स्वामी तो मन है जब तक मन वश मे नही होता तब तक वेचारी ये इन्द्रिया भी क्या करे।[1] इसलिए इसी के आगे कवि ने कहा है कि—

लोयरणे दोस को नाही, मन मेरे देखन जाही।

श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है शब्द, उसकी मधुरता, कोमलता और प्रियता पर प्राण निछावर करना जीव का स्वभाव है। हरिण वधिक का गीत सुनकर प्राण घातक तीर से व्यथित हो प्राण को छोड़ देता है। सर्प जैसा विषैला जन्तु सगीत की मीठी ध्वनि सुनकर विल से निकल कर मनुष्य के अधीन हो जाता है। इसलिए कवि ने मानव को सचेत किया है कि वह हिरण की तरह मधुर नाद के वशवर्ती होकर अपने प्राणो का परित्याग न करे।

इस तरह ठक्कुरसी ने पञ्चेन्द्रिय वेलि मे पाचो इन्द्रियो के विषयासक्त पाच प्रतीको द्वारा मानव को सचेत रहने को कहा है। जो मानव इन पाचो इन्द्रियो के वशीभूत हो जाता है वह जल्दी ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर बैठता है।

अलि गज मीन पतग मृग एके कहि दुख दीघ।
जाइति भौ भौ दुख सहै, जिहि वसि पच न किद्ध।

ठक्कुरसी कवि को अपनी कृति पर स्वाभिमान है इसलिए वह लिखता है—

करि वेलि सरस गुण गाया, चित चतुर मनुष समझाया।
मन मूरिख सक उपाई, तिहि तणइ चित्ति न सुहाई॥

इस वेलि का दूसरा नाम गुण वेलि भी है।[2]

---

१ नेहु अचगलु तेल तसु वाती वचन सुरग।
रूप जोति परतिय दिवै, पडहिति पुरुष पतग॥

२ देखिए राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची भाग-२।

४. चिन्तामरिण जयमाल

प्रस्तुत जयमाल ११ पद्यो की लघु कृति है जिसमे पार्श्वनाथ का स्तवन एव उनकी भक्ति के प्रभाव से घटित घटनाओ का उल्लेख किया गया है। जिनेन्द्र स्वामी की भक्ति से मानव अथाह समुद्र को तैर कर पार कर सकता है, सूली फूलो की माला बन सकती है और न जाने क्या क्या विपत्तियो से वह बच सकता है। जयमाल की भाषा अपभ्र श मिश्रित हिन्दी है। कवि ने अन्त मे अपना नामोल्लेख निम्न प्रकार किया है—

इह वर जयमाल गुराह विसाला, थेल्ह सतनु ठाकुर कहए।
जो णरु सिरिण सिरक्कइ दिरिण दिणि अक्खइ सो सुहमरण वछिउ लहए।

प्रस्तुत जयमाल की प्रति जयपुर के गोधो के मन्दिर के शास्त्र भण्डार के ८१ वे गुटके मे पृष्ठ २० से २२ तक संग्रहीत है।

५ कृपरण छन्द

कविवर ठक्कुरसी का कृपरण छन्द लौकिक जीवन के आधार पर निबद्ध कृति है। छीहल कवि ने पच सहेली गीत लिखकर जहाँ एक ओर पति वियोग एव पति मिलन मे नवयुवतियो की मनोदशा का चित्रण किया था वहाँ कवि ठक्कुरसी ने कृपण छन्द लिखकर उस व्यक्ति का चित्रण किया है जो उसके संचय मे ही विश्वास करता है और उसका उपयोग जीवन के अन्तिम क्षरण तक नहीं करता।

कृपण छन्द का नाम कही कृपरण चरित्र भी मिलता है। यह कवि की सवत् १५८० के पोष मास मे निबद्ध रचना है। रचना एकदम सरस, रुचिकर एव प्रसाद गुरण से भरपूर है। इसमे ३५ पद्य हैं। जो षट्पद छन्द मे निबद्ध है। इस कृति की एक पाण्डुलिपि जयपुर और एक भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर मे सग्रहीत है। अजमेर वाली पाण्डुलिपि मे तो कृति का ही नाम कृपरण षट्पद दिया हुआ है। कृति की सक्षिप्त कथा निम्न प्रकार है—

एक प्रसिद्ध कृपरण व्यक्ति उसी नगर मे अर्थात् चम्पावती मे ही रहता था और वही कविवर ठक्कुरसी भी रहते थे। वह जितना अधिक कृपण था उसकी धर्मपत्नी उतनी ही अधिक उदार एव विदुषी थी।

क्रिपरण एक परसिद्ध नयरि निवसति निलक्षरण।
कही करम सजोग तासु घरि नारि विचक्खण।

सारे नगर के निवासी इस जोडी को देखकर ग्राश्चर्य मे भर जाते थे क्योंकि स्त्री जितनी दानी, धर्मात्मा एव विनयी थी उसका पति उतना ही कजूस था। न स्वय खर्च करता था और न अपनी पत्नी को खर्च करने देता था। इसी को लेकर दोनो मे कलह होता रहता था। वह कृपण न गोठ करता, न मन्दिर जाता, यदि कोई उससे उधार मागने आता तो वह गाली से बात करता, यही नही अपनी बहन, भुवा एव भाणजियो को भी अपने घर पर नही बुलाता था। यदि कोई घर मे बिना बुलाये ही आ जाता तो मुंह छिपा कर बैठ जाता था।

घर मे आगण पर ही सो जाता। खटिया तो उसके घर पर थी ही नही तथा जो थी उसे भी बेच दी। घर पर छान बाव ली। जब आधी चलती तो उसकी बडी दुर्दशा होती। वह सबसे पहिले उठता और दस कोस तक नंगे पाव ही घूम आता। न स्वय खाता और न अपने परिवार वालो को खाने देता। दिन भर झूठ बोलता रहता और झूठ लिखता, पढता और झूठी कमाई करता। अपनी इस आदत के कारण वह नगर में प्रसिद्ध था। नगर का राजा भी उसकी आदतो को जानता था।

वह पान कभी नही खाता और न ही किसी को खिलाता था। न कभी सरस भोजन करता। न कभी नवीन कपडे पहन कर शरीर को सँवारता था। वह कभी सिर मे तेल भी नही डालता और न मल-मल कर नहाता था। खेल तमाशे मे तो कभी जाता ही नहीं था।

कदे न खाइ तबोलु, सरसु भोजन नही भक्खे।
कदे न कपडा नवा पहिरि, काया सुख रक्खे।
कदे न सिर मे तेल घालि, मल मल कर न्हावै।
कदे न चन्दन चरचै, अंग अबीरु लगावै।
पेषणो कदे देखे नही, श्रवणु न सुहाई गीत-रसु ॥६॥

उसकी पत्नी जब नगर की दूसरी स्त्रियो को अच्छा खाते-पीते, अच्छे वस्त्र पहिनते तथा पूजा-पाठ करते देखती तो वह अपने पति से भी वैसा ही करने को कहती। इस पर दोनो मे कलह हो जाती। इस पर वह अपने भाग्य को कोसती और पूर्व जन्म मे किये हुए पापो को याद करती जिसके कारण उसे ऐसा कृपण पति मिला। वह याद करती कि क्या उसने कुदेव की पूजा की, अथवा गुरु एव साधुओ की निन्दा की, क्या झूठ बोली या रात्रि मे जोजन किया अथवा दया धर्म का पालन नही किया जो ऐसे कृपण पति से पाला पडा। जो न स्वय खरचे और न उसे ही खरचने दे।

ज्यौ देखै देहुरै त्याह की वर नारी ।
तलि पहरचा पटकूला सव्व सोवन सिंगारी ।
एकि करावै पूज एकि ऊभी गुरग गावै ।
एक देहि तिय दारगु एक शुभ भावन भावै ।
तिहि देखि भरग़ौ हीयो हर्षौं कवरगु पापु दीयो दई ।
जहि पाप किरग ही पापीरगी कृपरगु कत धरि घरग हुई ॥६॥

एक दिन कृपण की पत्नी ने सुना कि गिरनार की यात्रा करने सघ जा रहा है तो उसने रात्रि मे हाथ जोडकर हँसते हुए पति से यात्रा सघ का उल्लेख किया और कहा कि लोग उसी गिरनार की यात्रा करने जा रहे हैं जहाँ नेमिनाथ ने राजुल को छोड दिया था और तपस्या की थी। वहाँ पर्वत चढ़ेंगे, पूजा-पाठ करेंगे तथा पशु एव नरक गति के वध से मुक्त होगे । इसलिए हम दोनो को भी चलना चाहिए । इतना सुनते ही कृपण के ललाट पर सलवटे पड गयी और वह बोला कि क्या तू बावली हो गई है जो धन खरचने की तेरी बुद्धि हुई है । मैने अपना धन न चोरी से कमाया है और न मुझे पडा हुआ मिला है। दिन रात भूखा प्यासा मर कर उसे प्राप्त किया है । इसलिए भविष्य मे उसे खरचने की कभी बात मत करना ।

नारि वचन सुरिग कृपणि, सीसि सलवटि घरग यल्ली ।
कि तू हुई धण बावली, कि धरग थारी मति चल्ली ।
मै धरगु लद्ध न पडयो, मै र धरगु लियो न चोरी ।
मै धरगु राजु कमाइ, आपु आरिगयो ना जोरी ।
दिन राति नीद विरु भूख सहि, मैर उपायो दुख घणौ ।
खरचि ना तरगौ दाहुडि, वचनु धण तू आगै मत भणौ ॥१४॥

कृपरग की पत्नी भी वडी विदुषी थी इसलिए उसने कहा कि नाथ, लक्ष्मी तो बिजली के समान चंचल है। जिसके पास अटूट धन एव नवनिधि थी वह भी साथ नही गयी । जिन्होने केवल उसका सचय ही किया वे तो हार गये और जिन्होने उसको खर्च किया उनका जीवन सफल हो गया। इसलिए यह यात्रा का अवसर नही चूकना चाहिए और कठोर मन करके यात्रा करनी चाहिए । क्योकि न जाने किन शुभ परिरगामो से अनन्त धन मिल जावे। इसके बाद पति पत्नी मे खूब वाद-विवाद छिड जाता है । पत्नी कहती है कि सूम का कोई नाम ही नही लेता जब कि राजा कर्रग, भोज एव विक्रमादित्य के सभी नाम लेते हैं। वह फिर कहने लगी कि वह नर धन्य है जिसने अपने धन का सदुपयोग किया है। पाप की होड़ न करके पुण्य कार्यों की तो अवश्य होड़ करनी चाहिए। पुण्य कार्य मे धन लगाना अच्छी

वात है। जिसने केवल धन का संचय ही किया और उसे स्व पर उपकार मे नही लगाया वह तो अचेतन के समान है तथा सर्प के डसे हुए के समान है।

पत्नी की वात सुनकर कृपण गुस्से मे भर गया और उठ कर वाहर चला गया। वाहर जाने पर उसे उसका एक कृपण ही साथी मिल गया। साथी ने जव उसकी उदासी का कारण पूछा और कहने लगा कि क्या तुम्हारा धन राजा ने छीन लिया या घर मे कोई चोर आ गया अथवा घर मे कोई पाहुना आ गया या पत्नी ने सरस भोजन बनाया है। किस कारण से तुम्हारा मुख म्लान दिखता है।

तबहि कृपणु करि रोस, रुसि घर वाहिरि चलीयो।
ताम एकु सामहो मतु पूरवलौ मिलियौ।
कृपणु कहै रे कृपण आजि तू दूमण दिठो।
कि तु रावलि गह्यो केम घरि चोर पइट्ठो।
आईयउ कि को घरि पाहुणौ कीयो नर भोजन सरसि।
किणि काजि मीत रे आजिउ तु, मुख विनाण दीठो।

कृपण ने कहा कि मित्र मुझे घर मे पत्नी सताती है। यात्रा जाने के लिए धन खरचने के लिए कहती है जो मुझे अच्छी नही लगती। इसी कारण वह दुर्बल हो गया है और रात दिन भूख भी नही लगती। मेरा तो मरण आ गया। तुम्हारे सामने सव कुछ भेद की वात रख दी।

उस दूसरे कृपण मित्र ने कहा कि हे कृपण तू मन मे दुख न कर। पापिनी को पीहर भेज दे जिससे तुझे कुछ सुख मिले।

कृपणु कहै रे मत मुझ घरि नारी सतावै।
जाति चालि धन खरीचु कहै जो मोहि न भावै।
तिह कारणि दुव्वलै रयण दिण भषण ण लगाइ।
मतु मरण धाइयो गुह्य अख्यो तू आगै।
ता कृपणु कहै रै कृपण सुणी मीत मरण न माहि दुखु।
पीहरि पठाइ दे पापिणी ज्यौ को दिणु तू होइ सुख ॥२०॥

इसके पश्चात् उस कृपण ने एक आदमी को बुलाया तथा एक झूठा पत्र लिख दिया कि तेरे जेठे भाई के पुत्र हुआ हे अत उसे वुलाया है। पत्नी पति के प्रपच को जानते हुए भी पीहर चली गयी।

कुछ महीनो पश्चात् यात्रा सघ वापिस लौट आया। इस खुशी मे जगह-जगह ज्यौनारे दी गयी, महोत्सव किये गये। जगह-जगह पूजा पाठ होने लगे। विविध

दान दिये गये । बाजे बजे तथा लोगो ने खूब पैसा कमाया । कृपण ने यह सब सुना तो उसे बहुत दु ख हुआ ।

कुछ समय पश्चात् वह बीमार पड गया । उसका अन्त समय समझ कर उसके परिवार वालो ने उसे दान पुण्य करने के लिए बहुत समझाया लेकिन उसके कुछ भी समझ मे नही आया । उसने कहा कि चाहे वह मरे या जीये ज्योनार कभी नही देगा । उसका धन कौन ले सकता है । उसने बड़े यत्न से उसे कमाया है । अब वह मृत्यु के सन्मुख है इसलिए हे लक्ष्मी तू उसके साथ चल । लक्ष्मी ने इसका उत्तर निम्न प्रकार दिया—

लच्छि कहै रे कृपण झूठ हो कदै न बोलो ।
जु को चलण दुइ देइ गलत मारगी तसु चालो ।
प्रथम चलण मुझ एहु देव देहुरे ठविज्जे ।
दूजे जात पतिट्ठ दाणु चउसघहि दिज्जै ।
ये चलण दुवै तै भंजिया ताहि विहूणी क्यो चलौ ।
भूख मारि जाय तू हौ रही वहुडि न सगि वारे चलौ ।।२८।।

लक्ष्मी ने कहा कि उसकी दो बाते हैं । एक तो वह देव मन्दिरो मे रहती है । दूसरे यात्रा, प्रतिष्ठा, दान और चतुर्विध सघ के पोषणादि कार्य हैं इनमे तूने एक भी नही किया । अत वह कृपण के साथ नही जा सकती ।

कुछ समय पश्चात् कृपण मर गया और मर कर नरक मे गया । वहा उसे अनेक प्रकार के दु ख सहन करने पडे । इसलिए कवि ने निम्न निष्कर्ष के साथ कृपण छन्द की समाप्ति की है—

इसी जाणि सहु कोइ, मरइण पूरिष धनु सच्यो ।
दान पुण्य उपगार दित वनु कि वै न खचौ ।
दान पुजै वह रासो असो पौष पाचै जगि जाणै ।
जिसउ कपणु इकु दानु तिसउ गुणु कसु वखाण्यौ ।
कवि कहै ठकुरसी घेल्ह तणु, मै परमत्थु विचार्यो ।
चरभियो त्याह उपज्यौ जनमु ज्या पाच्यो तिह हारियो ।।३५।।

प्रस्तुत पाण्डुलिपि मे ३५ छन्द हैं ।

६. पार्श्वनाथ शकुन सत्तावीसी

कवि की सवंतोल्लेख यह प्रथम कृति है जिसकी रचना संवत १५७८ माघ शुक्ला २ के शुभ दिन चम्पावती मे हुई थी।[1] उस समय देहली पर बादशाह इब्राहीम लोदी का शासन था तथा चम्पावती महाराजा रामचन्द्र के अधीन थी। सत्तावीसी एक स्तवनात्मक कृति है जिसमे चाकसू (चम्पावती) के पार्श्वनाथ के मन्दिर मे विराजमान पार्श्वनाथ की ही स्तुति की गयी है। इसमे २७ पद्य हैं। रचना साधारण होते हुए भी सुन्दर एव प्रवाह युक्त है और सोलहवी शती के अन्तिम चरण मे हिन्दी भाषा के विकास को बतलाने वाली है। सत्तावीसी स्तवन परक कृति होने पर भी इतिहास के पुट को लिये हुए है। प्रस्तुत कृति मे इब्राहीम लोदी के रणथम्भोर आक्रमण का उल्लेख है तथा यह कहा गया है कि बादशाह ने अपने प्रवल सैन्य के साथ रणथम्भोर किले पर जब आक्रमण कर दिया तो उसकी सेना आस पास के क्षेत्र मे भी उपद्रव मचाने लगी और वह चम्पावती तक आ पहुँची। लोग गावो को छोडकर भागने लगे।[2]

चम्पावती के निवासी भी भय से कापने लगे तथा मना करने भी चारो ओर भागने लगे। लेकिन कुछ लोग नगर मे ही रह गये और भगवान पार्श्वनाथ की स्तुति करने लगे। ऐसे नागरिको मे पं० मल्लिदास, कविवर ठक्कुरसी आदि प्रमुख थे।[3] सभी नागरिक पार्श्वनाथ की स्तुति, पूजा-पाठ करने लगे तथा विपत्ति से बचाने के लिए प्रार्थना करने लगे। भगवान पार्श्वनाथ की कृपा से शीघ्र ही भयकर विपत्ति टल गयी। लोगो को अभय मिला। नगर मे शान्ति हो गयी। चारो ओर पार्श्वनाथ

१ घेल्ह नंदणु ठकुरसी नामु, जिरग पाय पकय भसलु।
तेण पास थुय किय सचो जवि, पदरासय अट्ठतरइ।
माह मासि सिय पख पुर जवि, पढहि गुणहि जे नारि नर।

२ जवहि लिद्धउ राणि सग्रामि, रणथभुवि दुग्ग गढु।
जब इब्राहिमु साहि कीधिउ, वलु वौली मो कलिउ।
वोलु कौलु सवु तेण लोपिउ, जिव लग उज्झलि हाइसिउ।
मेछ मूढु भय वज्जि, विगु चपावती देस सहि गया दहइ दिसि भज्जि।

३ तेण तुहु सिउं कहहि जगनाथ, निसुणि सिद्धि सुंदरि रयण।
इहि निमित्त कउ किसउ कारणु, भूत भविषित जाण तुहु।
तुहु समथु जगि तरण तारणु, उच्चावंता उचवहु।
जाइ भव देखइ गांइ, जइनि देखहि पास प्रभु होइ रहहु थिरुट्ठाइं ॥२३॥

की जय बोली जाने लगी। जो लोग नगर छोडकर चले गये थे वे अधिक दु'खी हुए और जो नगर मे ही रहे वे शान्तिपूर्वक रहे।

एम जपिय वग्गिवि थुय पूज, मल्लिदास पडिय पमुह।
सइ हथा सामी उचायउ, तुच्छ मूरतिउ चनि तिलु।
हवो जाणि सुरगिरि सवायउ, इणि विधि परतिउ वारतिहु।
पूरि विहरी भराति जयवतउ जगि पास तुहु, जेव करी सुख संगति ॥२४॥
तासु पर ते जिके णर भव्वनी भग्गा दिढ रह्या।
हूवा मुखी ते घरा वासै, जे भगा भति करि।
दुख पाया अरु रड्या सासै, अवरइ परत्या वह इसा।

प्रभु पूरिवा समथु, अजउन जिसु पतिसाइ मनु, मो नरु निगुणु निरथु ॥२५॥

पार्श्वनाथ 'सकुन सत्तावीसी' प० मल्लिदास के आग्रह से रची गयी थी।[1] मल्लिदास ने ठक्कुरसी से पार्श्वनाथ के मन्दिर मे ही इस प्रकार के स्तवन लिखने की प्रार्थना की थी। कवि ने अपनी सर्वप्रथम अल्पज्ञता प्रकट की क्योंकि कहा भगवान पार्श्वनाथ के अनन्त गुण और कहा कवि का अल्पज्ञान। फिर भी कवि अपने मित्र के आग्रह को नही टाल सके और उन्होने सत्तावीसी की रचना कर डाली। और अन्त मे भी मल्लिदास से सत्तावीसी पढने के लिए आग्रह किया है।

प्रस्तुत सत्तावीसी की पाण्डुलिपि दि० जैन मन्दिर प० लूणकरण जी पाड्या के शास्त्र भण्डार के एक गुटके मे सग्रहीत है। लेकिन गुटके मे एक पत्र कम होने से ५ से १४ वें पद्य तक नही है। सत्तावीसी की एक प्रति अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार मे भी सग्रहीत है।

७ जैन चउवीसी

जैन चउवीसी का उल्लेख प० परमानन्द जी शास्त्री ने अपने लेख मे किया है। यह स्तुति परक कृति है जिसमे २४ तीर्थंकरो का स्तवन है। राजस्थान के शास्त्र भण्डारो मे जैन चउवीसी की कोई पाण्डुलिपि नही मिलती।

---

१ एक दिवसह पास जिण गेह मल्लिदास पंडिय कहइ।
ठकुरसीह सुणि कवि गुणग्गल गाहा गीय कवित कह।
तइ क्रियमय निसुणी समग्गल।
इव श्रीपास जिणद गुण करहि न कितु हु भव्व।
जहि कीया थे पाविए मन वछित सुख सव्व ॥२॥

८ मेघमाला कहा

मेघमाला कहा की एक मात्र पाण्डुलिपि भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर के एक गुटके मे सग्रहीत है। इसकी उपलब्धि का श्रेय प० परमानन्द जी शास्त्री देहली को है।

मेघमाला व्रत करने का उस समय चम्पावती मे बहुत प्रचार था। ठक्कुरसी ने अपने मित्र मल्लिदास हाथुव साह नामक श्रेष्ठि के आग्रह एव भ० प्रभाचन्द्र के उपदेश से इस कहा की अपभ्रंश मे रचना की थी। उस समय चम्पावती नगरी खण्डेलवाल दि० जैन समाज का केन्द्र थी तथा अजमेरा, पहाडिया, बाकलीवाल आदि गोत्रो के श्रावको का प्रमुख रूप से निवास था। सभी श्रावको मे जैनाचार के प्रति आस्था थी। कवि ने उस समय के कितने ही श्रावको के नाम गिनाये हैं जिनमे जीणा, तोल्हा, पारस, नेमिदास, नाथूसि, मुल्लण आदि के नाम उल्लेखनीय है। कवि तोषा पडित का और नाम गिनाया है।

मेघमाला व्रत भाद्रपद मास की प्रथम प्रतिपदा से प्रारम्भ होता है। इस दिन उपवास एवं दिन भर पूजन करनी चाहिए। यह व्रत पाच वर्ष तक किया जाता है। इसके पश्चात् व्रत का उद्यापन करना चाहिए। यदि उद्यापन न कर सके तो इतने ही वर्ष व्रत का और पालन करना चाहिए।

मेघमाला कहा की समाप्ति सावन शुक्ला ६ मगलवार सवत १५८० के शुभ दिन हुई थी। पूरी कहा मे ११५ कडवक तथा २११ पद्य है। रचना अपभ्रंश भाषा मे निबद्ध है।

मेघमाला कहा का आदि एव अन्त भाग निम्न प्रकार है—

आदि भाग—

णय चरिम जिणिदु वि दय कदु वि सुव सिद्धत्थ वि सिद्धयरो।
कह कहमि रसाला वयघणमाला णर णिसुणहु करिकण्णथिरो॥
दिण्णेक ढु ढाहड देस मज्झि, णयरी चपावइ अत्थि सत्थि।
तहि अत्थि पास जिणवरणिकेउ, जो भव कण्णहि तारणहसेउ।
तसु मज्झि पहासति वर मुणीसु, सह सठिउ ण गोयमु मुणीसु।
तहु पुरउ णिविट्ठिय लोय भव्व, णिसुणत धम्मु मणि गलिय-गव्व।
तह मल्लिदास वणि तणु रुहेण सेवइ सुवुत्तु विणय सहेण।
भो घेल्हणद ! सुणि ठकुरसीह, कइ कुलह मज्झि तुह लहणु लीह।

तहु मेहमालवय कह पयासि, इण कियइ केरा फलु लद्ध सामि ।
इह कह किय चिरु किण सहसकित्त, तुहु करि पद्धडिया बध मित्त ।
ता विहसि वि जंपइ घेल्हणदु, जो धम्म कहा कहणि अमंदु ।
भो मित्त ! पइमि वुज्झिउ हियत्थु, कह कहमि केम वुज्झउ ण अत्थु ।
वायरणु न मइं गुणियउं गुणालु, कोवद्दम दीठउ रसु रसालु ।
जो हरइ जड तण तणउ दोसु, सो मवणि मुणियउ तिय सकोसु ।
कह कहणि वुहयण हमहि मज्झु, किहकरि रजावमि चित्त तुज्झ ।।

अन्तिम भाग—

सुअमयडी चिरु लेवि सुत्तय, करी कहा एह महा पवित्तय ।
उणग्गल जपय मत्त जपिया, खमेउ त देवी भारही मया ।।
ता माल्हा कुल-कमलु दिवायरु, अजमेराह वसि मय सायरु ।
विणयं सज्जण जणमण रंजणु, दाणि दुहियणह उल-भ जणु ।।
रूवें मयरद्ध य सम सरिसु वि, परयण पुरह मज्झि मह पुरि सु वि ।
जिण गुण णिग्गथह पयमत्त वि तोसण पडिय कवियण चित्त वि ।
वुच्छिय वयण सयल परिपालणु, वधव तिय सहयर सुयलालणु ।
एलीतिय भण रुहइल सोहणु, मल्लिदास यातहु मणु मोहणु ।
तिणि सेवइ सुन्दरि यह कह सुणि, सरिसु वउलीमउ मु दिढु मणि ।
पुणु तोल्हा तणेण परमत्थें, कह सुणि वउली योसिर हत्थें ?
पुणुवि पहाडियाह वरवंसवि, लद्धीसयल णयरि सुपसंसवि ।
जीणा नंदणेण जिणभत्तें, ताल्हू वउली यो विहसंतें ।
पुणु पारस तणेण दुहवीरें, गहिउ सुवउ जइ तइजस धीरें ।
पुणु वाकुलीयवाल सुविसालुवि, वालू वउली यो घणमालुवि ।
पुणु कह मुणिवि ठकुरसी णंदणि, णेमिदास भावण भाईय मणि ।
पुणु णाथूसी वग्गरि मुल्लणि, लीयउ वउ जीउ रिय भय डुल्लणि ।
पुणु कह सुणिवि मणोहर गारिहि, अवरहि भव्वग्ग यर णर-णारहि ।
मेघमालावउ चगउ महियउ, इंछिउ फलु लहि सहि कवि करियउ ।
चपावतीव णयरि णिवसते, रामचन्दपहु रज्जु करते ।
हाथुवसाहु महत्ति महत्तो, पहाचन्द गुरु उवएसंते ।
पणदह सइजि असीवे अग्गल सावण मासि जट सिय मगल ।
पयउ पहाडिए वससिरोमणि, घेल्हा गरु तसु तिय वर घर मिणि ।
तह तणइ कवि ठाकुरि सु दरि, यह कहि किय सभव जिन मदिरि ।

घत्ता—जो पढइ पढावइ रिगयमरिग भावइ लेहाइ विसइं करि लिहिये ।
तसु वय की यह फलु होइ विरिगम्मलु राम सुगरिग गोयमु कहिये ।
वस्तुबध–जेरग सुंदरि विरगवइ वयरगेरग कराविय एह कह ।
मेहमालवय विहि रवण्गिम पुरगु पुथि यह लिहावि करि ।
पयउ कज्जि पडियह दिण्गिय मल्लारगदु सु महियलह सेवउ सेवउ गुरगह गहीरु ।
नदउ तव लगु जउलइ, वहइ गगनदि नीरु ।।११५।।

९ शील गीत

यह एक छोटा-सा गीत है जिसमे ब्रह्मचर्य की महिमा बतलायी गयी है। प्रारम्भ मे कुछ उदाहरण दिये गये है जिनमे विश्वामित्र एवं पाराशर ऋषियो के नाम विशेष रूप से गिनाये गये हैं जो ब्रह्मचर्य के परिपालन मे खरे नही उतर सके। अन्त मे इन्द्रियो पर विजय पाने पर जोर दिया गया है। गीत का दूसरा एवं अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—

सिंघु वसइ बन मज्झि मस आहारि वली अति ।
वार एक वरस मैं करइ सिंघरगी सरि सुरति ।
पेषि परे वो पापु जासु मन मुइइ न आसुर ।
खाइ खड पाषारग कामु सेवइ निसि वासर ।
भोयरिग वसेवु नहु ठकुरसी इहु विकार सव मन तरगौ ।
सील रहहि ते स्यध नर नहि यति पारापति गिरगौ ।।२।।

१० पार्श्वनाथ स्तवन

प्रस्तुत स्तवन पं० मल्लिदास के आग्रह पर निबद्ध किया गया था। इसमे चंपावती (चाकसू) के पार्श्वनाथ प्रभु की स्तुति की गयी है। पूरा स्तवन १५ पद्यो मे पूर्ण होता है। स्तवन प्रभावक ऐव सुरुचिपूर्ण है। इसका अन्तिम छन्द निम्न प्रकार है—

पास तरगै सुपसाइ, पाइ परगमति आइ अरि ।
पास तरगै सुपसाइ थाइ, चक्कवइ रिद्धि घरि ।
पास तरगै सुपसाइ सग्ग सिव सुख लहिजै ।
पास तासु परगमति अगि आलस कुन किजै ।
ठकुरसी कहै मलिदास सुरिग हमि इहु पायो भेदु इव ।
जगि ज ज संदरु सपजै, त त पास पसाउ सव ।।१२।।

११ सप्त व्यसन षट्पद

कविवर ठक्कुरसी की जिन ६ कृतियो की प्रथम वार उपलब्धि हुई है उनमे "सप्त व्यसन षट्पद" प्रमुख कृति है। जिस प्रकार कवि ने पञ्चेन्द्रिय वेलि मे पाच इन्द्रियो की प्रवलता, तथा उनके दमन पर जोर दिया गया है उसी प्रकार सप्त व्यसनो मे पडकर यह मानव किस प्रकार अपना अहित स्वय ही कर वैठता है। व्यसन सात प्रकार के हैं—जुवा खेलना, माँस खाना, मदिरा पीना, वेश्यागमन करना, शिकार खेलना, चोरी करना और परस्त्री सेवन करना। ये सातो ही व्यसन हेय है, त्याज्य हैं तथा मानव जीवन का विनाश करने वाले हैं।

पार्श्व वन्दना के साथ षट्पद को प्रारम्भ किया है। कवि ने कहा है कि पार्श्व प्रभु के गुणो का तो स्वय इन्द्र भी वर्णन करने मे जव समर्थ नही हैं तो वह अल्प बुद्धि उनके गुणो का कैसे वर्णन कर सकता है। कवि ने वडी ओजपूर्ण भाषा मे अपनी लघुता प्रकट की है—

पुहमि पट्टि मसि मेरु होहि भायण खर सागर।
अघस अनोपम लेखि साख सुरतर गुण आगर।
आपु इदु करि लिहै, कहै फणिराउ सहसमुख।
लिहइ देवि सरसत्ति लिहत पुणु रहइ नही चुप।
लेखणि मसि मही न उव्वरइ, थक्कइ सरसइ इद पूणि।
आयो नवोडु कहि ठकुरसी तवइ जिणेसर पास गुणि ।।१।।

जुआ खेलना प्रथम व्यसन है। जुआ खेलने मे किञ्चित् भी लाभ नही है। ससार जानता है कि पाचो पाण्डवो एव नल राजा को जुआ खेलने के क्या फल भुगतने पडे थे। उन्हे राज्य सम्पदा छोडने के साथ-साथ युद्ध का भी सामना करना पडा था। द्यूत क्रीडा करने से अनेक दुःख सहन करने पडते हैं। इसलिए जो मनुष्य द्यूत क्रीडा के अवगुण जानते हुए भी इसे खेलता है वह तो विना सीग के पशु है।

जूव जुवारयो घणी लाभु गुण किवइ न दीसइ।
मतिहीणा मानइ येलि मति चित्ति जगीसइ।
जगु जाणइ दुखु सह्यौ पच पंडव नरवइ नलि।
राज रिधि परहरी रण्णु सेविउ जूवा फलि।
इह विसन सगि कहि ठकुरसी, कवणु न कवणु विगुत्तु वसु।
इव जाणि जके जूवा रमै ते नर गिणिवि ण सीगु पसु ।।१।।

दूसरा व्यसन है मांस खाना। जीभ के स्वाद के लिए जीवो की हत्या करना एव करवाना दोनो ही महा पाप के कारण हैं। मास मे अनन्तानन्त जीवो की प्रतिक्षण उत्पत्ति होती रहती है इसलिए मास खाना सर्वथा वर्जनीय है।

मद्य पान तीसरा व्यसन है। मद्य पान से मनुष्य के गुण स्वत ही समाप्त हो जाते हैं। शराव के नशे मे वह अपनी मा को भी स्त्री समझ लेता है। मद्य पान से वह दु.खो को भी सुख मान बैठता है। यादवो की द्वारिका मद्य पान से ही जल गयी थी। यह व्यसन कलह का मूल है तथा छत्र और धन दोनो को ही हानि पहुँचाने वाला है एव बुद्धि का विनाशक है। वर्तमान मे मद्य पान के विरुद्ध जिस वातावरण की कल्पना की जा रही है, जैन धर्म प्रारम्भ से ही मद्य पान का विरोधी रहा है।

मज्ज पिये गुण गलहि जीव जोगै ज्वास्यौ भणि।
मज्जु पिये सम सरिस माइ महिला मण्णहि मणि।
मज्जु पिये वहु दुखु सुखु सुणहा मैथुन इव।
मज्ज पिये जा जादव नरिंद सकु टव विगय खिव।
धण धम्म हाणि नर यह गमणु कलह मूल अवजस उतपति।
हारति जनमु हेलइ मुगध मज्ज पिये जे विकलमति ।।३।।

वेश्या गमन चतुर्थ व्यसन है जो प्रत्येक मानव के लिए वर्जनीय है। यह व्यसन धन, सपत्ति, प्रतिष्ठा एव स्वास्थ्य सवको नष्ट करने वाला है। सेठ चारुदत्त की बर्बादी वेश्यागमन के कारण ही हुई थी। कालिदास जैसे महाकवि को वेश्या-गमन के कारण मृत्यु का शिकार होना पडा था। इसलिए वेश्यागमन पूर्णत वर्जनीय है।

इसी तरह शिकार खेलना, चोरी करना एव पर-स्त्री गमन करना वर्जनीय है तथा इन तीनो को व्यसनो मे गिनाया है। ये तीनो ही व्यसन मनुष्य के विनाश के कारण हैं। शिकार खेलना महा पाप है। जिस कार्य मे दूसरे की जान जाती हो वह कितना बडा पाप है इसे सभी जानते है। किसी के मनोविनोद के लिए अथवा जीभ की लालसा को शान्त करने के लिए दूसरे जीव का घात करना कितना निन्दनीय है ? इन तीनो ही व्यसनो से कुल की कीर्ति नष्ट हो जाती है और केवल अपयश ही हाथ लगता है। रावण जैसे महाबली को सीता को चुराकर ले जाने के कारण कितना अपयश हाथ लगा जिसकी कोई समानता नही है। इसलिए ये तीनो व्यसन ही निन्दनीय है वर्जनीय है एव अनेको कष्टो का कारण है।

कवि ने अन्तिम पद्य मे सभी सातो व्यसनो को त्याग करने का उपदेश देते हुए उनके अवगुणो को उदाहरण देकर वतलाया है।

जूव विसनि वन वासि भमिय पडव नरवइ नलु।
मसि गयो वगराउ सुरा खोयो जादम कुलु।
वेसा वणियर चारिदत्त पारधि सव उनिउ।
चोरी गउ सिउभूति विपु परती लंकाहिउ।
इक्के विसनि कहि ठकुरसी, नरइ नीच्च नरु दुह सहइ।
जह अगि अधिक अच्छहि विसन, ताह तणी गति को कहइ ॥८॥

रचना की एकमात्र पाण्डुलिपि शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दि पाडे लूणकरण जी, जयपुर के गुटके मे संग्रहीत है।

१२. व्यसन प्रबन्ध

कवि की यह दूसरी कृति है जिसमे सात व्यसनो की चर्चा की गयी है। उनके अवगुन वताये गये हैं और उन्हे छोडने का आग्रह किया गया है। प्रस्तुत प्रवन्ध मुनि धर्मचन्द्र के उपदेश से लिखी गयी थी। मुनि धर्मचन्द्र भट्टारक प्रभाचन्द्र के शिष्य थे और वाद मे मडलाचार्य वन गये थे। इन्होने राजस्थान मे प्रतिष्ठा महोत्सवो के आयोजन मे विशेष रुचि ली थी।

मुणि धर्मचन्द उपदेसु लह्यो, कवि ठकुरि विस्न प्रवघ कह्यौ।
पर हरई जको ए जाणि गुण, सो लहइ सरव सुख वछित घण ॥८॥
सुणि सीख सयाणी मूढ मन, तजि विस्न वुरा देहि दुख घण ॥

प्रवन्ध मे केवल आठ पद्य हैं तथा उनमे सक्षिप्त रूप से एक-एक व्यसन के अवगुणो का वर्णन किया गया है।

सप्त व्यसनो के सम्वन्ध मे दो-दो कृतिया निवद्ध करने का अर्थ यह भी निकाला जा सकता है कि कवि के युग मे समाज मे अथवा नगर मे सात व्यसनो मे से कुछ व्यसनो का अधिक प्रचार हो। और उनको दूर करने के लिए कवि को पुन प्रवन्व लिखने की आवश्यकता पडी हो।

मद्य पान के मम्वन्ध मे कवि ने लिखा है कि मद्य पीने से आठ प्रकार के अनर्थ होते है। शराव पीने के पश्चात् वह माता एव पत्नी का भेद भूल जाता है। मद्य पान से पता नही कौन-सा सुख मिलता हैं। मद्य पान से ही सारा यादव वश समाप्त हुआ था।

जहि पीये आठ अनर्थ करै, जननी महिला न विचारु फुरै ।
तहि मज्ज पिये भणु कवणु सुखी, जहि जादम वसह दिण्णु दुखो ।।३।।

१३ पार्श्वनाथ जयमाला

यह जयमाला भी स्तवन के रूप मे है। चम्पावती मे पार्श्वनाथ स्वामी का मन्दिर था और उसमे जो पार्श्वनाथ की प्रतिमा है उसी के स्तवन मे प्रस्तुत जयमाला लिखी गयी है। जयमाला मे ग्यारह पद्य हैं। अन्तिम पद्य मे कवि ने अपना और अपने पिता का नामोल्लेख किया है। जयमाला का अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—

इह वर जइमाला, पास जिण गुण विसाला ।
पढहि जिणर णारी, तिण्णि सभा विचारी।
कहइ करि अनदो, ठकुरसी घेल्ह नन्दो ।
लहहिति सुख सार, वछिय वहु पयार ।।

१४ ऋषभदेव स्तवन

यह भी लघु स्तवन है जिसमे प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की स्तुति की गयी है। स्तवन मे केवल दो अन्तरे हैं। दूसरा अन्तरा निम्न प्रकार है—

इश्वाक वस श्री रिसह जिणु, नाभि तणु भम भव हरणु ।
सव अहल अवरु कहि ठकुरसी, तुहु समथ तारण तरणु ।।

१५ कवित्त

कविवर ठक्कुरसी ने सभी प्रकार के काव्य लिखे है और वे सभी विषयो से ओतप्रोत है। प्रस्तुत कवित्त भी विविध विषय परक हैं और सम्भवत कवि के अन्तिम जीवन की रचना है। कवित्त का अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—

जइरु वहिरइ सुण्यौ नहु गीतु, जइ न दीठु ससि अधलइ ।
जइ न तरुणि रसु सढि जाण्यौ, जइ न भवरु चपइ रम्यो ।
जइ न घणकु कर हीणि ताण्यौ, जइ किणि नि गुणिनि लखणी ।
कवि न कीयो मण्णु, कहि ठाकुर तउ गुणी गुण नाउ जासी सुणु ।।६।।

इस प्रकार अभी तक ठक्कुरसी की १५ कृतियो की खोज की जा सकी है लेकिन नागौर, अजमेर, एव अन्य स्थानो के गुटको की विस्तृत छानवीन एव खोज होने पर कवि की और भी रचनाओ की उपलब्धि की सम्भावना है। ठक्कुरसी प्रकृति प्रदत्त प्रतिभा सम्पन्न कवि थे इसलिए सम्भव है कोई महाकाव्य भी हाथ लग जावे ।

कविवर ठक्कुरसी १६ वी शताब्दि के ढूढाड प्रदेश के प्रमुख कवि थे। उनकी रचनाओ के अध्ययन से ज्ञात होगा कि कवि ने या तो भक्ति परक रचनाये लिखी हैं या फिर समाज मे से बुराइयो को मिटाने के लिए काव्य लिखे हैं। कवि का कृपण छन्द उन लोगो पर करारी चोट है जो केवल सम्पत्ति का सचय करना ही जानते हैं। उसका उपयोग करना अथवा त्याग करना नही जानते। कृपण छन्द जैसी रचना सारे हिन्दी साहित्य मे बहुत कम मिलती हैं। इसी तरह पञ्चेन्द्रिय वेलि एव 'सप्त व्यसन षट्पद' भी शिक्षाप्रद रचनाये है जिनको पढने के पश्चात् कोई भी पाठक आत्म चिन्तन करने की ओर बढता है। ठक्कुरसी का समय मुसलिम शासको की धर्मान्धता का समय था लेकिन कवि ने समाज का अपनी रचनाओ के माध्यम से जिस प्रकार पथ प्रदर्शन किया वह सर्वथा प्रशसनीय है।

ठक्कुरसी की रचनाये भाव, भाषा एव शैली तीनो ही दृष्टियो से उत्तम रचनाये हैं उन्हे हिन्दी साहित्य के इतिहास मे उचित स्थान मिलना चाहिये।



सीमंधर स्तवन

श्री सीमधर जिन पय वदौ, भवि नेत्र चकोरभिनदौ ।
पु डरीकणी पूर्व विदेहो, अतिशयवत तहा प्रभु रे हो ।
रे है ज परमातशय जुत प्रभु, समवसुति महिमडणो ।
तिहुलोक विजयी मोह रिपु, वलु काम दल सह भजणो ।
परमेठि परमारथ प्रकाशक, पाप नाश दिगवरो ।
भव जलधि पोतक पास मोचक, नमहु जिन सीमंधरो ।।१।।

तह युग्मघर जिनराजै, साकेता मडण छाजै ।
तिहुलोक जनाधिप वद्यौ, मोहारि विजय अभिनद्यो ।
अभिनदियौ जगदेक स्वामी, मोक्ष गामी नीर जो ।
पचसै घनुष प्रमाण देहो, मान माय विहडणो ।
तत्वादि वेदी क्रोध भेदी, भव्य पूज्य परपरो ।
दिन नाथ कोटि प्रमाधि शोभी, जयउ जिन युग्मघरो ।।२।।

पछिम दिशि वाहु मुनीशो, विजयार्ध पुरी शिरि सीसो ।
निमितामर नर फणि लोको, विनि वारि तज न भय शोको ।
जन शोक बारण सौख्य कारण, जनम मरण जरा हरो ।
परमारथ रत्नत्रय विराजित, सुघ चेयण गुणघरो ।
चर अचर लोक अतीत नागत, वर्त्तमान सु गोचरो ।
उत्पादन ध्रौव्य यैक ग्याता, जयहु बाहु जिनेस्वरो ।।३।।

।। लीखत ठाकुरसी ।।

नेमिराजमति वेलि

सरसय सामिणि पय जुयल, नमो जोडि कर दोइ।
नेमिकुमार राजमती जती कहू उ, सुणहु सव कोइ ॥१॥

आइ मास वसत रुति, जन मन भयो अनदु।
सव्वइ वन कीला चल्या, मिलि द्वारिका नरिंद।
मिलि द्वारिका नरिंदो, वसुवो वलिभद्दु गोविंदो।
समदविजै दर्म दसारा, सिवदेस्यो नेमिकुवारा।
सतिभामा रुपिणि राही, जंववती सरिसउ माही।
ले सोलह सहस अगिवाणी, चारचौ चाली पटराणी।

चाल्या दल वल रूप निधानो, पडदवण जुभानु सुभानो।
परधान परोहित मत्री, मिलि चल्या सयल भड खित्री।
हय गय रय जाण जयाणा, मिलि चाल्या जादम राणा।
मुखि कहै किता इक जोडे, मिलि चलिया छप्पण कोडे।
हल रज पसरी चौपासा, नहु सूझै सूर अगासा।
गवि सुण छोडि सहु देसो, वन मिसि मति मारै केसो।
सिरि छत्र चमर दुइ पासा, सोहइ सिरि पडी पभासा।
बाजा वाजै वहु भते, वदियण विडद पभणते।
मनि आनदु अविकु वहता, हरि विंदु वनिहि सपत्ता ॥२॥

दोहडा

गीत नाद रस पेषणा, परिमल सुख संजोग।
तरु छाया वल्लीभवण, फिरि फिरि भुंज्या भोग ॥३॥

जहि जहि केलि करतु, वनिहीडो नेमिकुवारु।
तहि तिय वाही क्यामगहि, लागी फिरैति लार ॥४॥

लागी फिरहिति लारा, भरि जोवन रूप अपारा।
कातीय जिणु दीठो चाहैं, तलि वषु खिस्योरि न साहै।
कवि रूप रवणरसि घाली, चखि एक आजि उठ चाली।
कवि कहै कुंवर मा जाहे, तुझु रूपु निखो थिरु थाहे।

किकि दिठि देखण को भाऊ, सिसु तजि जे चलियु बिलाऊ ।
कवि कहइ सुतिय घणु घणु, जसु परणइं एह मदणु ।
इणि परितिय अणेक्क पयारा, बहु करिहिति काम विकारा ।
जिणु तव इन दिठि दे बोलैं, नाइं मेरू पवन मैं डोलै ।
अव रेयणु नर नारे, रगि रमाहिति वनह मझारे ।
वनि रमत हुवो श्रमु काया, जलि न्हाणि सरोवर आया ।
जल माहि केलि कीइं जैसी, कवि सकइ कवणु कहि तैसी ।

दोहडा

जल विनोद करि नीसरचा, मन हरषी नरनारि ।
पहिरि वस्त्र आरभरण अगि, आवहि नगर मझारि ॥५॥

सिवदे रूपिणिस्यो कहौं कहा रही मुहु मोडि ।
नेमि कुवर कपहरणी, दैने बहु निचोडि ॥६॥

देनै बहु निचोडे, तिन उत्तरु दियौ वहोडे ।
जो सारगुं घणकु वढावै, लै संपु पंचाइणु बावै ।
चडि नाग सेज जो सोवै, रूपिणि तसु वस्त्र निचोवै ।
सुणि सतिभामा कर जोडे, ले दोनौ वस्तु निचोडे ।
तव सिवदे तणइं कुमारे, मनि निमष चड्यो अहकारे ।
वरजता सहि रखवाला, प्रभु पैठौं आइधु साला ।
मनि गिणइं न क्यो रगि रतौ, चढि नाग सेज सिरि सूतौ ।
चरणागुलि घणकु चडायौ, नासिका सखु धरि वायौ ।
सुणि सवदु सखु जण कंप्यौ, इहु कहा हुवउ इम जंप्यौ ।
सुणि सख सवद हरि डोल्यौ, वलिभद्र इम बोल्यौ ।
अहो भाई विण ठौकाजो, जदि तदि यह लेसी राजो ।
को मोटौ मत्रु उपाये, तपु ले घरि तजि वन जाये ।
तव कुडइ मनि ललियंगी, आयौ उग्रसेणि घिय मगी ॥

दोहडा

सुरनर जादव मिलि चल्या व्हाण नेमिकुमारि ।
पसु दीया गुवाडा भर्या, वध्या ससुर दुवारि ॥७॥

हरण रोझ सूवर सुसा पुक्कारहि सुहु चाहि ।
नेम कुमर रथु राषि करि, वूझ्यौ सारथ वाहि ॥८॥

रे सारथि ए आजे, पसु वधि वर्या किणि काजे ।
तिणि जप्यौ कृष्न अनाथी पसु जाति जके मनिभाया ।
पोषीवा भगति बराती, पसु वधि दासहु परभाती ।
तव नेमिकुमरु रथु छोडौ, पसु मुकलाया वध तोडो ।
भयभीत जीव ले भागा, त्रिभुवनु गुरु चीतरण लागा ।
इहु जीव विषइ कउ घाल्यौ, हउं जिहि जहि जोणी घाल्यौ ।
तिहि तिहि तिय पासि बधायौ..........................
इव सो तपु तपउं विचारे, ज्यो फिर न पडौ ससारे ।
इम चीति रू' चल्यौ कुमारो, आयो राखण परिवारो ।
अहो कवर कवणि तू वाद्यौ, तपु लेवा जोग उमाह्यौ ।
तपु तपिउ न वालै जाई, करि व्याहु करहि समझाइ ।
जव प्रोढउ होहि कुमारि, तव लीजह तपु भवतारि ।
हसि नेमि कुवरु तव वोलै, मुझ जनम मरणु मन डोलै ।
जइ अइ पहुचइ कालो, तव गिणइ ण वूढौ वालो ।
जहि जहि जोणी हौ जायौ, तिहि तउ कुटवु उपायौ ।
इहु मोहु कवण परिकीजै, तिणि काजि माइ तपु लीजै ।
माइ बापु दुवै समझावै, परियण जण सयल समावै ।
विलवतु साथु सवु छोडे, गो नेहु निमष मै तोडे ।
आभरण ते वस्त्र उतारे, चढि लीयो तपु गिरनारे ॥

दोहडा

सुणिय बात राजमति कवरि परिहरियो सिंगारु ।
पिउ पिउ करती तिह चली, जहि वनि नेम कुवारु ॥९॥

माइ बाप बंधव सखी, समझावहि कहि भाउ ।
अवरु वरहि वरु भावतो, गयो नेमि तौ जाउ ॥१०॥

गयउनु दै पिउ जाणी, उन कहहि सुवरु किरि आणी ।
जपइ रजमतीय अणेरा, जिण विणु वर बधव मेरा ॥११॥

कइ वरउ नेमिवरु भारी, सखि कै तपु लैउ कुमारी ।
चढि गैवरि को खरि वैसे, तजि सरगि नरगि को पैसे ॥१२॥

तजि तीणि भवन को राई, किम अवरनु वरौ वरु माई ।
समझाइ राखि सवु साथो, तिहां चलीय जिहा पिउ नाथो ॥१३॥

तिय भाव अनेक दिखाया, तिणि तवइ न चित्त डुलाया ।
भूली राजमती मनि विवै, नाउ घुणु लागै वज्ज थभै ।।१४।।

विलखी पडि हियै विवासै, तपु तपिउ तिहा पिउ पासै ।
तपु तपिउ करी क्रिषि काया, रजमतीय अमर फल पाया ।।१५।।

राखियो वाधि मन चोरो, तप तपिउ नेमि अति घोरो ।
तजि मोहु मानु मदु रासा, अति सहिया विषम परीसा ।।१६।।

तिहसंठ कर्म्म वलु घायो, अरु केवल णाणु उपायो ।
मलघीत गई सव दूरे, हुउ समोसरणु रिषि पूरे ।।१७।।

फिरि देसु सयलु समझाया, नर तिरिय धरम पथ लाया ।
वूझता हरिवल तोसो, आख्यौ द्वारिका हि विणासो ।।१८।।

जहि जहि मनिऊ मति अनेरी, वूझता हरि तिहि केरी ।
अवसाणि आइ गिरणारे, गये मुकतिहु दो भवपारे ।।१९।।

जर जननु मरणु करि दूरे, हुउ सिद्ध गुणह परि पूरे ।
कवि घेल्ह सुतन ठाकुरसी, किये नेमि सुजति मति सरसी ।
नर नारि जको नित गावै, जौ चितै सो फलु पावै ।।२०।।

।। इति श्री नेमि राजमति वेलि जति ठाकुरसी कृतं समाप्त ।।

पञ्चेन्द्रिय वेलि

स्पर्शन इन्द्रिय

दोहा—

वन तरुवर फल खातु फिरि, पय पीवतौ सुछंद ।
परसण इन्द्री प्रेरियौ, बहु दुख सहै गयंद ॥

छंद—

बहु दुख सहौ गयंदो, तसु होइ गई मति मंदो ।
कागज कै कुंजर काजे, पडि खाडन सक्यौ न भाजे ।
तहि सहिय घणी तिस भूखो, कवि कौन कहत स दुखो ।
रखवाला बलगाड जाण्यौ, वैसासिराय वरि आण्यौ ।
बंध्यौ पगि संकलि घाले, तिह कियउन सक्कइ चाले ।
परसण प्रैरे दुख पायौ, निति अंकुस घावां घायौ ।
परसण रस कीचकु पूर्यौ, गहि भीम सिला तल चूर्यौ ।
परसण रस रावण नामै, मारियउ लंकेसुर रामै ।
परसण रस संकर राच्यौ, तिय आगै नट ज्यौं नाच्यौ ।
इहि परसण रस जे पूता, ते सुर नर घणा विगूता ॥१॥

रसना इन्द्रिय

दोहा—

केलि करंतौ जनम जलि, गाल्यौ लोभ दिखालि ।
मीन मुनिष संसारि सरि, काढ्यो धीवर[1] जालि ॥

छंद—

सो काढ्यो धीवरि कालें, तिणि गाल्यौ लोभ दिखाले ।
मछु नीर गहीर पइठो, दिठि जाइ नहीं जहि दीठो ।
इह रसना रस कउ माल्यौ, थलि आइ मुवै दुख साल्यौ ।
इह रसना रस के ताईं, नर मुसै बाप गुरु भाई ।

---

1 धीवरि

घर फोडै पाडै बाटा, निति करै कपट घण घाटा।
मुखि झूठ साच नहि बोलै, घर छोडि दिसावर डोलै।
कुल ऊच नीच नहि लेखै, मूरख जहि तहि मिलि भेखै।
इह रसना रस कै लीए, नर कुण कुरण कर्म न कीए।
रसना रस विषै अकारौ, वसि होइ न औगरण गारौ।
जिहि इहुर त्रिषै वसि कीयौ, तिहि मुनिष जनम फल लीयौ ॥२॥

घ्राण इन्द्रिय

दोहा —

कमल पइठौ भ्रमर दिनि, घ्राण गंधि रस रूढ।
रैणि पडी सो सकुच्यौ, नीसरि सक्या न मूढ॥

छंद—

अति घ्राण गंधि रस रूढो, सो नीसरि सक्यो न मूढो।
मनि चितै रयणि सवार्यो, रस लेस्यौ अजि अघायौ।
जब उगैलो रवि विमलो, सरवर विकसै लो कमलो।
नीसरिस्यौ तब इह छोडे, रस लेस्यौ आइ बहुडे।
चितवतै ही गज आयौ, दिनकर उगवा न पायौ।
जलि पैसि सरवर पीयौ, नीसरत कमल खुडि लीयौ।
गहि सुंडि पाव तलि चप्यौ, अलि मार्यौ थर हर कप्यौ।
इहु गंध विषै छै भारी, मनि देखहु क्यौ न विचारी।
इह गंध विषै वसि हुवौ, अलि अहलु अखूटी मूवो।
अलि मरण करण दिठि दीजे, तउ गंध लोभ नहि कीजे ॥३॥

चक्षु इन्द्रिय

दोहा—

नेहु अचगलु तेल तसु बाही वचन सुरंग।
रूप जोति परतिय दिवै, पडहिति पुरुष पतंग॥

छंद—

पडहिति पुरुष पतंगो, दुख दीवै दइ इति अंगो।
पडि डोइ तहा जीव पाखै, दिटि पंचिन मूरख राखै।
दिठि देखि करै नर चोरी, दिठि देखित कै पर गोरी।
दिठि देखि करै नर पायौ, दिठि दीहा बधइ सतापो।

दिठि देखि अहल्या इदो, तनु विकल गई मति मदो ।
दिठि देखि तिलोत्तम भूल्यौ, तप तपिउ विधाता डोल्यो ।
ए लोयण लवट झूठा, वरज्या नहि होइ अपूठा ।
ज्यौ वरजै ज्यौ रस वाया, रगु देखै आपणु भाया ।
लोयणह दोस को नाहि, मन प्रेरै देखण जाही ।
जे नयण दुवै वसि राखै, मो हरति परति सुख चाखै ।।४।।

कर्णेन्द्रिय

दोहा—

वेग पवन मन सारिखो, सदा रहे भय भीतु ।
वधीक वाण मारयौ हिरण, कानि सुणतौ गीतु ।।

छद—

सौ गीत सुणतौ कानै, मृग खडौ रह्यौ हैराने ।
धणु खैंचि वधीक सरि हणियौ, गसि वीधौ घाउ न गिणियौ ।
इह नाद सुणतौ सांपो, विल छोडि नीसर्यौ आपो ।
पापी घडियालि खिलायौ, फिर फिर दिनि दुख्य दिखायौ ।
कीदुरि नाद नर लागै, जोगी हुइ भिष्या मागै ।
वाहुडहि न ते समझाया, फिर जाहि घणा घरि आया ।
इहु नादु तणौ रस ऐसो, जगि महा विषम विसु जैसो ।
इह नादि जिके मरि भिलिया, ते नर त्रियवेगि[1] न मिलिया ।
इह नाद तणै रगि रातौ, मृग गिण्यौ नही जीउ जातौ ।
मृग भाव उपाव विचारो, तौ सुणणउ नादु निवारे ।।५।।

दोहा—

अलि गजु मीनु पतग, मृग एके कहि दुख दीघ ।
जाइति भौ भौ दुख सहै, जिहि वसि पच न किद्ध ।।

छंद—

जिह वसि पच न किरिया, खल इन्द्री अवगुण भरिया ।
तिहि जप तप सजम खोयौ, सतु सुकृत सलिल समोयौ ।

---

१ तिय वगिन

सब्र हरतु परतु सत हारे, जिहि इंद्री पंच पसारे।
जिहि इंद्री पच पसारया, तिहि मुनिष जनम जगि हार्या।
नित पच वसै इक्क अगे, खिर और और ही रगे।
चक्षु चाहे रूप जु दीठौ, रसना मख भखै सु मीठौ।
निति न्हालै घ्राण सुगधो, सपरसण कोमल वधो।
निति श्रवण गीत रस हेरै, मन पापी पंचै प्रेरै।
मन प्रेर्यो करै कलेशो, इंद्रियान दीजै दोसो।
कवि घेल्ह सुतनु गुणधामु, जगि प्रगट ठकुरसी नामु।
करि वेलि सरस गुण गाया, चित चतुर मनुष समुझाया।
मन मूरिख सक उपाइ, तिहि तणइ चिति न सुहाई।
नहि जपौ घणौ पसारौ, इह एक वचन छै सारौ।
संवत पद्रहसैरे पिच्यासे, तेरसि सुदि कातिग मासे।
जिहि मनु ईंद्री वसि कीया, तिहि हरत परत जग जीया ॥६॥

॥ इति पञ्चेन्द्रिय वेलि समाप्त ॥

चिन्तामणि जयमाल

पणविवि जिण पासहु पूरण आसहु दूरभिय संसार मलु ।
चिन्तामणि जतहु मणि सुमरन्तहु, सणहुजेम संजवइ फलु ।।१।।

महारत्त गु जा समादुण्णिर्णत्त, सुणे सदुत्त कासु संकण्ण चित ।
हरो होइमो काणणे जंवुमत्त, भरतासु चितामणे जतु चित्त ।।२।।

दिढ मूसलाया रदंतं पयड, मऊणिभरंतो किए उच्च सुडं ।
न लग्गोइसो सिन्धुरो थूल गत्त, भरतासु चितामणे जंतु चित्त ।।३।।

विसे वासि अदुण्णि रीषो असंतो, न भण्णेय मूली कियो मंत मंतो ।
ण लोग्गाइ चून्यो फणी अप्पमित्त, भरंतासु चितामणे जतु चित्त ।।४।।

समीरे सहाए मिली घूम भाल, णदापेखि भंग फुल्गि विसालं ।
णढुक्केइ या अग्गिण णीर सित्त, भरतासु चितामणे जंतु चित्त ।।५।।

ण तीसार चित्त भमंरोद्दारीय, नगल वल मण्डल सण्णिबायं ।
ण दुट्टं जरा दुट्ठ खेखास पित्त, भरतासु चितामणे जतु चित्त ।।६।।

कुदेवा गहा डायणी भूमिपाल, दिनाइ विस कम्मण वग्ध बाल ।
कुसवण कुसप्न न लग्ग तिणित्त, भरतासु चितामणे जतु चित्त ।।७।।

जरी सकले देह रक्खो विनाणे, णरासीसु विहुणत दिट्ठ कुट्ठाणे ।
गिऊ दूरि तट्टो णियताइ णेत, भरतासु चितामणे जतु चित्त ।।८।।

समुद्देर वद्दे अवाहे अगम्मे, पड्यो को वितच्छो किए पुव्व कम्मे ।
तहा होइसो जाइणो पाइ जित, भरतासु चितामणे जतु चित्त ।।९।।

वरो वीढथा वेइ सूली दुहाला, गले घल्लिऊ सप्पु होइ फुल्ल माला ।
णलग्गति घाय रणे दिण्ण सत्त, भरतासु चितामणे जतु चित्त ।।१०।।

तिया रूप सीलग्गला पुत्त भत्ता, सणेही कुण्डवी गुणी हुंति मित्ता ।
पुणो हु ति मेहे अमाण सुवित्त, भरतासु चितामणे जतु चित्त ।।११।।

इय वर जयमाला गुणह विसाला थेल्ह सतनु ठाकुर कहए ।
जो णरु सिरि सिक्खइ दिणि रिणि अक्खइ सो सुहुमण वछिउ लहए ।।१२।।

।। इति चितामणि जयमाल समाप्ता ।।

कृपण छन्द

क्रिपणु एकु परसिद्धु नयर निसवति विलक्षणु ।
कही करम संजोग तासु घरि नारि विचक्खण ।
देखि देखि दुहु की जोडि सवु जगु रहिउ तमासैइ ।
यहर पुरिष कै याह दई किम देइम भासै ।
वा रहिउ रीति चालै भली यान पुज्ज गुण सील सति ।
वा देन खाण खरच किवै, दुवै करहि दिनि कलहु अति ।।१।।

गुरस्यो गोठि न करै, देउ देहुरो न देखैं ।
मागिन भूलि न देई, गालि सुणि रहै अलेखै ।
सगी भतीजी भुवा वहिण भाणिज्या न ज्यावइ ।
रहै रूसणो माडि आपु न्यौतौ जिव आवै ।
पाहुणो सगो आयो सुणो रहइ छिपिउ मुख म राखि करि ।
जिव जाइ तिवह परि नीसरै, वो धणु सच्यो क्रिपण नर ।।२।।

सुहु परयणु संथरै, सोवै तलि तिणा विछावै ।
सब घीषाटवि काहि मोलि घरि तवै न ल्यावइ ।
ऊपरि जूडा छनि वर दश तणि जु वाधी ।
टूटि टूटि तिणि पडइ वालि वाजै जब आधी ।
सहि ढही भीति सेरी पडी देखि देखि देइ गालि नर ।
मारिजै वर मीती बडै, तवै न छावै कृपण घर ।।३।।

सगला पहिला उठी माथि ते देइक भाइ ।
पणि नागो सिरि भार गाव दश फिरै दिनाई ।
घरि भूखो परिवार वार तसु टग टग चाहै ।
जव आवै पापीयो नाजु तब आयु विशाहै ।
लेइ सदा सोधि ओगस्यो जहि मरघा हुइ त्रिपति ।
ईम रहइ राति कूचरू क्रिपणु सहु को जाणै नरु नृपति ।।४।।

झूठ कथन नित खाइ लेखै लेखो नित झूठो ।
झठ सदा सह करै झूठ नहु होइ अपूठो ।

झूठी बोलै साखि झूठे झगडे नित उपावै ।
जहि तहि बात विसासि धूति धनु घर महि ल्यावै ।
लोभ को लियो चेते न चिति जो कहिजे सोइ खवै ।
धन काजि झूठ बोलै कृपणु मनुष जनम लाधो गवै ।।५।।

कदेन खाइ तंबोलु सरसु भोजन नहीं भक्खै ।
कदेन कापड नवा पहिरि काया सुख रक्खै ।
कदेन सिर मे तेल मल मूरख न्हावै ।
कदेन चन्दन चरचै अग अवीरू लगावै ।
पेषणो कदे देखै नही श्रवणु न सुहाइ गीत रसु ।
घर घरणी कहै इम कतस्यौ दई काइ दीन्हौ न पसु ।।६।।

सिरि बाधै चीथरी रहइ तलि किए न गौटो ।
अग उघाडी दुवै झगी पहरी गलि छोटी ।
पडहि जूव सैनार कदे कापडा न धोवै ।
हाथ पाग सैर को मेलु मलि मूलिन न खोवै ।
पहरि वावा णीयर चरण तणी नीसत नहि उट्टै ।
रलायौ सघरि सवरि तहि नणी गुण पडी कृपण घण दूबली ।।७।।

ज्यौ देखै पहरत खत खरचंत अवर नर ।
बैठा सभा मझारि जाणि हासति कुसम सर ।
देखि देख तहु भोगु कृपण तिय कहै विचारी ।
ज्याह तणी एकत पुणि पूरी तेजारीमइ ।
पुव्व पाप कृत आपणौ कतु कुमाण सभरि लक्षौ ।
इकु कृपणु अरु करूपु कुवोलणो लाज मरो लक्खण रह्यो ।।८।।

ज्यो देखे देहुरै त्याह की वर नारी ।
तलि पहर्या पटकूला सव्व सोवन सिगारी ।
एकि करावै पूज एकि ऊचा गुण गावै ।
एक देहि तिय दाणु एक शुभ भावन भावै ।
तिह देखि भणै हीयो हणै कवणु पायु दीयो दई ।
जहि पाप किणहो पापीणी कृपणुकंत घरि घण हुई ।।९।।

कै कुदेव पूया कैरू जिण चलण नवाद्या ।
कै मै पेष्या कुगुर साधु गुरु साघति निंद्यौ ।

कै मै बोलो झूठ अवर दिठु दया न पाली ।
कै मै भोजनु कियौ यति व्रत सघाए ।
स्वामी पुव्व आयु आयो उदै, कृपणु कत पायो पड्यौ ।
तो दिन पायु रिचण सुहै, अणही मिसि पावै लड्यौ ।।१०।।

इणीइ रीतिरहि कृपणि घुति घणु घणौ उपायौ ।
ले सुणि पासै वार गाडि पुर वाहरि आयौ ।
नयौ कलतरि आपिया ताह जे भेदे न अक्खै ।
क्यौरि करैं भडसाल ज्योर नख मुनिघुन लखै ।
परिवार पूत बघव जणह नीय कुनहु पतियइ कसु ।
यो सूमि सदा धन एकठौ करि करि राख्यौ आप वसु ।।११।।

दुख मरती देहुरै तासु तिय जाइ सवारी ।
एकहि दिणि तिणि सुन्यौ सगु चाल्यौ गिरनारी ।
रयण समै करि जोडि कहिउ पिय सरिसु हसंती ।
सुणहि स्वामि महु एक तणी वीणती ।
नर नारि सवै कोऊ भरचा लीया परोहण घर जु धरि ।
वदिस्यौ जाइ श्री नेमि अरु दडि सेरोतजसिरि ।।१२।।

तूती करि पिय मतौ चडहि दूवे गिरनारीय ।
वदहु नेमि जिणदु जेणि तिय तजिय कुमारीय ।
दीप धूप फल लेइ चरू अक्खत केशर ।
कुड गयंदी न्हाइ पाइ पूजा परमेसर ।
अरु चडह दुवें सेतजसिरि जनम जनम को नाइ मलु ।
उपजानजौ पसु नर नरकि लहि अमर पद्ध परम फलु ।।१३।।

नारि वचन सुणि कृपणि सीसि सलवटि घणपल्ली ।
कि तू हुई घण वावली कि घण थारी मति चल्ली ।
मै घणु लद्ध न पड्यौ मेर घणु लियौ न चोरी ।
मै घणु राजु कमाइ आयु आणियौ ना जोरी ।
दिनि राति नीद तिस भूख सहि मैर उपायौ दुखि घणौ ।
खरचि वा तणो बाहुडि वचनु घण मू आगे मत भणौ ।।१४।।

कहै नारि सुणी कत चपल विज्जु लज्यौ लछी गयो ।
नहु नव निद्धि मूकि तसु गैलण लछी ।

अवर किता नर कहउ ज्याह सचीह त्याह हारयौ ।
इम जाणि कत अव सइणै जिन सूकहि करि कठिणु मनु ।
ज्यौ ब नमितु तणइ धरिइ इंछयो होइ अनंत घणु ।।१५।।

कहै कृपणु सुणि मूघ भेदु जणु लहइ न आघौ ।
घन वितु कोइ न सगौ पूत परियण तिय वघव ।
धन विणु पडितु मीधु षिघाषित मंडलि पीणौ ।
धण विणुवि तिय हरिचंद राइ वेचा पुरि राणै ।
....।।१६।।

नारि कहै सुण कंत जके दाता रहुवा घर ।
करण भोज विक्कम अजो जीवै.....................।
नर सूम सदा अपवित्तु सूसु सामुहौ असीणौ ।
सूमन ले कोउ नाउ तालसिरि दे सव कोणौ ।
दातारि कृपणि यह अन्तरौ लीजै ज्यौ क्यो लेहि फलु ।
नातरि घन गुण वजन जन भौन भरि अंजलि करि देहि जलु ।।१७।।

कहइ कृपणु करि रोसु काइ घण धीर ठावि खचहि ।
मू अर जाता रहै हठु आपणी न छडै ।
करहि पराई होड जाह धरि लछि अलेखै ।
झूठि भेदु ना लहहि आप घर दिसै न देखै ।
नित उठि वात जपिहि सयाणी ज्याह चलै मझु कंपणी ।
ते गलौ हाथ जिह खरचि जे लछि पाई आपणी ।।१८।।

कहै नारि सुणि कंत धनि सो जणती जायौ ।
जहि नर करि अपणै वित्तु विलुसियो उपायो ।
होड न कीज्यै पापु पुण्य की होड करन्ता ।
होइसु जसु ससारि परति सचलो भरन्ता ।
धरि हुई लछि पुणि पहिल कै घीहण खर्चे आपणो ।
ते नर अचेत चेत्या नही दसिया सर्प सापिणी ।।१९।।

तवहि कृपणु करि रोस रुसि घर वाहिरि चलीयो ।
ताम एकु सामहो मतु घरि चेलौ मिलियौ ।

कृपणु कहै रे कृपणु आजि तू दूयण दिट्ठो ।
कि तु रावलि गह्यो केम घर चोर पइट्ठो ।
आइयउ कि को घरि पाहुणौ कीयो नर भोजन सरसि ।
किणि काजि मीतरे आजि तुव मुख विलीणु दीठो विरसि ।।२०।।

कृपणु कहै रे मत मुझ घरि नारि सतावै ।
जाति चालि धणु खरचि कहै सो मोहिण भावै ।
तिह कारणि दुब्बलौ रयण दिण भूखण लग्गइ ।
मतु मरण आइयो ग्रह्य अख्यौ तू आगै ।
ता कृपण कहै रे कृपण सुणि मीत मरण न माहि दुखु ।
पीहरि पठाइ दे पापणी ज्यौं को दिणु तू होइ सुखु ।।२१।।

कृपण वचन सुणि कृपण हरिषु हीयो अति कीयो ।
पुरिष ले एकु सखि लेखु झुठौ लिखि दीयो ।
तिय आगै वाचौ छे तुझ जो जेठो भाइ ।
वहि घरि जायो पूय तु घरि घण कोकी आइ ।
तुटिसी प्रीति जै ना चलि सिसू नैवो सुण वापडी ।
जाणती पिउ परपच घण चली नवि जासापहि ।।२२।।

तितै सगु सामह्यौ साथि लीयौ भड भारी ।
हय गय रह पालिका चडिवि चल्ली नरनारी ।
जंत जत गिरनैर पह राजलु वर वद्यो ।
साइ पजुण चडेवि पुव्व कृत पाप निकद्यो ।
अरु दिट्ठ जीइ सेतसिरु गनह रम्यौ कवण वणु ।
मनुष जनम कौ फल लीयौ फिरि फिरि वद्या जिव भवण ।।२३।।

ठाह ठाई ज्यौणार कीय व्यापार महोच्छा ।
ठाइ ठाइ सग पूज दिठ चित्त किया णवेच्छा ।
ठाइ ठाइ मगिणाहं दाणु सुजसु उपायौ ।
बाजत ढोल निशाण सग कूसलह घरि आयो ।
इकु पुण्य उपायौ पूरिस्यौ ल्याया लोग असख धनु ।
या वात सुणै ज्यौ क्रिपणु त्यौ ते तसु पछिताइ मनु ।।२४।।

कहै कृपणु नित उठि जइरहौं चालौ हुतो ।
पडिणतो जिउणार आ दुख रचतो न टीली ।
इणि परित्यां तो अछि रहिउ सगली मति घोली ।
उठि भणै हीयो हणै सिरु पीटै ले दुवै कर ।
अति पणसा कृपणु नैऊसूनी सूल सफोदर सामु जद ।।२५।।

तव मरतो जाणि करि सयल परियण मिलि आयौ ।
वध न पुत्त कलत्त मात कहि कहि समझावहि ।
ज्यौ आगै हुई सुखी खरचि लै सुकृत सवलो ।
ते वल्हौ चरो वताव षाइजो जीवै पालो ।
कुल कहि रह्या सवै बोलतही कृपण कोपु लगाउ करण ।
घर सारि आइ अवरौ कहे भाति कत ढूकउ मरणु ।।२६।।

कहै कृपणु करि रोसु काइ मिलि मूनोवाहो ।
थोर न वूझै सार थोरे धनु लीयो चाहे ।
जीवता अरु मुवह कोण धणु मुझ ले सक्कइ ।
कै लै चालो साथि कैर धणु घरती थकै ।
ल्यो काढि आइ अवरह जनमि तुहि न वताउ धरिउ धणु ।
सुणि वात उठि वधव गया तितै पहुतै पटण दिणु ।।२७।।

तवह मरतो कहै लछि आणइ ठाणंती ।
भाई परियणु पूत मेरु राखौ तु पात्ती ।
वादनू प्रति ससही देखि दुष्ट घणा उपाई ।
माग ताग गिणी काजि तु गालि दिवाई ।
एहु चोर ठगारी आगि थी मे राखी करि जतनु तुझु ।
णिगुण खिलज्जुनि लछि इव·····   ··· ·· ।।२८।।

लच्छि कहै रे कृपण झूठ हो कदे न वोलो ।
जु को चलण दुइ देइ मैल त्यागी तसु चालो ।
प्रथम चलण मुझ एहु देव-देहुरे ठविज्जे ।
दूजे जात पतिट्ठ दाणु चउसघहि दिज्जै ।
ये चलण दुवै तै भंजिया ताहि विहुणी क्यो चलौं ।
भूखमारि जाय तू हो रही वहुडी न सगि थारे चलो ।।२९।।

यौं ही करता कृपण..........................थाकी ।
बोल न बोल्यो गयो सैण किकण समझि ले सवकी ।
नाज..........................सयल, घणु घरती छड़्यो ।
गयो नरगि.......... कूघट कृपणु तहा पच परि दुख सह्यौ ।
गाव मैं जेता नारी पुरिष भला हे मुवो सगलाह कह्यौ ॥३०॥

मूवो कृपणु कुमीच लोग सगलाह मनि भायो ।
रहयो राति घर माहि कोइ वालिवा न आयौ ।
सब राति हि जणह घीस पुर वाहिरि राल्यौ ।
पूरा हुवा णी काठ रहित तैठै ग्रघ वाल्यौ ।
घर नारि पूत बधव खिल्या मनि हरिष्यारु जुवो जुवो ।
पहरिस्या खाइस्या खरचस्याह भलौ हुवो जै इहु मुवो ॥३१॥

कृपणु गयो मरि नरगि तिहा दुख सह्यौ ग्रलेखै ।
रोवै करै कलाप करणै कहै इम ग्रक्खै ।
गत जारौ मू जोग गेगरु इव निरमै पाउ ।
जिती करो घरि लछि तिती पुणि मारगि लाऊं ।
हसि जपहि ग्रसुर कुमार तसु मुनिष जनमु बूझे कहा ।
तु मनसि जनमि पडिसे नरगि दुखु दाहणु लामै जहा ॥३२॥

तै धनु कूडि कपटि ....परिपच उपायो ।
न तै जो तप विट्ठ देव देहुरै लगायौ ।
न तै करी गुर भगति न ते परिवार सतोष्यो ।
न तै भुवा भाणिजी न तै पिरीजणु पेष्यो ।
न तै कियो उपगारु ग्रडि जौ तू नै ग्राडो फिरौ ।
वो गवो पाप फलु ग्रापणौ मत विलाप कारण करै ॥३३॥

एक तलै तेल मे एक ग्रगि सूली वामै ।
एक घाणी मैं पेलि एक काटा सिरी स्वाणै ।
इक काटै कर चरण एक गहि पाव पछाडै ।
एक नदी मैं छोड बहुडि खाडै खणि गाडै ।
इकि छेद सरीर तिलु तिलु करिवि सु पा राज्यौ मिलि ।
जाइणि सागर बध दुख भोगवै मरइण पूरि ग्रायु विणु ॥३४॥

इमौ जाणि सहु कोइ मरइ ण पूरिष धनु सच्यौ ।
दान पुण्य उपगार दित ध्नु किवैन खचो ।
दान पुनै यह रासो असो पोष पाचै जानि जाणि ।
जिसउ करणु इकु दानु तिसउ गुण कामु वखाण्यौ ।
कवि कहै ठकुरसी लभणु मै परमत्थु विचार्यो ।
चरभियो त्याह उपज्यौ जनमु जा याच्यो तिह हारियो ॥३५॥

॥ इति कृपण छन्द समाप्त ॥

शील गीत

पारासरु अस विस्वमत्त रिषि रहत दुवइ वनि ।
कद मूल वणि खत हुत अति खीण महा तनि ।
ते तरुणी मुहू पेखि मयण वसि हुवा विकलमति ।
पछइ जि सरस ग्रहारु लिति तह तणी कवण गति ।
परिवो जु एकु मनहि जि के मनु इंदी वसि रहइ तहु ।
विंध्याचल गिरि सायर तरइ तउं मइ मनिउं सव्वु सहु ॥१॥

सिंघु वसइ वन मज्झि मस आहारि वली अति ।
वार एक वरस मैं करइ सिंघणी सरि सुरती ।
पेखि परे वो पापु जासु मन मुडइ न आसुर ।
खाइ खड पाषाण कामु सेवइ निसि वासर ।
भोयणु वसेखु नहु ठकुरसी इहु विकार सवु मन तणौ ।
सील रहहि ते स्पर्ब नर नहि पारामति गिणौ ॥२॥

॥ इति शील गीत समाप्त ॥

पार्श्वनाथ स्तवन

नृप अससेणहु पुत्तो गुण जुत्तो असुर कमठ मज मलणो ।
वम्मादेउरि रइणो, वयणो अविरुद्ध अयजस्य ॥१॥

फणि मडियउ सीसो, ईसो तिल्लोक सोक दुख दुलणो ।
तन तेय जेण निर्जित, कोटी खर किरण मह् दीप्ति ॥२॥

जसु सुरपति दासो, चित्त ससार वासो ।
सयल समै भासो, सत्त तच्चापयासो ।
किय मयण विणासो, दुट्ठ कमट्ठ नासो ।
जयउ सुपहुपासो पत्त सासै निवासो ॥३॥
गुणाण सव्वाण वर निवासं, न ध्यावहि जे नर पाय पासं ।
कहंत ये पुज्जै ताह आसं, करति जे मिछ पह विसास ॥४॥

जि कि करहि मूढ विसासू ।
सुणै जाइ भोपाभास ।
खणावैति खान जीवा करै हि विणासु ।
जिकि कु गुर कुतिथ वास ।
सेवै जाइ जेम दास ।
चडी मुडी खेतपाल ध्यावै हि हयास ।
जि कि पत्तर मनावै मास ।
ग्रह गति बूझै कास ।
अवरइ मिथ्यात पथ करहि सहास ।
ताकी कहा थे पूजैइ आस ।
न ध्यावै जे प्रभ पास ।
चपावती थानि सव गुणह निवास ॥५॥

सुखसिधामं प्रभ पास नामं ।
न लित जे वंछित सुख रामं ।
तिदुखवता ससि सूर गामं ।
असंदरं गेह नरं निकाम ॥६॥

जिकि दीसैंहि नर निकाम ।
उपाइ न सकैं दाम ।
पड्या पर घर माहैं मेरे तिय धाम ।
धरि नारीय नेह विराम ।
अधिक करुय साम ।
नदण निगुण भरिहुहि निरनाम ।
जाकी कहीय न रहै माम ।
फिरै पीली गाम गाम ।
रोक जिसा रोग पून्या दीसैं देह शाम ।
तिह कीयउ सही कुकामु ।
सकिउ न लेइ नामु ।
चम्पावती पास भय सव सुख थामु ।
जगत्त अधार मणोपहारी ।
जि ध्यावहि पासु सुचारु चारी ।
ति पावहि मानव सुख सारी ।
मनत लछी गुणवत नारि ।।८।।

जाकैं दीसैं गुणवत नारि ।
रूपवंत सीलधारी ।
नदण नृपुणनी काजिसउ मुरारी ।
जाकैं हय गय भडवारि ।
अन्न धन्न पूरी खारि ।
कीरति सुजसु जाकैं जाच्यो खण्ड चारि ।
जाकैं कहीयन आवैं हारि ।
पावैं सुख भव पारि ।
दैंहन दुखी होइ जाकी रोग भारि ।
तिणि ध्यायो सही संसारि ।
मनह जाणैं विचारि ।
चपावती पासु जगु जाकैं अधारि ।।९।।

पंसाउ पास प्रभ जे लहति ।
कुसैणु कुग्रह तसु किं करति ।
हवति जीवा खलु ने नेहवत ।
जल थल अग्नि सहाइ सत ।।१०।।

जाकै अग्नि सीलै सहाइ।
नीर निधि थलु थाइ।
घके आयो स्याल सम सिघ हुव जाइ।
जाकै मानु देहि रूठा राउ।
अंगुण ति लेहि छाइ।
विषम सुविसु अगि अभी हुइ धाइ।
जाकी जगतु भली कहाइ।
लागै हि न घाल्या घाइ।
कुग्रह कुसैण वसु कछु न वसाइ।
ताकै भेदु पाया इव जाइ।
सुखी यति दीसै न्याइ।
चपावती पास प्रभ तणै पसाइ ॥११॥

पास तणै सुपसाइ पाइ पणमति आइ अरि।
पास तणै सुपसाइ थाइ चक्कवइ रिद्धि धरि।
पास तणै सुपसाइ सग्ग सिव सुखु लहि जै।
पास तासु पणमति भगि आलस कुन कीजै।
ठकुरसी कहै मलिदास सुणि।
हमि इहु पायो भेदु इव।
जगि ज ज सुंदरु सपजै।
तं त पास पसाउ सव ॥१२॥

॥ इति पार्श्वनाथ स्तवन समाप्त ॥

सप्त व्यसन षट्पद

पुहमि पट्टि मसि मेरु, होहि भायरण सर सागर ।
अघस अनोपम लेखि, साख सुरतर गुण आगर ।
आपु इदु करि लिहै, कहै फणि राउ सहस मुख ।
लिहइ देवि सरसति लिहत पुरणु रहइ नही चुष ।
लेखरिण मसि मही न उव्वरइ, थक्कइ सरिसइ इद फुणि ।
आयो नवोडु कहि ठकुरसी, तवइ जिरगेसरि पास गुरिण ।।१।।

जुआ खेलना—

जूव जुवाख्या घरणी लामु, गुरगु किवइ न दीसइ ।
मतिहीन मानई खेलि, मत चित्ति जगीसइ ।
जगु जाणइ दुखु सह्यौ, पच पडव नरवइ जलि ।
राजरिषि परहरी, रणु सेविउ जुवा फलि ।
इह विसन सगि कहि ठकुरसी, कवरणु न कवरणु विगुत्त वसु ।
इन जाणि जके जूवा रमै, ते नर गिरिणवि सीगु पसु ।।२।।

मास खाना—

मुरिख मस म भखहु, तासु कारणु किन गोवइ ।
जहि स्वाद कारणै, काइ लघइ मउ खोवहु ।
फल प्रासत रस लुद्ध कूडु कीयो न मुणिउ भरिण ।
मान्या उदर विदारि विप वा तापी उल्लरिण ।
अै गुरण अनन आमिप वसहि कवि ठाकुर केता कहै ।
वगराउ अजउ जगलि भखणि नरइ नीच घरणु दुखु सहै ।।३।।

मदिरा पान करना—

मज्जु पिये गुरण गलहि जीव जोगै ज्वाख्यौ भरिण ।
मज्जु पिये सम सरिस माइ महिला मण्णहि भरिण ।
मज्जु पिये वहु दुख सुखु सुरगहा मैथुन इव ।
मज्ज पिये जादव नरिंद संकटु कवि गय खिव ।

घण घम्म हारिण नरयह गमणु कलह मूलु अवजस उपति ।
हारति जनम हेलइ मुगघ, मज्जु पिये जे विकलमति ॥४॥

वेश्यागमन—

वेस्या वणियर चारुदत्त परमाणु परिखिउ ।
सुनया कोडि छत्तीस खद्ध तिन घडी न रखिउ ।
अवर कित्ता नर कहउं ज्याह दिठ्ठउ दुखु दारणु ।
गाह हरिवि कवि कालिदास मारिउ निकोगु ।
तसु सग किये प्रतिषइ वहि कुल कीरति छारह मिलै ।
धनु जोवनु कीरति जाइ चलि ज्यों कायर दीठा किलै ॥५॥

शिकार खेलना—

पारधि पंचमु विसनु नरइ पंचमि पहुचांवइ ।
जाणतऊ नरु नीचु पेखि पसु मनह सिहावइ ।
तिण चरनिरा पराधइ सो न नमनह विचारहि ।
तुरिय चडिवि वनिजाहि जीव जोवन मदि मारहि ।
खत्री अखत्र् करि सग्रहहि पारवि पापु विसाहि वहु ।
ते सहहि दुखु कहि ठकुरसी ज्यों चक्कवइ सुवंभु पहु ॥६॥

चोरी करना—

चोरी करि सिवभूति विघु संसारि विगुत्तउ ।
तिणि डण्ड तिनि सहिय पुणुवि मरि नरयह पतउ ।
अवर किता नर सहहि दुखु दारणु चोरी संगि ।
इम जाणिवि परहरहु जिन रुनावहु अवगुणु अंगि ।
जपु तपु सनानु संजमु सुकतु कुल कीरति तीरथ धरमु ।
तउ सहल सवे कहि ठकुरसी जइ न फुरइ चोरी करमु ॥७॥

परस्त्री सेवन—

परतीय परत विणासु सरव दुख दावइ इह भवि ।
जाणतउ जा वधु लोउ परहरइ तवइ नवि ।
प्रगट सुणो ससारि कथा कीचक अरु दहमुख ।
सीय दोवइ कारणइ जेम मुंजिय दहु दुख ।

इह भइ अकित्ति पूर्‌यो भवणु परति वासु पायो नरइ ।
सलहिये सुनरु कहि ठकुरसी जो परतीय रह रहइ ।।८।

त व्यसन—

जुवा विसन वनवासि भमिय पंडव नरवइ नलु ।
मसि गयो वगराउ सुराखो यो जादम कुलु ।
वेसा वणियर चारिदत्तु पारधि सवभुनिउ ।
चोरी गउ सिउभूति विपु परती लंकाहिउ ।
इकेक विसनि कहि ठकुरसी नरइ नीचु नरु दुहु सहइ ।
जहि अगि अधिक अछहि विसन ताह तणी को कहइ ।।९।।

।। इति सप्त विसन छपद ठकुरसी कृत समाप्तं ।।

व्यसन प्रबन्ध

जुवा केरा फल प्रगट घर, खिण होहि भिखारी धनी नरं ।
जिन खेलहु मूरिख हारिण घणी, किन सुणीय कथा पडवह तणी ।
सुणि सीख सयाणी मूढ मनं, तजि विस्न बुरा देहि दुख घण ।।१।।

रसणा रसु स्वादु न राखि सकैं, पलु प्रासैं मूढु न परतु तकैं ।
वगरीव तणी परि नरय गते, सहि से दुखु तव चेतिसी चिते ।
सुणि सीख सयाणी मूढ मन, तजि विस्न बुरा देहि दुख घण ।।२।।

जहि पीये आठ अनर्थ करैं, जननी महिला न विचार फुरैं ।
तहि मज्जि पिये भणु कवणु सुखो, जहि जादव वसह दिणु दुखो ।
सुणि सीख सयाणी मूढ मन, तजि विस्न बुरा देहि दुख घण ।।३।।

विहि वेसा सिरजी नरय घर, धण जोवन कीरति हाणि कर ।
जहि सग कियो वणि चारुदत्तो, रालियउगरो हइ सेज सुतै ।
सुणि सखि सयाणी मूढ मन तजि, विस्न बुरा देहि दुख घण ।।४।।

जोवनि मदि मूरिख जाहि वन, पसु पारिधि मारहि मूढ मन ।
चकवइ सुवभहु तणीय परे, दुर्गति दुख देखहि मूढ मरे ।। सुणि० ।।५।।

खर रोहण सूली वध घण, तहि चोरी किये कवण गुण ।
प्रभ परयणु पुरजणु होइ रिपो, किन प्रगट सुण्यौ सिवमूति विपो ।। सुणि० ।।६।।

इह परतिय परत विणासु करैं, इह रत सयल गुणि दूरि हरैं ।
परहरइ जको मुणि रावण कथा, सो लहइ सरव सुख विणु अनिथा ।।सुणि० ।।७।।

मुणि धर्मचन्द उपदेसु लह्यो, कवि ठाकुर विस्न प्रवध कह्यो ।
परहन्ड जको ए जाणि गुण, सो लहइ सरव सुख वछित घण ।
मुणि सीख सयाणी मूढ मन, तजि विस्न बुरा देहि दुख घण ।।८।।

।। इति व्यसन प्रबन्ध समाप्त ।।

पार्श्वनाथ जयमाला

दारुणु नयणारुणु नयविहरे, जिह गय घड भय भगइ ।
तह जिण गुण मणि सुमरतियहि, थिरूण थाहि उवसंगइ ।
महा दिढु दत उपाणि पयंडु, चहू दिसि चालीय सूंडा डडु ।
नलग्गइ हथिगरु तणु जासु, धरनह चित्ति चितामणि पासु ॥१॥
डरावणु देहु सु सद्दु करालु, दुरा रुण णेत्त जिसहि विझालु ।
सुन्याल समो हरि होइन कासु, धरतह चित्ति चितामणि पासु ॥२॥
जमु ठियजझाल समीर सहाय, चहुं दिसि लग्ग न भगउ जाय ।
न ढुक्कइ नीडउ सो जिहु वासु, धरतह चित्ति चितामणि पासु ॥३॥
करेण छियो जसु जाइन अंगु, भरिउ विसि लच्छरि किण्ह भुवंगु ।
न लग्गइ चूरि उसो जिदु रामु, धरतह चित्ति चितामणि पासु ॥४॥
तरग सु मुठिय नीरि अगाह, भरिउ जल जति न लभइ थाह ।
सुहोइ समुदु जिसउ थल वासु, धरंतह चित्ति चितामणि पासु ॥५॥
जिसण्णिय लेस मसिय सिरवाहि, भग्गदर सूल जलोदर वाहि ।
तिणासहि कोढ पमुहु खय खास धरतह चित्ति चितामणि पासु ॥६॥
कुसोण जिकु ग्रह क्रूर कुदेव, कुमित्त कुसज्जन कुप्रभ सेव ।
करति न ते भय दुख पमासु, धरंतह चित्ति चितामणि पासु ॥७॥
कही चिरू कम्मि किये अरि वधि, भरिउ तनु सकलि घल्लि निरधि ।
तहू त गयो अरि करिवि निरासु, धरंतह चित्ति चितामणि पासु ॥८॥
महा ठग चोर जि डाएणि दुट्ठ, दिनाइय कम्मण मत असुठ ।
नलगहि लील गमे दिन पासु, धरंतह चित्ति चितामणि पासु ॥९॥
तिया सुव वंधव सज्जन इट्ठ, उपज्जीह चित्तु रमै जिह दिट्ठ ।
मणं छिय सव्वइ पूरहि आसु, धरंतह चित्ति चित्तामणि पासु ॥१०॥

घत्ता

इय वर जइमाला पास जिण गुण विसाला ।
पढहि जि णर णरी, तिण्णि संझा विचारि ।
कहहि करि अनदो, ठकुरसी घेल्ह नंदो ।
लहहि ति सुखसार, वछिय वहु पयार ॥११॥

॥ इति पार्श्वनाथ जयमाला समाप्त. ॥

ऋषभदेव स्तवन

पाडव पंच भमत देश इक्कहि पुरि थकिय ।
तहि कुंभारि रोवत पुत्त दुखि देखि न सकिय ।
तासु मरण वोसरइ जाइ आपणु हक्कारिउ ।
रखिउ जणु जगडतु भीमि रणि राखिउ सुमरिउ ।
तिम कहइ ठकुरसी रिसह जिणु तुह निवसतह चित्त धरि ।
जइ जाइन तिय न दोस दुख, तबरि कहउ इव कासु फिरि ।।१।।

तुहु जग गुर जोतषी तुही वड वैदु विचखिणु ।
तुहु गरवो गारुडी सयल विसुहरहि ततखिणु ।
तुहु सिद्धक्षर मतु ततु तूही तिभवणपति ।
तुहुं सजीवन जडी तुही दातारु महत गति ।
इश्वाक वंस श्री रिसह जिणु, नाभि तणु भम भव हरणु ।
सब अहल अवरु कहि ठकुरसी, तुहु समरथ तारण तरणु ।।२।।

।। इति ऋषभदेव स्तवन समाप्तः ।।

कवित्त

किसउ णरवै भइ न भड रिद्धि नि नेही सुहि किसो ।
किसौ मति जसु वुद्धि मंदी किसौ तुरगमु वेग विगु ।
किसौ जति जसु वसिन इदी किसौ वैदु जो ना लहो ।
देह व्याधि कर जोइ निगुणी कियण गुण विथरै किसो कवीसरु सोइ ।।१।।

ज्यो रू जणणी जणगु गुणवंत धियगरुई हीण वरु ।
पेखि पेखि मन मैं विसूरइ ज्यौं सेव कुसेवा किया ।
होइ दुमणु आसा न पूरइ ज्यो पछितावो जणा ।
अवसरि सुजसु न लिद्ध कहि ठाकुर त्यो कवियण नर निगुण गुण किद्ध ।।२।।

नर निर खर निकुलनि लज्जा निनेहीनी चरइ ।
निगुण सगुण अतरु न जाणैं वोल चूक वहुली कहण ।
विनय वचनु वोलि विन जाणै कूचर कुसर कठोर अति ।
संचक सदासलोभ कहि ठाकुर तइ गुण कहहि ते कवि लहहि न सोभ ।।३।।

सगुण सुदर सदा सद्धम साहमी सनहे कर ।
सुजसु सचि जे अजसु मूकै विनइ विचखिण बड चिता ।
वंस सुध वोलै न चूकै पाप परमुह पर तणउ ।
परइ करहि दुखु भन्नि तह जपु कहहि जि ठकुरसी तेरु कवीसर धन्नि ।।४।।

कहा वहिरउ करइ रसुगीउ कहा करै ससि अघलो ।
कहा करै नरु सढु नारी कहा करै कर हीण नरु ।
गुण सजुत्त को वडुकारी कहा करै चपउ भवरू परिमल ।
परिमल अधि विसाल कहा करै त्यो निगुण नरु कवियण कव्वु रसालु ।।५।।

जइ रूवहि रइ सुण्यो नहु गीतु, जइ न दिठु ससि अधलइ ।
जइ न तरुणि रसु सढि जाण्यो, जइ न भवरू चपइ रम्यो ।
जइ न धणकु करहीणि ताण्यो, जइ किणि निगुणि निलखणो ।
कव्वि न कीयो मण्णु कहि ठाकुर, तउ गुणी मण नाउ जासी सुणु ।।६।।

।। इति कवित्त समाप्त ।

पार्श्वनाथ सकुन सत्तावीसी

असु धवलवि धवल गलिहारु धवलासणु कमलु-जसु ।
धवल हंस वाहणि वइठि वीणा पुस्तक कर लियह ।
करइ वि दुरजड जोग तूठी तहि परमेसरि पय कमल ।
पणविवि निम्मल चित्ति पयडु करिमु चंपावती पास नाह गुण कित्ति ।।१।।

एक दिवसह पास जिण गेह मल्लिदास पंडिय कहय ।
ठकुरसीह सुणि कवि गुणग्गल गाहा गीय कवित कह ।
तइ किय मय निसुणी समग्गल इव श्री पास जिणंद गुण ।
वर वम्मा देवी जणणी सुयणा सोलह निसि ण जणणु अखै ।
तुह सुवहो सइ अतुल वलु दयाल या कलकडु अमयो जाणि जगनाथु ।
करहि न कि तुहु भव्व जहि कीया थे पाविए मन वंछित सुख सव्व ।।२।।

ताम विहसिवि कहइ कवि एम णिसुणि मित्त तसु गुण कहत ।
सरसय इदु धणिंदु थक्कइ कवि माणस अम्हा सरिसु ।
लहा कवण परि कहिवि सक्कइ, पणि तुहु वयणु न अवधउ ।
मू मनि पुव्व जगीस वुधिसार तसु, गुण कहिसु जस फणि मंडिउ सीसु ।।३।।

देस सयलह मज्झि सुपसिध ।
जसु पटतर अलहृतविहि ।
ढुंढि ढुंढाहडु नामु अखिउ ।
तह चंपावती वरु णयरु ।
जहा न को जणु वसइ दुखिउ ।
जैन महोछा महम घण ।
जहि दिनि दिनि दीसन्ति ।
तहा वसइ ते घण्णु णर ।
इउ जण विवस कहंति ।।४।।

तासु णयरी म·········· ····।
·················· ···········1

१. पाण्डुलिपि मे छन्द ५ से १४ तक नहीं है ।

ते गुणवित जिय परमाद ।
षटु वाहरि षटु भितरिहि ।
तविउ मु तपु अइ दुसहु दुद्धरु ।
मय अट्ठ परहरि कियो ।
तेरह विह चारित्त उद्धरु ।
वम्ह चेरु णव विहि चरिउ ।
दह विहु पालिउ धम्मु ।
एम जिणेसर पास प्रभि ।
खयो पुव्व किउ कम्मु ।।१५।।

अरु परीसह सहिय वावीस, अरिइट्ठ कक्कर करणँ ।
थुइ णिंदा सम भाइ भावण, गुण थाण गुणि चडिउ ।
नवो कम्मु नहु दिण्णु आवण, चम अणेइ पयार तव ।
तवि उतिथ करि जाम, असुर इक्कु णहि जतु सिरि थक्कुवि माणे ताम ।।१६।।

थिरु विमाणिहि वैरु सभलिउ ।
इल आइ विलगउ करण ।
घोर वीरु उवसगु दुठउ ।
जान चलिउ ता असुरु ।
जलु असखु दिन सत्त वुठउ ।
चिरुउ वयारु विसभरिवि ।
सो रखिउ धरणिंद ।
पउ इवसमिउ पाविइउ ।
केवल णाणु जिणिंद ।।१७।।

तवहि आविय सयल सुर मिलिवि, जय जय पभणत गिरि ।
नियवि तह सुरु कमठु णवउ, समोसरण लछी सहिउ ।
हुवो दोस तजि गुणि गरिट्ठिउ, चइतीस तिसय मडियउ ।
वसु पडिहारु सजोउ, अट्ठ कम्मह णिदिट्ठ तिनि ज्ञान नयणि तिलोउ ।।१८।।

तवहि दरसिउ मग्गु कुमगु, षट दव्व सत्तच्चसिउ ।
तव पथय गुण भेउ अखिउ, ससार सागरि विषमि ।
पडत भव्व जनु सयलु रखिउ इम वोहतउ सयल जगु ।
पुणु पत्तउ निव्वणि, हूवो सिद्धु वसु गुण सहिउ सारुप सुख निहाणी ।।१९।।

तासु जिणवर तणउ पडि विंबु ।
अहघात पाखाणमइ ।
आथइ थुकल कल कालि जियुवि ।
तहा तहा अतिसय सहितु ।
परत्या पूरण छहि समथवि ।
पाणि जु मुत्ति चंपावती ।
कृस्न वर्णि अयइट्ठु ।
तासु परत्यो हउ कहऊं ।
जो मइ णयणह दिट्ठु ॥२०॥

जवहि लिद्धउ राणि संग्रामि, रणथमुवि दुग्ग गढु ।
जव इब्राहिम साहि कोपिउ, वलु बौली मोकलिउ ।
वोलु कौलु सवु तेण लोपिउ, जव लग उज्झलि हाइसिउ ।
मेछ मूढु भय वज्जि, विणु चपावती देस सहि गया दहइ दिसि भज्जि ॥२१॥

तिवहि कंपिउ सयल पुरु लोउ ।
कोइन कसु वरज्जिउ रहइ ।
भज्जि दहइ दिसि जाण लगउ ।
मिलिवि करी तव वीनती ।
पासणाह सामी सु अगउ ।
सवणा जोतिग केवली ।
चित्तु न मडइ आस ।
कालि पचमो पास प्रभ ।
जगि तुव तणउ विसासु ॥२२॥

तेण तुहु सिउं कहहि जगनाथ ।
निसुणि सिद्धि सुंदरि रवण ।
इहि निमित्त कउ किसउ कारणु ।
भूत भविषित जाण तुहु ।
तुहु समथु जगि तरण तारणु ।
चन्चावता उचवहु ।
जहि भव देखहि गाइं ।
जडरिन देखहि पास प्रभ ।
होइ ग्हहु थिरु ठाइ ॥२३॥

एम जंपवि करिवि थूय पूज, मल्लिदास पडिय पमुह ।
सइ हृथा सामी उचायउ, तुछ मूरति उची न तिलु ।
हूवो जाणि सुर गिरि सवायउ, इणि विधि परतिउ वारतिहु ।
पूरिवि हरी भरांति जयवंतउ, जगि पास तुहु जेण करी सुख साति ।।२४।।

तासु पर तेजि के णर भव्वनी भग्गा दिढु रह्या ।
हुवा सुखी ते घरा वासै ।
जो भग्ग मति करि ।
दुखि पाया अरु पड्या सासै ।
अवरइ परत्या वहु इसा ।
प्रभु पूरिवा समथु ।
अजउन जिसु पतियाइ मनु ।
सो नर निगुण निरथु ।।२५।।

इत्र जि सेवहि कुगुरु कुदेव, कु तिथ जि गमु करहि ।
इवहि जि के पाखडु मडहि, धगड धम्मु पावहि न ते ।
मुनिप जम्मु लद्धउ ति मंडहि, सेवहि जिन चपावती ।
परत्या पूरण पासु, हरत परत जिउ हुइ सफलु वछित पूरइ आस ।।२६।।

घेल्ह णदणु ठकुरसी नाम ।
जिण पाय पकय भसलु तेण ।
पास थुय किय सचो जवि ।
पदरासय अट्ठतरइ ।
माह मासि सिय परव दुइजवि ।
पढहि गुणहि जे नारि नर ।
तहि मन पूरइ आस ।
इय जाणे विणु नित्त तुहु ।
पढि पडित मल्लिदास ।।२७।।

।। इति श्री पार्श्वनाथ सकुन सत्तावीसी समाप्ता ।।

□□□

महाकवि ब्रह्म रायमल्ल
एवं
भ० त्रिभुवनकीर्त्ति पर मंगल आशीर्वाद

परम पूज्य एलाचार्य १०८ श्री विद्यानन्द जी महाराज :

समस्त हिन्दी जैन साहित्य को २० भागो मे प्रकाशित करने की श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर की योजना बहुत ही समयानुकूल है। इस योजना से बहुत से अज्ञात एव अप्रकाशित जैन कवि प्रकाश मे आ सकेंगे। सम्पादन एव मूल्याकन की दृष्टि से अकादमी के प्रथम पुष्प 'महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एव भट्टारक त्रिभुवनकीर्त्ति" का बहुत सुन्दर प्रकाशन हुआ है। हमारा इस अकादमी को आशीर्वाद है। समाज द्वारा अकादमी को पूर्ण सहयोग साहित्य प्रेमियो को देना चाहिए, ऐसी हमारी सद्भावना है।

× × ×

आचार्य कल्प परम पूज्य १०८ श्री श्रुत सागर जी महाराज :

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी द्वारा अप्रकाशित साहित्य को प्रकाशित करने की योजना महत्वपूर्ण एव उपयोगी है। हिन्दी भाषा की अज्ञात एव अप्रकाशित रचनाओं को प्रकाश मे लाने का जो कार्य प्रारम्भ किया है उसमे अकादमी एवं पदाधिकारी गणो को सफलता प्राप्त हो यही मगल आशीर्वाद है।

□ □ □

अनुक्रमणिका

ग्राम एव नगर

कवि, विद्वान् एव श्रावकगण

जाति एवं गोत्र